# गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
की
पी-एच०डी० (प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध-प्रबन्ध

विभागाध्यक्ष
प्रो० सुमन जैन
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्त्व विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

HEAD
विभागाध्यक्ष
A.I.H.C.& Archaeology
प्रा० भा० इ० सं० एवं पुरातत्व
Banaras Hindu University
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
Varanasi-5, वाराणसी-5

शोध निर्देशक
प्रो० प्रशान्त कश्यप
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्त्व विभाग
डी०ए०वी० पी०जी० कॉलेज
(बी०एच०यू०), वाराणसी

**Prof. Prashant Kashyap**
**Dept. of AIHC & Archaeology**
**DAV PG College, BHU**
**Varanasi**

शोध छात्र
प्रवीण पाण्डेय

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005

पंजीयन संख्या - 381808
शोध पंजीकरण संख्या - DAV/Res/Reg-AIHC/Sep15/16-15/1
वर्ष - 2023

# रचनास्वत्वाधिकार प्रमाण–पत्र

# शोध–छात्र का प्रतिज्ञा पत्र

मैं **प्रवीण पाण्डेय** अपने शोध–प्रबंध **"गुर्जर–प्रतिहार अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन"** शीर्षक से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की पूर्ण जिम्मेदारी मेरी होगी और किसी भी प्रकार की त्रुटि होने पर मैं इसमें अपेक्षित सुधार हेतु सदैव तत्पर रहूँगा।

Pravinpandey

**शोध छात्र**

**प्रवीण पाण्डेय**

**दिनांक :** 31/08/2023

**स्थान :वाराणसी**

**Annexure – E**
**[See Clause XIII.2 b (iii)]**

# शोध–छात्र का घोषणा पत्र

मैं, **प्रवीण पाण्डेय** (शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) प्रमाणित करता हूँ कि शोध निर्देशक **प्रो० प्रशान्त कश्यप** के निर्देशन में प्रस्तुत शोध प्रबंध का संपूर्ण लेखन स्वयं मेरे द्वारा किया गया है एवं पूर्णतः मौलिक है। शोध कार्य के लिए निर्धारित अवधि में पूर्ण की गई है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सम्मिलित सामग्री पूर्णतया या आंशिक रूप से अन्य उपाधि के लिए अन्यत्र प्रस्तुत नहीं की गयी है।

मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ कि जहाँ भी अन्य शोधकर्त्ताओं या पुस्तकों की सामग्री को शोध–प्रबंध के विश्लेषण के क्रम में उपयोग किया गया है, वहाँ उनके नाम और पुस्तक का उल्लेख किया गया है। मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि पत्रिकाओं, पुस्तकों, लघु शोध–प्रबन्धो आदि को इस शोध–प्रबन्ध में यथावत प्रस्तुत नहीं किया गया है न ही ऐसी किसी कार्य को मैंने अपना मौलिक कार्य घोषित किया है।

Pravin pandey

शोध छात्र
**प्रवीण पाण्डेय**

दिनांक : 31/08/2023
स्थान :वाराणसी

## शोध–निर्देशक का प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रवीण पाण्डेय (शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) का कथन एवं लेखन मेरी जानकारी में सत्य है।

**विभागाध्यक्ष**
HEAD
विभागाध्यक्ष
AIHC & Archaeology
प्रा० भा० इ० सं० एवं पुरातत्त्व
Banaras Hindu University
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
Varanasi-5, वाराणसी-5
**प्रो० सुमन जैन**

**शोध–निर्देशक**
**प्रो० प्रशान्त कश्यप**
Prof. Prashant Kashyap
Dept. of AIHC & Archaeology
DAV PG College, BHU

**Annexure – F**
**[Sec Clause xiii.1(c) & xiii.2 (b) (iv)]**

---

# प्री–पीएच0 डी0 कोर्स प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **प्रवीण पाण्डेय** (शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) के सत्र–सितम्बर 2015 में शोध में पंजीकृत होकर प्री–पीएच0 डी0 कोर्स पूर्ण किया है। उक्त पाठ्यक्रम की परीक्षा में शोध छात्र को उत्तीर्ण घोषित किया गया।

दिनांक : 31/08/2023

स्थान :वाराणसी

विभागाध्यक्ष

प्रो0 सुमन जैन

HEAD
विभागाध्यक्ष
A.I.H.C.& Archaeology
प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्व
Banaras Hindu University
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
Varanasi-5, वाराणसी-5

**Annexure – F**
**[Sec Clause xiii.1(c) & xiii.2 (b) (iv)]**

# प्रस्तुति पूर्व–सेमिनार सफलता प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **प्रवीण पाण्डेय**, शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के नियमित शोध छात्र हैं। इन्होंने पी–एच0 डी0 प्रोग्राम के निमित्त अपेक्षित प्रस्तुति–पूर्व सेमिनार शीर्षक **"गुर्जर–प्रतिहार अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन"** पर दिनांक– 19.08..2023 की तिथि को सफलतापूर्वक पूर्ण किया है।

**दिनांक–** 31/08/2023
**स्थान–वाराणसी**

**विभागाध्यक्ष**

**प्रो0 सुमन जैन**

HEAD
विभागाध्यक्ष
A.I.H.C.& Archaeology
प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्त्व
Banaras Hindu University
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
Varanasi-5, वाराणसी-5

**शोध–निर्देशक**

**प्रो0 प्रशान्त कश्यप**

**Prof. Prashant Kashyap**
**Dept. of AIHC & Archaeolog**
**DAV PG College, BHU**
**Varanasi**

**Annexure – G**
**[Sec Clause xiii.2 b (v)]**

---

# रचनास्वत्त्वधिकार हस्तानान्तरण प्रमाण–पत्र

| | | |
|---|---|---|
| शोध–प्रबन्ध का शीर्षक | : | **"गुर्जर–प्रतिहार अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन"** |
| शोध छात्र का नाम | : | **प्रवीण पाण्डेय** |

## रचनास्वत्त्वाधिकार हस्तान्तरण

पीएच0डी0 (प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग) उपाधि के लिए प्रस्तुत उपर्युक्त शोध–प्रबन्ध के रचनास्वत्त्वाधिकार के अन्तर्गत आने वाले सभी अधिकारों को अधोहस्ताक्षरी इस पत्र के माध्यम से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को हस्तान्तरित करता हूँ।

Pravinpandey

**शोध छात्र**
**प्रवीण पाण्डेय**

दिनांक : 31/08/2023
स्थान : वाराणसी

---

टिप्पणी : स्त्रोत और विश्वविद्यालय के रचनास्वत्त्वाधिकार सूचना को निर्देश करते हुए लेखक इस शोध प्रबन्ध को पुनः प्रस्तुत कर सकता है अथवा किसी दूसरे को शोध–प्रबन्ध के शब्दशः या आंशिक प्रस्तुति के लिए अधिकृत कर सकता है, अथवा लेखक स्वंय अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए व्युत्पादित कर सकता है।

# आभार

किसी भी शोध-प्रबन्ध का लेखन कार्य यद्यपि शोधार्थी के द्वारा सम्पन्न होता है, परन्तु उसके लेखन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से बहुत से लोगों का सहयोग होता है। इस क्रम में सर्वप्रथम बाबा विश्वनाथ और भारतरत्न पं. मदनमोहन मालवीय जी के चरणों में शत्-शत् नमन करता हूँ, जिनके आशीर्वाद से महामना के इस पवित्र भूमि में मुझे शोध कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

सर्वप्रथम मैं अपने शोध निर्देशक आदरणीय प्रो० प्रशान्त कश्यप के चरणों में श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ। प्रस्तुत शोध प्रबंध की पूर्णता पूज्य गुरुदेव के उचित मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और आशीर्वाद का ही प्रतिफल है, जिसके लिए मैं आपसे कभी उऋण नहीं हो सकता।

परम् आदरणीय विभागाध्यक्षा प्रो० सुमन जैन के प्रति हृदय से आभारी हूँ, जिनका आशीर्वाद एवं शुभाशीष सदैव मेरे साथ रहा है। गुरुदेव द्वारा दिये गये ज्ञान, स्नेह, एवं अपनत्व को शब्दों की सीमा रेखा में बाँधना मात्र औपचारिकता होगी।

मैं अपने विभाग के श्रद्धेय गुरुजनों प्रो० ओंकार नाथ सिंह, प्रो० अनिल कुमार दूबे, प्रो ० दिनेश कुमार ओझा, डॉ० प्रियंका सिंह, डॉ० विकास सिंह तथा साथ ही प्रो० जटाशंकर (सेवानिवृत्त) दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद वि० वि० इलाहाबाद के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनका सहयोग शोध कार्य के दौरान समय-समय पर मुझे प्राप्त होता रहा है। प्रो० प्रवेश भारद्वाज, इतिहास विभाग (वाह्य शोध पर्यवेक्षक) बी०एच०यू०, वाराणसी का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अपने सुझावों से मुझे लाभान्वित किया। इसके अतिरिक्त कॉलेज के प्राचार्य डॉ० सत्यदेव सिंह एवं अन्य आचार्यों डॉ० मुकेश कुमार सिंह, डॉ० सीमा सिंह के प्रति मैं अनुग्रहित हूँ, जिनसे अध्ययन एवं शोधावधि के दौरान उचित प्रोत्साहन व सहयोग मिलता रहा है। साथ ही श्री रामबचन पाण्डेय, रामवृक्ष पाण्डेय, अखिलेश कुमार पाण्डेय, अवधेश कुमार पाण्डेय, अनिल पाण्डेय, रुद्र मोहन मल्ल के प्रति मैं

अनुग्रहित हूँ, आपकी कृपा दृष्टि सदैव मुझपे बनी रहे, ईश्वर से यही कामना करता हूँ।

मैं अपनी पूजनीय एवं श्रद्धामयी माँ श्रीमती अरुणा पाण्डेय जिन्होंने मुझे हमेशा कर्मपथ पर चलने एवं जीवन में आगे बढ़ने का आशीर्वाद प्रदान किया। मैं अपने प्रिय भाई आशीष कुमार पाण्डेय के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, तथा प्रभु से आपके स्वस्थ्य एवं सुखमय जीवन की कामना करता हूँ, आपका स्नेह, सानिध्य एवं सर्वोच्च निर्देशन मेरे लिए धरोहर के रूप में रहेगा।

मैं विभाग के लिपिक श्रीमती शर्मिला भट्टाचार्या के प्रति विशेष आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका सहयोग शोध कार्य की अवधि में मिलता रहा है।

मैं अपने वरिष्ठ डा० अमित दूबे, डा० अरविन्द सिंह, विद्याशंकर पाण्डेय, सुनील सिंह पटेल, डॉ० अनुज सिंह के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनसे निरन्तर विचार-विमर्श सहयोग एवं प्रोत्साहन मिलता रहा।

शोध कार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग करने वाले जिन मित्रों का सहयोग रहा उनमें विजय शंकर सिंह, शिवकुमार जायसवाल, परमात्मा प्रसाद बैगा, खुशबू ठाकुर, कौशलेन्द्र शुक्ला, अश्विनी कुमार, विशाल तिवारी, शिवम पाण्डेय, पवन सिंह, सूरज मद्धेसिया, कविन्द्र निषाद, रवि निषाद, विमल वर्मा इन सभी को सहृदय धन्यवाद देना मैं अपना परम दायित्व समझता हूँ।

अंततः मैं शोध प्रबन्ध के टंकण कार्य को सुचारू रूप से पूर्ण करने हेतु मनीष गुप्ता, अन्नपूर्णा टाइपिंग लंका, वाराणसी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने पूर्ण लगन एवं अल्प अवधि से इस शोध-प्रबन्ध का टंकण कार्य सुन्दर रूप से सम्पन्न कर इसे पूर्णता प्रदान की।

अतः मैं ज्ञात-अज्ञात शुभेच्छुओं के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग मेरे शोध कार्य में मिला।

दिनांक

स्थान: वाराणसी प्रवीण पाण्डेय

# संकेताक्षर सूची

| | |
|---|---|
| आ०स०रि० | ऐन्युअल् रिपोर्ट ऑफ दि आर्केलाजिकल् सर्वे ऑफ इण्डिया। |
| इन्सिक्र० | इन्स्क्रिप्शन |
| इण्डि०एण्टि० | इण्डियन एण्टिक्वेरी। |
| इ० क० | इण्डियन कल्चर। |
| इ०हि०क्वा० | इण्डियन् हिस्टॉरिकल, क्वार्टली। |
| एपि० इण्डि० | एपिग्राफिया इण्डिका |
| कार्पस् | कार्पस् इन्सकृप्शनम् इण्डिकेरम्। |
| गुर्जरदेश | दि ग्लोरी दैट वाज गुर्जरदेश, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी। |
| गुर्जर प्रतीहारज् | दि हिस्ट्री ऑफ दि गुर्जर प्रतीहारज् , बैजनाथपुरी। |
| गुर्जर प्रतीहारज् | दि हिस्ट्री ऑफ दि गुर्जर प्रतीहारज् , विभूतिभूषण मिश्र। |
| ज०रा०ए०सो० बंगाल | जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, |
| ज०वि०ओ०रि०सो० | जर्नल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी |
| ज०रा०ए०सो० | जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी |
| वि०सं० | विक्रम संवत् |
| प्र० | प्रकाशन। |

# अनुक्रमणिका


| क्र. सं. | विवरण | | पृ०सं० |
|---|---|---|---|
| | आभार | | |
| | संकेताक्षर सूची | | |
| 1 | **प्रथम अध्याय :** | प्रस्तावना | 1-14 |
| 2 | **द्वितीय अध्याय :** | गुर्जर-प्रतिहार राजवंश का उद्भव एवं विकास | 15-67 |
| 3 | **तृतीय अध्याय :** | गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित समाज | 68-109 |
| 4 | **चतुर्थ अध्याय :** | गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित अर्थव्यवस्था | 110-137 |
| 5 | **पंचम अध्याय :** | गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित धर्म | 138-170 |
| 6 | **षष्ठम् अध्याय :** | गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित कला, शिक्षा एवं साहित्य | 171-199 |
| 7 | **सप्तम अध्याय :** | उपसंहार | 200-206 |
| 8 | **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची** | | 207-214 |
| 9 | **परिशिष्ट** | | |
| | • **मानचित्र** | | |
| | • **अभिलेखों की सूची** | | |
| | • **प्लेटस** | | |
| 10 | **प्रकाशित शोध आलेख** | | |
| 11 | **आत्म परिचय** | | |

# गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

की

पी-एच०डी० (प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध-सारांशिका


विभागाध्यक्ष

प्रो० सुमन जैन

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति

एवं पुरातत्त्व विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

HEAD

विभागाध्यक्ष

A.I.H.C. & Archaeology

प्रा० भा० इ० सं० एवं पुरातत्व

Banaras Hindu University

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Varanasi-5, वाराणसी-5

शोध निर्देशक

प्रो० प्रशान्त कश्यप

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति

एवं पुरातत्त्व विभाग

डी०ए०वी० पी०जी० कॉलेज

(बी०एच०यू०), वाराणसी

Prof. Prashant Kashyap

Dept. of AIHC & Archaeology

DAV PG College, BHU

Varanasi

शोध छात्र

प्रवीण पाण्डेय


प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग

कला संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी-221005


पंजीयन संख्या - 381808

शोध पंजीकरण संख्या - DAV/Res/Reg-AIHC/Sep15/16-15/1

वर्ष - 2023

# सारांशिका


हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् का काल उत्तर भारत के इतिहास में राजनीतिक उथल-पुथल और विघटन का काल था। सातवीं-आठवीं शतीं से हमें राजपूतों का उदय दिखाई देता है। अग्निकुल के राजपूतों में सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिहार वंश था जो गुर्जरों की शाखा से संबंधित होने के कारण इतिहास में 'गुर्जर प्रतिहार' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने **कन्नौज** को अपने साम्राज्य का केन्द्र बिन्दु बनाया। आठवीं सदी के पूर्वार्ध में जब भारत पर अरबो के आक्रमण प्रारम्भ हुए तो उनका सामना करने में **अवन्ति (उज्जैन)** के गुर्जर राज्य ने बहुत वीरता प्रदर्शित की और इनके कर्तृत्त्व का ही यह परिणाम हुआ कि अरब सेनाएं भारत की विजय नहीं कर सकी। गुर्जर-प्रतिहार शासको के लेख जोधपुर, कालंजर, लखनऊ, देवगढ़, ग्वालियर, बुलन्दशहर, करनाल, दिल्ली, भावनगर, जूनागढ़, ललितपुर, गया, पटना, फतेहपुर, प्रतापगढ़, झूंसी, कड़ा (उ०प्र०) आदि स्थानों से प्राप्त हुए है।

**विषय का उद्देश्य -**

उपर्युक्त सभी ग्रन्थ महत्वपूर्ण होते हुए भी अपनी-अपनी सीमा में आबद्ध है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों के आलोक में तत्कालीन सांस्कृतिक इतिहास के विविध पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जिसमें तद्युगीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा कलात्मक स्थिति के विविध आयामों को उद्घाटित किया गया है।

**शोध प्रविधि -**

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में ऐतिहासिक शोध प्रविधि का प्रयोग करते हुए गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों का सांस्कृतिक अनुशीलन करने में सर्वेक्षणात्मक, विवेचनात्मक, वर्णनात्मक तथा तुलनात्मक विधि का प्रयोग करके तथ्यों तक पहुंचने का प्रयास किया गया है।

**अध्याय योजना:-**

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

**प्रथम अध्याय : प्रस्तावना**

गुर्जर-प्रतिहारों की तीन शाखाएं थी- भृगुकच्छ-नान्दीपुरी, माण्डव्यपुर-मेदन्तक और उज्जैन । इनमें सबसे मुख्य शाखा उज्जैन में शासन करने वाले प्रतिहारों की थी। जिसने मालवा पर अधिकार कर पश्चिम में गुजरात तक के प्रदेशों पर अपनी अधिसत्तात्मक सत्ता स्थापित की। आगे चलकर इसी शाखा के शासक नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज पर अधिकार कर समस्त उत्तर भारत पर गुर्जर प्रतिहार वंश का साम्राज्य स्थापित किया। शोध प्रबन्ध में इसी उज्जैन - कन्नौज शाखा के गुर्जर-प्रतिहारों के अभिलेखों को अध्ययन का आधार बनाया गया है। जहाँ अभिलेख सहायक सिद्ध नहीं हुए हैं, वहाँ इतिहास के पुनर्निर्माण में साहित्य को आधार बनाया गया है।

गुर्जर-प्रतिहार अभिलेख प्राय: पाषाण निर्मित विभिन्न उपादानों यथा- शिलाफलक, स्तम्भ, प्रतिमा, मूर्तिद्वार, ताम्रपत्र आदि पर उत्कीर्ण है। इनके व इनके समकालीन सामन्तों व शासकों के लगभग 73 अभिलेख ग्वालियर, जोधपुर, कालजंर, बुलन्दशहर, करनाल, दिल्ली, भावनगर, जूनागढ़, ललितपुर, गया, प्रतापगढ़, झूसी, कड़ा, फतेहपुर, भरतपुर, अलवर, सहारनपुर, दीनाजपुर, बनारस, शिवपुरी, कन्नौज, दौलतपुर, पटना, भतूरिया (दक्षिण पूर्वी बिहार) आदि स्थानों से प्राप्त हुए है। मिहिरभोज के **ग्वालियर अभिलेख** के आधार पर इनके साम्राज्य की सीमा उत्तर में हरियाणा से लेकर दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक तथा पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में बंगाल तक निश्चित की जाती है। विषय वस्तु के आधार पर इन अभिलेखों का वर्गीकरण दानात्मक लेख व प्रशस्ति लेख के रूप में किया जा सकता है। गुर्जर-प्रतिहारों के अधिकांश अभिलेख **"ओऽम् नमों भगवते वासुदेवाय"** से प्रारम्भ हुए हैं। अभिलेखों की भाषा मुख्यत: संस्कृत है और लिपि नागरी है। गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों में तिथि अंकन के संदर्भ में विक्रम संवत् के साथ ही ऋतु का नाम, पक्ष एवं दिवस की संख्या भी दी गयी है। साथ-साथ शासन वर्ष और मास का भी उल्लेख मिलता है।

गुर्जर-प्रतिहार वंश के 52 और समकालीन शासकों व सामंतों के 21 अभिलेख मिलाकर कुल 73 अभिलेख मिलते है।जिसमें से 65 अभिलेख

राजनीतिक, 52 अभिलेख सामाजिक, 30 अभिलेख आर्थिक, 49 अभिलेख धार्मिक, 12 अभिलेख शिक्षा-साहित्य तथा 42 अभिलेख कलात्मक विशिष्टताओं की सूचना उपलब्ध कराते है। 11 अभिलेख भूमिदान को संदर्भित करते हैं। गुर्जर-प्रतिहारों के 49 अभिलेख जो धार्मिक प्रकृति के हैं, इनमें से 11 अभिलेख वैष्णव धर्म, 4 शैव धर्म, 2 सूर्य पूजा से सम्बन्धित है। ब्राह्मण धर्म के देवियों से सम्बन्धित 4 अभिलेख है। इसके अतिरिक्त जैन धर्म से सम्बन्धित 3 और बौद्ध धर्म से सम्बन्धित 4 अभिलेख प्राप्त होते हैं।

**द्वितीय अध्याय: गुर्जर-प्रतिहार राजवंश का उद्भव एवं विकास**

चन्दबरदाई ने **पृथ्वीराज रासो** में चार प्रसिद्ध राजकुलों की उत्पत्ति आबू पर्वत स्थित अग्निकुण्ड से बताई है जिसमें चाहमान, चालुक्य, परमार और प्रतिहार है। गुर्जर शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग बाणभट्ट एवं ह्वेनसांग करते हैं। प्रतिहारों को गुर्जर इसलिए माना गया है क्योंकि अभिलेखों में गुर्जर प्रतिहार पद एकसाथ मिलता है। प्रतिहारों के लिए गुर्जर या गुर्जरेश आदि शब्दों का प्रयोग नागभट्ट प्रथम के बुचकला अभिलेख में मिलता है। महेन्द्रपाल प्रथम के **राजौरगढ़ अभिलेख** में **'गुर्जरप्रतिहारान्वय:'** शब्द आया है। जिसका अर्थ गुर्जर देश के प्रतिहार कुल में उत्पन्न बतलाया गया है।

मिहिर भोज के ग्वालियर अभिलेख से इनके साम्राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय की तलहटीयों से विन्ध्यपर्वत तक तथा पश्चिम में गुजरात से पूर्व में बंगाल तक प्राप्त होती है। प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय द्वारा कन्नौज विजित करने के पश्चात इसे गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य की राजधानी बनाया गया।

**तृतीय अध्याय: गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित समाज**

वर्णाश्रम धर्म हिन्दू-समाज का मेरूदण्ड रहा हैं। कक्कुक के **घटियाला अभिलेख** से पता चलता है कि गुर्जर प्रतिहार शासक वर्णाश्रम धर्म में प्रवीण थे। ब्राह्मण सामाजिक, संगठन का महत्त्वपूर्ण एंव शीर्षस्थ समुदाय था जो अध्ययन एवं अनुशासन के प्रति समर्पित था। ब्राह्मणों के बाद दूसरा स्थान क्षत्रियों का था इन पर समाज व राज्य की सुरक्षा का भार था। तीसरा वर्ण वैश्य था। यह वणिक का काम करते थे। कृषि, पशुपालन व व्यापार इनका

प्रमुख व्यवसाय था। सामाजिक व्यवस्था में विशेष उल्लेखनीय बात कायस्थों का उदय था। इस काल में कायस्थों की भी अनेक उपजातियाँ बन गयी थी। जैसे-गौड़ कायस्थ, मथुरा कायस्थ आदि। ये अपनी योग्यता से उच्च पदों पर भी नियुक्त किये जाते थे। सामाजिक संरचना में चौथा स्थान शूद्रों का था। इनमें श्रमिक, खेतिहर और दस्तकार सभी सम्मिलित थे।

कुलीन परिवारों की कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया गया था। कन्या का विवाह पिता का उत्तरदायित्व था। सगोत्र विवाह वर्जित था। अनुलोम विवाह लोकप्रिय था। बहुविवाह भी प्रचलित था। राजशेखर के नाटक **कर्पूरमंजरी** में स्त्रियों के पहनने के तीन वस्त्रों का उल्लेख मिलता है- दुकूल, चोलक (कंचुलिका या चोली), नीवी (अधोवस्त्र)।मनोरंजन के साधनों में नृत्य, गायन व आखेट आदि प्रचलन में थे।

## चतुर्थ अध्याय : गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित अर्थव्यवस्था

प्रस्तुत अध्याय में गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि गुर्जर-प्रतिहार कालीन अभिलेखों में इस काल की आर्थिक दशा का पूर्ण विवरण नहीं मिलता है फिर भी कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि की पारपंरिक दशा के संकेत अवश्य मिलते है। मिहिरभोज के **ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख** में नहरों का उल्लेख मिलता है जो सिचाई व्यवस्था को प्रदर्शित करता है। महेन्द्रपाल प्रथम के **पेहोवा अभिलेख व सीयदोणी अभिलेख** से पशुपालन व पशु मेले के आयोजन का पता चलता है जहां पशुओं का क्रय-विक्रय किया जाता था। सिंचाई के लिए रहट (अरघट, अरहट) का प्रयोग किया जाता था। प्रचलित करों में प्रमुख है- भाग, भोग, हिरण्यकर, प्रवणि कर, जलकर, द्युतकर, दशापराध दण्ड, तुरूष्कदण्ड, खानों पर कर, यातायात शुल्क, चुंगी, अक्षपटल प्रस्थ, प्रतिहारप्रस्थ आदि। इस समय विनिमय का साधन मुद्रा थी। सिक्कों का भार 60-65 ग्रेन था। मिहिरभोज के **ग्वालियर अभिलेख** एवं **देवगढ़ जैन अभिलेख** से श्रेणी संगठनों व उनके द्वारा किये गये कार्यों के बारे में पता चलता है।

**पंचम अध्याय: गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित धर्म**

गुर्जर-प्रतिहार शासक धार्मिक रूप से सहिष्णु थे। सियदोणी अभिलेख से विष्णु के गरूड़ासन रूप का उल्लेख प्राप्त होता है। मिहिरभोज के **ग्वालियर प्रशस्ति**, नागभट्ट प्रथम के **बुचकला अभिलेख** से विष्णु के प्रति गुर्जर-प्रतिहार शासकों की भक्ति प्रदर्शित होती है। इनके अभिलेखों की शुरूआत विष्णु को नमस्कार अर्थात् 'ओम नमो वैष्णव' से होती है । वत्सराज, महेन्द्रपाल द्वितीय, त्रिलोचनपाल शिव के उपासक थे। इसके साथ ही महेन्द्रपाल द्वितीय के **प्रतापगढ़ अभिलेख** से सूर्यपूजा, मण्डोर के प्रतिहार शासक के कक्कुक के **घटियाला अभिलेख** से गणेश की स्तुति 'ओम विनायक', मिहिरभोज के **ग्वालियर प्रशस्ति** में कार्तिकेय को 'कुमार' नाम से वर्णित किया गया है। राजशेखर की **काव्यमीमांसा** से इस काल के पर्व के बारें में जैसे. चैत्र पर्व, वट सावित्री पर्व, महानवमी, दीपावली पितृ विसर्जन आदि का उल्लेख मिलता है। **ऊणा अभिलेख** से दानप्राप्तकर्ता के बारे में पता चलता है। मिहिरभोज के **अहार प्रस्तर अभिलेख** से दान के साक्षी की कानूनी मान्यता के बारे में पता चलता है। दान देने की सर्वाधिक प्रक्रिया चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, सोमवार के दिन सम्पन्न की गयी है। इस काल में तीर्थयात्राएं भी सम्पन्न होती थी।

**षष्ठम् अध्याय: गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित कला, शिक्षा एवं साहित्य**

पूर्वमध्यकाल में **कान्यकुब्ज (कन्नौज)** विद्या का सबसे बड़ा केन्द्र था। राजशेखर ने **काव्यमीमांसा** में कन्नौज की गोष्ठियों का वर्णन किया है। शिक्षा का प्रारंभ उपनयन संस्कार से होता था। विद्यार्थी को गुरुकुल में रहकर विद्या अध्ययन करना पड़ता था। अध्ययन समाप्ति पर उसके ज्ञान की परीक्षा ली जाती थी।

कवियों में राजशेखर की प्रसिद्धि सबसे अधिक थी। यह सम्राट महेन्द्रपाल का गुरू था। राजशेखर का प्राकृत नाटक **कर्पूरमंजरी** और संस्कृत महानाटक **बालरामायण** महेन्द्रपाल के शासन काल में लिखा गया। महीपाल के शासनकाल में **बालभारत** नाटक लिखा गया।

इस युग में इनके द्वारा निर्मित मंदिर स्थापत्य और कला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी अलंकरण शैली है। जिसमें सज्जा और निर्माण शैली का पूर्ण समन्वय प्रदर्शित हुआ है।

**सप्तम अध्याय : उपसंहार**

गुर्जर-प्रतिहार कालीन संस्कृति के अध्ययन के उपरान्त यह कहना उचित है कि इस समय समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था विद्यमान थी। साथ ही साथ समाज में अनेक जातियाँ एव उपजातियाँ भी विद्यमान थी। सामाजिक संस्थाओं में आश्रम व्यवस्था, संस्कार, विवाह, पुरुषार्थ आदि का भी यथोचित स्वरूप दिखाई पड़ता है और अभिलेखों से भी इसकी पुष्टि होती है। इस काल में अभिलेखों के अध्ययन से यह मालूम पड़ता है कि आय का मुख्य स्रोत कर था। अभिलेखों से हमें भाग, भोग, हिरण्य, प्रवणि, विषयदण्ड, अक्षपटलप्रस्थ, प्रतिहारप्रस्थ, विशतिअठप्रस्थ इत्यादि प्रमुख करों के बारे में जानकारी मिलती है। कृषि राज्य की आर्थिक व्यवस्था का मूल आधार था। प्रतिहार राजाओं के अभिलेख से यह सूचना मिलती है कि व्यापारी व्यापार के निमित्त एक स्थान से दूसरे स्थान जाते थे। प्रतिहार शासक यद्यपि वैष्णव धर्मानुयायी थे। इनके अभिलेखों से इसकी पुष्टि होती है परन्तु वैष्णव के साथ-साथ कुछ प्रतिहार राजा शैवधर्मानुयायी भी थे। इसके अतिरिक्त प्रतिहार कालीन बौद्ध व जैन मंदिरों के साक्ष्य से इस बात की पुष्टि होती है कि बौद्ध एवं जैन धर्म का भी समाज में प्रचलन था। इस काल में प्रमुख विद्वान जिन्हें राज्य द्वारा आश्रय प्राप्त था वह राजशेखर थे। इस काल की भाषा संस्कृत थी। इस काल के मंदिरों में जैसे जराईमठ मंदिर, मालादेवी मंदिर, उमरी सूर्य मंदिर, ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर, तेली का मंदिर, दानेबाबा का मंदिर, रामेश्वर मंदिर, बटेश्वर महादेव मंदिर, नचना कुठार मंदिर ओसिया मंदिर का नाम प्रमुख हैं जिससे हमें इस काल की कलात्मक विशेषताओं की सूचना मिलती है।

# प्रस्तावना

## विषय परिचय एवं महत्व -

हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् का काल उत्तर भारत के इतिहास में राजनीतिक उथल-पुथल और विघटन का काल था। सातवीं-आठवीं शतीं से हमें राजपूतों का उदय दिखाई देता है। अग्निकुल के राजपूतों में सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिहार वंश था जो गुर्जरों की शाखा से संबंधित होने के कारण इतिहास में 'गुर्जर प्रतिहार' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने **कन्नौज** को अपने साम्राज्य का केन्द्र बिन्दु बनाया। आठवीं सदी के पूर्वार्ध में जब भारत पर अरबो के आक्रमण प्रारम्भ हुए तो उनका सामना करने में **अवन्ति (उज्जैन)** के गुर्जर राज्य ने बहुत वीरता प्रदर्शित की और इनके कर्तृत्त्व का ही यह परिणाम हुआ कि अरब सेनाएं भारत की विजय नहीं कर सकी। गुर्जर-प्रतिहार शासको के लेख जोधपुर, कालंजर, लखनऊ, देवगढ़, ग्वालियर, बुलन्दशहर, करनाल, दिल्ली, भावनगर, जूनागढ़, ललितपुर, गया, पटना, फतेहपुर, प्रतापगढ़, झूंसी, कड़ा (उ०प्र०) आदि स्थानों से प्राप्त हुए है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में प्रतिहारों के अभिलेखों को ही अध्ययन का मुख्य आधार बनाया गया है। इन्हीं के आधार पर गुर्जर-प्रतिहार कालीन राजनीतिक परिदृश्य, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्य, शिक्षा और कलात्मक विशिष्टताओं का सम्यक् विवेचन करने का प्रयास किया गया। जहां

कहीं भी अभिलेख विषयवस्तु के विस्तार में सहायक सिद्ध नहीं हो सके है वहां समकालीन साहित्यिक स्रोतों का सहारा लिया गया है। जैसे- राजशेखर की **काव्यमीमांसा, कर्पूरमजंरी, बालरामायण, विद्धशालभंजिका,** जयानक द्वारा रचित **पृथ्वीराजविजय,**चन्द्रप्रभ सूरि की **प्रभावक प्रशस्ति**, हेमचन्द्र सूरि की **द्वयाश्रयकाव्य,** हरिभद्र की **समराइच्चकहा** आदि। इसके अलावा मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकारों की रचनाओं से भी इस युग के इतिहास की पुर्नरचना में सहायता मिलती है। ऐसे लेखकों में अल्बरूनी की **तारीख ए हिंद**, मिनहाजुद्दीन सिराज की **तबकाते-नासिरी**, हसन निजामी की **ताजुल मासिर,** अलगर्दीजी की **किताब-जैनुल-अखबार**, अलबिलादुरी की किताब **फुतुह अल बुलादान** आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

**पूर्ववर्ती कार्य-**

यद्यपि अनेक आधुनिक विद्वानों ने भी प्रतिहारों का इतिहास लिखने का प्रयास किया है जिसमें प्रतिहारों के उद्भव से लेकर समाज, धर्म, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, साहित्य, कला आदि सभी पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इनमें 20वीं शताब्दी में नदवी सैय्यद सुलेमान, ***अरब और भारत के सम्बन्ध***, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त प्रान्त, प्रथम सं०(1930), गौरीशंकर हीराचंद ओझा की ***राजपूताना का इतिहास अजमेर*** (1933), बैजनाथपुरी ने ***दि हिस्ट्री ऑफ दि गुर्जर प्रतिहाराज,***बंबई (1957), विभूतिभूषण मिश्र ने ***दि हिस्ट्री ऑफ दि***

***गुर्जर प्रतिहार***, दिल्ली, (1965), दशरथ शर्मा ने ***राजस्थान थ्रू दि एजेज्,*** बीकानेर (1966), डॉ० मथुरालाल शर्मा, ***प्रतिहार कालीन प्रारंभिक इतिहास*** (हिन्दी अनुवाद हिस्ट्री इण्डिया) खण्ड प्रथम, मूल सं० ईलियट और डाउसन, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, प्रथम संस्करण (1973), रोमिलाथापर, ***भारत का इतिहास,*** राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, (1975), डॉ० झिनकू यादव, ***समराइच्चकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन***, भारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण (1977), डॉ० श्याम लाल पाण्डेय, ***भारतीय राजशास्त्र प्रणेता,*** उ०प्र० हिन्दी संस्थान, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, (1989) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार विशुद्धानन्द पाठक ने ***उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास*** 600-1200 ई० (हिन्दी ग्रन्थ संस्थान, लखनऊ, 1990), आनन्द स्वरूप मिश्र ने ***कन्नौज का इतिहास,*** उ०प्र० हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण (1990), डॉ० रामबलि, ***ललितविस्तर एक समीक्षात्मक अध्ययन,*** कला प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, (1995), रामशरण शर्मा ने ***पूर्वमध्यकालीन भारत का सामंती समाज और और संस्कृति***, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1996), सत्यकेतु विधालंकार ने ***भारतीय इतिहास का पूर्व मध्ययुग***, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, पाचवां संस्करण (1998), आर० सी० मजूमदार ने ***गुर्जर प्रतिहाराज्***, बलदेव

उपाध्याय की ***भारतीय दर्शन***, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, पाचवां संस्करण, वाराणसी, डॉ० दुर्गानन्दन तिवारी***, ओसियाँ के मन्दिरों की देव मूर्तिया,*** कला प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, (1999), डॉ० भगवती लाल राजपुरोहित, ***भारतीय अभिलेख और इतिहास***, शिवालिक प्रकाशन दिल्ली, द्वितीय संस्करण, (2006) प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक शोध पत्र-पत्रिकाएँ भी उल्लेखनीय है जिनमें समय-समय पर गुर्जर प्रतिहारों के अभिलेख प्रकाशित होते रहें है। इन्हें इण्डियन एण्टिक्वेरी, एपिग्राफिया इण्डिका, जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोशायटी, जर्नल ऑफ दि बंगाल एशियाटिक सोशायटी आदि मुख्य हैं।

**विषय का उद्देश्य -**

उपर्युक्त सभी ग्रन्थ महत्वपूर्ण होते हुए भी अपनी-अपनी सीमा में आबद्ध है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों के आलोक में तत्कालीन सांस्कृतिक इतिहास के विविध पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जिसमें तद्युगीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा कलात्मक स्थिति के विविध आयामों को उद्घाटित किया गया है।

**शोध प्रविधि -**

प्रस्तुत शोध प्रबंध में ऐतिहासिक शोध प्रविधि का प्रयोग करते हुए गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों का सांस्कृतिक अनुशीलन किया गया है। प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध मूलत: अभिलेखीय साक्ष्यों पर आधारित है किन्तु शोध की पूर्णता के लिए साहित्यिक साक्ष्यों - **काव्यमीमांसा, बालभारत, कर्पूरमंजरी, जैनहरिवंश, बालरामायण, विद्धशालभंजिका** के साथ-साथ आभिलेखिक ग्रन्थों - **एपिग्राफिया इण्डिका, इण्डियन एण्टिक्वेरी, कार्पस इंस्क्रिप्शन इण्डिकेरम्** का भी अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त विषय से सम्बन्धित सभी प्रकाशित ग्रन्थ, पत्र-पत्रिकाओं, छायाचित्रों एवं मानचित्रों का व्यवस्थित व व्यापक अध्ययन करके शोध कार्य को मौलिक बनाने का प्रयास किया गया है। शोध कार्य के दौरान कतिपय महत्वपूर्ण पुस्तकालयों का भी भ्रमण किया गया है। इस प्रकार शोध में सर्वेक्षणात्मक, विवेचनात्मक, वर्णनात्मक तथा तुलनात्मक विधि का प्रयोग करके तथ्यों तक पहुंचने का प्रयास किया गया है।

**अध्याय योजना:-**

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

**प्रथम अध्याय : प्रस्तावना**

गुर्जर-प्रतिहारों की तीन शाखाएं थी- भृगुकच्छ-नान्दीपुरी, माण्डव्यपुर-मेदन्तक और उज्जैन । इनमें सबसे मुख्य शाखा उज्जैन में शासन करने वाले प्रतिहारों की थी। जिसने मालवा पर अधिकार कर पश्चिम में गुजरात तक के प्रदेशों पर अपनी अधिसत्तात्मक सत्ता स्थापित की। आगे चलकर इसी शाखा

के शासक नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज पर अधिकार कर समस्त उत्तर भारत पर गुर्जर प्रतिहार वंश का साम्राज्य स्थापित किया। शोध प्रबन्ध में इसी उज्जैन - कन्नौज शाखा के गुर्जर-प्रतिहारों के अभिलेखों को अध्ययन का आधार बनाया गया है। जहाँ अभिलेख सहायक सिद्ध नहीं हुए हैं, वहाँ इतिहास के पुनर्निर्माण में साहित्य को आधार बनाया गया है। मिहिरभोज के **सागरताल अभिलेख** से गुर्जर-प्रतिहार शासकों की वंशावली प्राप्त होती है। जिसके आधार पर गुर्जर-प्रतिहारों का मूल स्थान उज्जैन उल्लिखित किया जा सकता है।

गुर्जर-प्रतिहार अभिलेख प्राय: पाषाण निर्मित विभिन्न उपादानों यथा- शिलाफलक, स्तम्भ, प्रतिमा, मूर्तिद्वार, ताम्रपत्र आदि पर उत्कीर्ण है। इनके व इनके समकालीन सामन्तों व शासकों के लगभग 73 अभिलेख ग्वालियर, जोधपुर, कालजंर, बुलन्दशहर, करनाल, दिल्ली, भावनगर, जूनागढ़, ललितपुर, गया, प्रतापगढ़, झूसी, कड़ा, फतेहपुर, भरतपुर, अलवर, सहारनपुर, दीनाजपुर, बनारस, शिवपुरी, कन्नौज, दौलतपुर, पटना, भतूरिया (दक्षिण पूर्वी बिहार) आदि स्थानों से प्राप्त हुए है। मिहिरभोज के **ग्वालियर अभिलेख** के आधार पर इनके साम्राज्य की सीमा उत्तर में हरियाणा से लेकर दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक तथा पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में बंगाल तक निश्चित की जाती है। विषय वस्तु के आधार पर इन अभिलेखों का वर्गीकरण दानात्मक लेख व प्रशस्ति लेख के रूप में किया जा सकता है। गुर्जर-प्रतिहारों के अधिकांश अभिलेख **"ओऽम् नमों भगवते वासुदेवाय"** से प्रारम्भ हुए हैं। अभिलेखों की भाषा मुख्यत: संस्कृत है और लिपि नागरी है। गुर्जर

प्रतिहार अभिलेखों में तिथि अंकन के संदर्भ में विक्रम संवत् के साथ ही ऋतु का नाम, पक्ष एवं दिवस की संख्या भी दी गयी है। साथ-साथ शासन वर्ष और मास का भी उल्लेख मिलता है।

गुर्जर-प्रतिहार वंश के 52 और समकालीन शासकों व सामंतों के 21 अभिलेख मिलाकर कुल 73 अभिलेख मिलते है।जिसमें से 65 अभिलेख राजनीतिक, 52 अभिलेख सामाजिक, 30 अभिलेख आर्थिक, 49 अभिलेख धार्मिक, 12 अभिलेख शिक्षा-साहित्य तथा 42 अभिलेख कलात्मक विशिष्टताओं की सूचना उपलब्ध कराते है। 11 अभिलेख भूमिदान को संदर्भित करते हैं। गुर्जर-प्रतिहारों के 49 अभिलेख जो धार्मिक प्रकृति के हैं, इनमें से 11 अभिलेख वैष्णव धर्म, 4 शैव धर्म, 2 सूर्य पूजा से सम्बन्धित है। ब्राह्मण धर्म के देवियों से सम्बन्धित 4 अभिलेख है। इसके अतिरिक्त जैन धर्म से सम्बन्धित 3 और बौद्ध धर्म से सम्बन्धित 4 अभिलेख प्राप्त होते हैं।

## द्वितीय अध्याय: गुर्जर-प्रतिहार राजवंश का उद्भव एवं विकास

चन्दबरदाई ने **पृथ्वीराज रासो** में चार प्रसिद्ध राजकुलों की उत्पत्ति आबू पर्वत स्थित अग्निकुण्ड से बताई है जिसमें चाहमान, चालुक्य, परमार और प्रतिहार है। गुर्जर शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग बाणभट्ट एवं ह्वेनसांग करते हैं। प्रतिहारों को गुर्जर इसलिए माना गया है क्योंकि अभिलेखों में गुर्जर प्रतिहार पद एकसाथ मिलता है। प्रतिहारों के लिए गुर्जर या गुर्जरेश आदि शब्दों का प्रयोग नागभट्ट प्रथम के बुचकला अभिलेख में मिलता है। महेन्द्रपाल

प्रथम के **राजौरगढ़ अभिलेख** में **'गुर्जरप्रतिहारान्वय:'** शब्द आया है। जिसका अर्थ गुर्जर देश के प्रतिहार कुल में उत्पन्न बतलाया गया है।

इनके इस साम्राज्य विस्तार की सूचना प्रारम्भिक शासक नागभट्ट प्रथम के **बुचकला अभिलेख** व कक्कुक के **घटियाला अभिलेख** से प्राप्त होती है,जिसमें भड़ौच, उज्जैन, मालवा, भिनमाल, जुर्ज (गुर्जर) पर विजय प्राप्त करने की सूचना मिलती है। आगे चलकर मिहिर भोज के ग्वालियर अभिलेख से इनके साम्राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय की तलहटीयों से विन्ध्यपर्वत तक तथा पश्चिम में गुजरात से पूर्व में बंगाल तक प्राप्त होती है। प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय द्वारा कन्नौज विजित करने के पश्चात इसे गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य की राजधानी बनाया गया।

## तृतीयअध्याय: गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित समाज

वर्णाश्रम धर्म हिन्दू-समाज का मेरूदण्ड रहा हैं। कक्कुक के **घटियाला अभिलेख** से पता चलता है कि गुर्जर प्रतिहार शासक वर्णाश्रम धर्म में प्रवीण थे। ब्राह्मण सामाजिक, संगठन का महत्त्वपूर्ण एंव शीर्षस्थ समुदाय था जो अध्ययन एवं अनुशासन के प्रति समर्पित था। ब्राह्मण वर्ग के अन्तर्गत अन्तर्विभाजन की प्रक्रिया भी  इस युग में तीव्र हो गई थी। राजकीय दानपत्रों में इनके गोत्र व शाखा का स्पष्ट संकेत मिलता है। मिहिरभोज के **वराह ताम्रपत्र** में विभिन्न ब्राह्मण गोत्रों की चर्चा की गई है। ब्राह्मणों के बाद दूसरा स्थान क्षत्रियों का था इन पर समाज व राज्य की सुरक्षा का भार था। तीसरा वर्ण वैश्य था। यह वणिक का काम करते थे। कृषि, पशुपालन व व्यापार

इनका प्रमुख व्यवसाय था। सामाजिक व्यवस्था में विशेष उल्लेखनीय बात कायस्थों का उदय था। इस काल में कायस्थों की भी अनेक उपजातियाँ बन गयी थी। जैसे-गौड़ कायस्थ, मथुरा कायस्थ आदि। ये अपनी योग्यता से उच्च पदों पर भी नियुक्त किये जाते थे। सामाजिक संरचना में चौथा स्थान शूद्रों का था। इनमें श्रमिक, खेतिहर और दस्तकार सभी सम्मिलित थे।

निम्नस्तर के कार्य करने के कारण कुछ जातियाँ नगर के बाहर रहती थी। इनमें भिल्ल,डोम्ब, सौकरिक, मत्स्यबंधक, रजक, चर्मकार, शाकुनिक (बहेलिया) आदि। राजशेखर कृत काव्यमीमांसा व कर्पूरमंजरी से इनका संकेत मिलता है। इन्हें अन्त्यज या अस्पृश्य की कोटि में गिना जाता था।

इस काल में हमें रूद्राणी, कलावती, अवन्तिसुन्दरी, शीलभट्टारिका और प्रभुदेवी जैसी विदुषी स्त्रियों के उदाहरण मिलते है।ऐसा लगता है कि कुलीन परिवारों की कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया गया था। कन्या का विवाह पिता का उत्तरदायित्व था। सगोत्र विवाह वर्जित था। अनुलोम विवाह लोकप्रिय था। **ग्वालियर अभिलेख** से इनमें परदे प्रथा का प्रचलन भी दिखाई देता है। बहुविवाह भी प्रचलित था। विधवाओं को उनके आभूषण तथा स्त्रीधन का अधिकार था। राजशेखर के नाटक **कर्पूरमंजरी** में स्त्रियों के पहनने के तीन वस्त्रों का उल्लेख मिलता है- दुकूल, चोलक (कंचुलिका या चोली), नीवी (अधोवस्त्र)। रेशम का खूब प्रचार था- चीनांशुक, देवांशुक और चट्टांशुक ये रेशम के प्रकार थे। ओढ़ने वाला वस्त्र उत्तरीय कहा जाता था।

## चतुर्थ अध्याय : गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित अर्थव्यवस्था

प्रस्तुत अध्याय में गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि गुर्जर-प्रतिहार कालीन अभिलेखों में इस काल की आर्थिक दशा का पूर्ण विवरण नहीं मिलता है फिर भी कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि की पारपंरिक दशा के संकेत अवश्य मिलते है। महेन्द्रपाल के **पेहोवा अभिलेख** में अनाज, पान, मसालें, नमक, हींग, कपूर, कस्तूरी, चन्दन, नारियल, हाथीदाँत, गन्ना, मसूर, उड़द, चना, मटर, चावल, गेहूँ, आदि का उल्लेख मिलता है। इस समय राज्य की मुख्य आय भूमि से होती थी। मिहिरभोज के **ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख** में नहरों का उल्लेख मिलता है जो सिचाई व्यवस्था को प्रदर्शित करता है। महेन्द्रपाल प्रथम के **पेहोवा अभिलेख व सीयदोणी अभिलेख** से पशुपालन व पशु मेले के आयोजन का पता चलता है जहां पशुओं का क्रय-विक्रय किया जाता था। सिंचाई के लिए रहट (अरघट, अरहट) का प्रयोग किया जाता था। **काव्यमीमांसा** में ग्रीष्मकाल में रहट (घटिकावलय) के प्रयोग का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। अभिलेखों में मणि, पालिका, पल, ताली, हस्त, कर्ष, आढ़क, द्रोण, कशल आदि शब्द तौल के लिए प्रयोग किये हुए प्राप्त होते है। प्रचलित करों में प्रमुख है- भाग, भोग, हिरण्यकर, प्रवणि कर, जलकर, द्युतकर, दशापराध दण्ड, तुरूष्कदण्ड, खानों पर कर, यातायात शुल्क, चुंगी, अक्षपटल प्रस्थ, प्रतिहारप्रस्थ आदि। इस समय विनिमय का साधन मुद्रा थी। सिक्कों का भार 60-65 ग्रेन था। प्रतिहार

कालीन साहित्य में दीनार, सुवर्ण, निष्क, पारुत्थ, द्रुम, द्रम्मार्थ, रूपक, कार्षापण, काकिणी तथा वराटिका अथवा कवाड्डिका आदि सिक्कों का उल्लेख मिलता है। महेन्द्रपाल प्रथम के **ऊणा अभिलेख** एवं **पेहोवा अभिलेख** से उद्योग-व्यवसाय के बारें में पता चलता है। मिहिरभोज के **ग्वालियर अभिलेख** एवं **देवगढ़ जैन अभिलेख** से श्रेणी संगठनों व उनके द्वारा किये गये कार्यों के बारे में पता चलता है।

**पंचम अध्याय: गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित धर्म**

गुर्जर-प्रतिहार शासक धार्मिक रूप से सहिष्णु थे। मिहिरभोज ने भगवती के उपासक होते हुए भी विष्णु का मंदिर बनवाया था । महेन्द्रपाल द्वितीय ने शैव मतानुयायी होते हुए भी वटयक्षिणी देवी के लिए दान दिया। उनका दण्डनायक माधव सूर्य देवता को ग्राम भेंट करता है जिसके समीप ही शिव की मूर्ति है। महेन्द्रपाल द्वितीय के **प्रतापगढ़ अभिलेख** से इसकी पुष्टि होती है। सियदोणी अभिलेख से विष्णु के गरूड़ासन रूप का उल्लेख प्राप्त होता है। मिहिरभोज के **ग्वालियर प्रशस्ति,** नागभट्ट प्रथम के **बुचकला अभिलेख** से विष्णु के प्रति गुर्जर-प्रतिहार शासकों की भक्ति प्रदर्शित होती है। इनके अभिलेखों की शुरूआत विष्णु को नमस्कार अर्थात् 'ओम नमो वैष्णव' से होती है । वत्सराज, महेन्द्रपाल द्वितीय, त्रिलोचनपाल शिव के उपासक थे। **सियदोणी अभिलेख, ग्वालियर प्रशस्ति** आदि से शिव मंदिर बनवाने व शिव के प्रति भक्ति का उल्लेख मिलता है। मिहिरभोज के **ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख** से सूचना मिलती है कि अल्ल (कोट्टपाल) द्वारा नवदुर्गा मंदिर का

निर्माण कराया गया था। इसके साथ ही महेन्द्रपाल द्वितीय के **प्रतापगढ़ अभिलेख** से सूर्यपूजा, मण्डोर के प्रतिहार शासक के कक्कुक के **घटियाला अभिलेख** से गणेश की स्तुति 'ओम विनायक', मिहिरभोज के **ग्वालियर प्रशस्ति** में कार्तिकेय को 'कुमार' नाम से वर्णित किया गया है। महेन्द्रपाल प्रथम का **इत्खोरी अभिलेख** बौद्ध देवी तारा के आधार स्तम्भ पर पाया गया है। राजशेखर की **काव्यमीमांसा** से इस काल के पर्व के बारें में जैसे. चैत्र पर्व, वट सावित्री पर्व, महानवमी, दीपावली पितृ विसर्जन आदि का उल्लेख मिलता है। महीपाल प्रथम के **हड्डाला ताम्रपत्र,** महेन्द्रपाल द्वितीय के **सियदोणी अभिलेख** एवं **प्रतापगढ़ अभिलेख** आदि से दान-दक्षिणा इत्यादि के बारें में भी पता चलता है। **ऊणा अभिलेख** से दानप्राप्तकर्ता के बारे में पता चलता है। मिहिरभोज के **अहार प्रस्तर अभिलेख** से दान के साक्षी की कानूनी मान्यता के बारे में पता चलता है। दान देने की सर्वाधिक प्रक्रिया चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, सोमवार के दिन सम्पन्न की गयी है। इस काल में तीर्थयात्राएं भी सम्पन्न होती थी। तत्कालीन साहित्य में दस प्रमुख तीर्थो-गया, वाराणसी, हरिद्वार, पुष्कर, प्रभास, नैमिषक्षेत्र, केदार, कुरुक्षेत्र, उज्जयिनी तथा प्रयाग का उल्लेख मिलता है।

**षष्ठम् अध्याय: गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित कला, शिक्षा एवं साहित्य**

पूर्वमध्यकाल में **कान्यकुब्ज (कन्नौज)** विद्या का सबसे बड़ा केन्द्र था। राजशेखर ने **काव्यमीमांसा** में कन्नौज की गोष्ठियों का वर्णन किया है। शिक्षा का प्रारंभ उपनयन संस्कार से होता था। क्षत्रिय बालक को बहत्तर कलाएं सिखाई जाती थी किन्तु उसे अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुणता प्राप्त करना आवश्यक था। विद्यार्थी को गुरुकुल में रहकर विद्या अध्ययन करना पड़ता था। अध्ययन समाप्ति पर उसके ज्ञान की परीक्षा ली जाती थी।

**मिहिरभोज** के दरबार में ग्वालियर प्रशस्ति का रचनाकार भट्ट धन्नेक का पुत्र बालादित्य रहता था। कवियों में राजशेखर की प्रसिद्धि सबसे अधिक थी। यह सम्राट महेन्द्रपाल का गुरू था। राजशेखर का प्राकृत नाटक **कर्पूरमंजरी** और संस्कृत महानाटक **बालरामायण** महेन्द्रपाल के शासन काल में लिखा गया। महीपाल के शासनकाल में **बालभारत** नाटक लिखा गया।

इस युग में इनके द्वारा निर्मित मंदिर स्थापत्य और कला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी अलंकरण शैली है। जिसमें सज्जा और निर्माण शैली का पूर्ण समन्वय प्रदर्शित हुआ है। गुर्जर-प्रतिहार शासकों द्वारा बनवायें गये मन्दिर विभिन्न स्थानों से प्राप्त होते हैं। जो इस प्रकार है - **ललितपुर (देवगढ़ जैनमंदिर), झांसी (जराईमठ मंदिर), विदिशा (माला देवी मंदिर), टीकमगढ़ (उमरी सूर्य मंदिर), ग्वालियर (चतुर्भुज मंदिर, तेली का मंदिर, दानेबाबा का मंदिर, रामेश्वर मंदिर,तेरही शिवालय), मुरैना (बटेश्वर महादेव देवालय), पन्ना (नचना कुठार मंदिर),जोधपुर (ओसियां मंदिर)** समूह आदि है। इन मंदिरों में विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित है।

**प्रतिहारकालीन ग्वालियर अभिलेख** से विष्णु गरूड़ासन और मुरारी, वामन, माधव, विष्णु, **घटियाला अभिलेख** से नरकद्विष, **प्रतापगढ़ अभिलेख** से त्रैलोक्य मोहन तथा सियदोणी अभिलेख से उमामहेश्वर, **बुचकला अभिलेख** से त्रिलोचन सिद्धेश्वर महादेव, **असनी अभिलेख** से शम्भू, **प्रतापगढ़ अभिलेख** से दुर्गा, वटयक्षिणी देवी, सर्वमंगलादेवी, सूर्य इत्यादि के बारे में जानकारी मिलती है।

**सप्तम अध्याय : उपसंहार**

गुर्जर-प्रतिहार कालीन संस्कृति के अध्ययन के उपरान्त यह कहना उचित है कि इस समय समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था विद्यमान थी। साथ ही साथ समाज में अनेक जातियाँ एव उपजातियाँ भी विद्यमान थी। सामाजिक संस्थाओं में आश्रम व्यवस्था, संस्कार, विवाह, पुरुषार्थ आदि का भी यथोचित स्वरूप दिखाई पड़ता है और अभिलेखों से भी इसकी पुष्टि होती है। इस काल में अभिलेखों के अध्ययन से यह मालूम पड़ता है कि आय का मुख्य स्रोत कर था। अभिलेखों से हमें भाग, भोग, हिरण्य, प्रवणि, विषयदण्ड, अक्षपटलप्रस्थ, प्रतिहारप्रस्थ, विशतिअठप्रस्थ इत्यादि प्रमुख करों के बारे में जानकारी मिलती है। कृषि राज्य की आर्थिक व्यवस्था का मूल आधार था। प्रतिहार राजाओं के अभिलेख से यह सूचना मिलती है कि व्यापारी व्यापार के निमित्त एक स्थान से दूसरे स्थान जाते थे। प्रतिहार शासक यद्यपि वैष्णव धर्मानुयायी थे। इनके अभिलेखों से इसकी पुष्टि होती है परन्तु वैष्णव के साथ-साथ कुछ प्रतिहार राजा शैवधर्मानुयायी भी थे। इसके अतिरिक्त प्रतिहार कालीन बौद्ध

व जैन मंदिरों के साक्ष्य से इस बात की पुष्टि होती है कि बौद्ध एवं जैन धर्म का भी समाज में प्रचलन था। इस काल में प्रमुख विद्वान जिन्हें राज्य द्वारा आश्रय प्राप्त था वह राजशेखर थे। इस काल की भाषा संस्कृत थी। इस काल के मंदिरों में जैसे जराईमठ मंदिर, मालादेवी मंदिर, उमरी सूर्य मंदिर, ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर, तेली का मंदिर, दानेबाबा का मंदिर, रामेश्वर मंदिर, बटेश्वर महादेव मंदिर, नचना कुठार मंदिर ओसिया मंदिर का नाम प्रमुख हैं जिससे हमें इस काल की कलात्मक विशेषताओं की सूचना मिलती है।

# गुर्जर-प्रतिहार राजवंश का उद्भव एवं विकास

प्रस्तुत द्वितीय अध्याय में प्रतिहार राजवंश के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है। पूर्वमध्ययुगीय राजवंशों में प्रतिहारों का साम्राज्य सबसे बड़ा था। उन्होंने त्रिपक्षीय संघर्ष में भाग लेकर उत्तर एवं दक्षिणापथ के राजवंशों से संघर्ष किया। इसके साथ ही अरबों के बढ़ते प्रभाव को भी रोके रखा। सांस्कृतिक दृष्टि से भी उन्होंने साहित्य एवं कला के विकास में योगदान दिया। इन्हीं विशेषताओं के महत्वपूर्ण संदर्भो को यहां रेखांकित किया गया है।

## गुर्जर- प्रतिहार राजवंश के उद्भव की राजनीतिक पृष्ठभूमि

भारतीय इतिहास में मौर्यों और गुप्तों का राजनीतिक स्वरूप अखिल भारतीय था और उनके शासन में प्रायः समस्त उत्तर भारत अनेक दृष्टियों से एकसूत्र में आबद्ध था। इनके उपरान्त पाँचवी-छठीं शताब्दी से राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों ही क्षेत्रों में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ हुई जो अंततः देश को विश्रृंखलित कर देने का कारण बनी। क्षेत्रवाद की संकुचित भावनाओं का उदय सर्वप्रथम हमें गुप्त साम्राज्य की अवनति के साथ दृष्टिगोचर होता है। परिणामस्वरूप सारा देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया, क्षेत्रीय स्वरूप और स्थानीय भावनाओं का तेजी से विकास हुआ और अरक्षा तथा अनिश्चितता का वातावरण समस्त उत्तर भारत में छाने लगा। प्रशासनिक क्षेत्रों में भी एकरूपता, संतुलन और आंतरिक संघटन ढीले पड़ने लगे। राजनीतिक संघर्षों और अविश्वास की प्रवृत्ति बढ़ जाने के कारण विभिन्न शासकों ने समान सामुहिक समस्याओं पर सोचने-विचारने की चिन्ता नहीं की। प्रायः सबकी दृष्टि व्यक्तिवादी, क्षेत्रवादी

अथवा स्थानीयतावादी समस्याओं पर केन्द्रित हो गयी थी। सभी राजाओं ने अब अपने ही राज्य और राजवंशों की रक्षा करना अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री मान ली और अखिल भारतीय दृष्टि से सोचने की कोई दूरगामी दूरदृष्टि नहीं दिखायी।[i]

प्राचीन भारतीय इतिहास में ऐसा नहीं है कि साम्राज्यभोगी गुप्तों के बाद भारतवर्ष में उनकी तुलना में सम्राट और साम्राज्य नहीं हुए। सातवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में हर्षवर्धन और नवीं शती में गुर्जर प्रतिहारों का कन्नौज साम्राज्य अपनी शक्ति और वैभव में गुप्तों से पीछे नहीं था। किन्तु वे 'सकलउत्तरापथेश्वर' मात्र थे।[ii] मौर्यों और गुप्तों का मगध साम्राज्य दक्षिण भारत के लिए भी अधिराट् स्वरूप थे, किन्तु उसके विपरीत कन्नौज साम्राज्य अपना प्रभाव विंध्याचल पर्वतमाला के नीचे कभी भी स्थापित नहीं कर सका। इसके कारण कन्नौज साम्राज्य कभी भी शान्त और निर्वाध होकर देश के सांस्कृतिक, कलात्मक तथा साहित्यिक उन्नयन में उस प्रकार प्रगति नहीं कर सका जिस प्रकार मौर्यों और गुप्तों ने की थी। जब यह अवस्था कन्नौज के विशाल साम्राज्य की थी तो अन्य छोटे-छोटे सामन्त राज्यों की बात ही क्या कहनी। इस स्थिति का सर्वमुख्य कारण था भारतवर्ष के विशाल भू-भाग पर फैले हुए अनगिनत छोटे-बड़े राज्यों का प्रादुर्भाव और उनका आपसी संघर्ष।

हम जानते है कि मौर्यों से लेकर गुप्त शासकों तक प्रशासनिक गतिविधियों का केन्द्र पाटलिपुत्र था। कालान्तर में पाटलिपुत्र का स्थान कन्नौज ने ले लिया। कन्नौज की इस विशेषता का जनक हर्षवर्धन था। किन्तु उसकी मृत्यु के बाद लगभग एक सौ पचास वर्षों तक यशोवर्मन् की दिग्विजय के बावजूद, कन्नौज का उत्तर भारतीय राजनीति में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं दिखायी देता। यह समय एक प्रकार से राजनीतिक शून्यता का काल प्रतीत होता है। राजनीतिक अस्त-व्यस्तता की स्थिति

में ही पश्चिमी समुद्र तट के क्षेत्रों पर 712 ई० में अरबों का आक्रमण प्रारम्भ हुआ तथा सिन्ध और मुल्तान उनके अधिकार में चले गये। यह स्थिति आठवीं शताब्दी के तृतीय चतुर्थांश के अन्त तक बनी रही जब हमें उत्तर भारतीय राजनीति में पुनः एक स्पन्दनकारी परिवर्तन दिखायी देता है।[iii] लगभग सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राजनीतिक नवनिर्माण की भावना से प्रेरित प्रायः एक ही साथ तीन दिशाओं में तीन विभिन्न राजनीतिक शक्तियाँ उदित हुई। इनमें दक्षिणापथ में मान्यखेट के राष्ट्रकूटों, बंगाल (गौड) के पालों और मालवा-राजस्थान के गुर्जर प्रतिहारों ने, अपने वास्तविक अधिकार-क्षेत्रों अथवा प्रभाव क्षेत्रों का समान रूप से विस्तार करते हुए, उत्तर भारतीय राजनीतिक वर्चस्व के लिए संघर्षपूर्ण प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया, जो लगभग एक सौ पचास वर्षों तक चलता रहा। इनके पारस्परिक संघर्ष मालवा से लेकर बंगाल तक के कई क्षेत्रों में कई बार हुए, किन्तु उनका केन्द्र प्रायः दोआब का उपजाऊ मैदान ही था। उसकी राजधानी कन्नौज उन अनेक मार्गों को जोड़ती थी जो गंगा के किनारों से होते हुए पूर्व में समुद्र तट तक एवं मालवा से होते हुए पश्चिमी समुद्र तट तथा विन्ध्याचल के दक्षिण में स्थित अनेक प्रमुख नगरों और व्यापारिक केन्द्रों तक जाते थे। उनके द्वारा उत्पन्न त्रिकोणात्मक संघर्ष का मूल कारण इन व्यापारिक मार्गों और अन्न के उत्पादक प्रमुख क्षेत्रों पर अधिकार करना था। पालों और प्रतिहारों के बीच होने वाले युद्धों का एक अन्य कारण उत्तर भारतीय राजनीति को अप्रतिद्वन्द्वी रूप में संचालित करने की मनोकामना प्रतीत होती है। अन्ततः इस दौड़ में गुर्जर प्रतीहार बाजी मार ले गये और कन्नौज पर उन्होंने अधिकार कर प्रायः समस्त उत्तर भारतीय राजनीति को बहुत दिनों तक प्रभावित एवं संचालित किया। यही कारण है कि इस युग को 'साम्राज्यवादी कन्नौज का युग' भी कहा जाता है।[iv]

गुर्जर-प्रतिहारों की तीन शाखाएं थी, जो क्रमशः भृगुकच्छ-नान्दीपुरी, माण्डव्यपुर-मेदान्तक और उज्जैन नामक नगरों पर शासन करती थी। इनमें सबसे मुख्य शाखा उज्जैन से शासन करने वाली गुर्जर प्रतिहारो की थी। जिसने मालवा पर अधिकार कर पश्चिम में गुजरात तक के प्रदेशों पर अपनी सत्ता स्थापित की। आगे चलकर इसी शाखा के शासक नागभट्ट द्वितीय कन्नौज को विजित कर समस्त उत्तर भारत पर गुर्जर प्रतिहार वंश का साम्राज्य स्थापित किया।

कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों का मूल स्थान उज्जैन था। इसकी जानकारी हमें मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख से प्राप्त होती है। जिनसेन द्वारा रचित 'जैनहरिवंश'[v] के श्लोक से ज्ञात होता है कि 783 ई० में वर्धमानपुर (काठियावाड क्षेत्र में स्थित आधुनिक वधवान) की उत्तर दिशा में इंद्रायुध (कन्नौज में), दक्षिण दिशा में श्रीवल्लभ, पूर्व दिशा में अवन्ति (उज्जैन) के राजा वत्सराज और पश्चिम दिशा में सौर्यो के देश पर वराह शासन करते थे। वत्सराज और इसके पूर्वजों की जानकारी मिहिरभोज की ग्वालियर प्रशस्ति[vi] से प्राप्त होती है। वंशजों के रूप में ही मिहिरभोज तथा कन्नौज के प्रतिहारों का उसमें वर्णन है। इस आधार पर स्मिथ[vii] और स्टेन कोनो[viii] का यह मत असंगत हो जाता है कि कन्नौज के प्रतिहारों का मूल क्षेत्र श्रीमाल अथवा भिनमाल (दक्षिणी राजपूताना) था।

## गुर्जर-प्रतिहारों की उत्पत्ति का सिद्धान्त

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में टॉड ने प्रतिहारों के साथ अन्य अनेक क्षत्रिय राजवंशों की विदेशी उत्पत्ति के सिद्धांत का प्रतिपादन कर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के गौरव के औचित्य का अनुमोदन किया था। फलतः प्रतिहारों की उत्पत्ति का विषय क्रमशः जटिल से जटिलतर होता गया और साम्राज्यवादी इतिहासकारों

की मान्यताओं को स्वीकृति प्रदान करने में भारतीय साक्ष्यों की निरन्तर अवहेलना होती गई। टॉड ने राजस्थान के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' का अध्ययन किया जिसमें क्षत्रियों के चार प्रसिद्ध राजकुलों (चाहमान, चालुक्य, परमार और प्रतिहार) की उत्पत्ति आबू पर्वत स्थित अग्निकुण्ड से बतलाई गई थी। इसी को आधार मानकर उसने इन चार राजवंशों की विदेशी उत्पत्ति के सिद्धांत की स्थापना कर डाली। उसने राजपूतों और सीथियन लोगों की धार्मिक, सामाजिक एवं शौर्य सम्बन्धी परम्पराओं में बहुत समानता बतलाते हुए उनकी नस्ल की समानता का सिद्धांत प्रतिपादित किया और बतलाया कि भारत में प्रवेश के बाद इन्हें यज्ञ द्वारा शुद्ध करके क्षत्रिय वर्ण में सम्मिलित कर लिया गया।[ix]

ऐसा ही विचार टॉड की पुस्तक के विद्वान् सम्पादक क्रुक का भी है कि रासो में वर्णित पुरावृत्त अग्नि द्वारा शुद्धि का द्योतक है जो दक्षिणी-राजस्थान में सम्पन्न हुआ था तथा जिसके द्वारा विदेशियों की अशुद्धता को दूर कर उन्हें हिन्दू वर्ण-व्यवस्था में सम्मिलित कर लिया गया।[x] टॉड एवं क्रुक के अतिरिक्त प्रतिहारों को विदेशी मानने वाले सर जेम्स कैम्पबेल गुर्जरों की एकरूपता उन लोगों से स्थापित करने का प्रयास करते हैं जो अनेक शताब्दियों से एशिया और यूरोप की सीमा पर कैस्पियन सागर के आस-पास निवास करते थे। उनके अनुसार प्रतिहार गुर्जर थे और इसी कारण उन्हें गुर्जर-प्रतिहार कहा गया है।[xi] स्मिथ, गुर्जरों का समीकरण हूणों से करते हैं और प्रतिहारों को गुर्जरों की संतान मानते हैं।[xii] हार्नले प्रतिहारों का एकीकरण तुर्कों के साथ करते हैं। उनका कथन है कि छठीं शताब्दी के मध्य में उन्होंने राजपूताना पर अधिकार कर लिया था।[xiii] कनिंघम के अनुसार, प्रतिहार गुर्जरों की संतान है और स्वयं गुर्जर यू-चियों के वंशज है, जिससे प्रसिद्ध कुषाण वंश

का प्रादुर्भाव हुआ था।[xiv] जैक्सन का मत है कि, प्रतिहार गुर्जर हैं और भारत में गुर्जर जाति का प्रवेश पांचवीं शताब्दी में हुआ क्योंकि उनका सर्वप्रथम उल्लेख हर्षचरित में ही मिलता है।[xv] भण्डारकर प्रतिहारों को गुर्जर मानते हुए सर जेम्स कैम्पबेल की भाँति गुर्जरों की एकरूपता कैस्पियन सागर के तट पर निवास करने वाली खजर जाति से स्थापित करते हैं।[xvi]

विस्तृत अध्ययन एवं ऐतिहासिक साक्ष्यों से इनमें से किसी भी बात की पुष्टि नहीं होती। किसी बड़े विदेशी जन समुदाय का यहाँ पर आकर बसने का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है। प्रतिहारों को गुर्जर इसलिये माना गया है कि कुछ अभिलेखों एवं ग्रन्थों में या तो गुर्जर प्रतिहार पद एक साथ मिलता है या प्रतिहारों के लिये गुर्जर या गुर्जरेश आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। गुर्जर शब्द बाणभट्ट के हर्षचरित तथा बिल्हण के विक्रमांकदेवचरित में देशवाची ही है जातिवाची नहीं।[xvii] कन्नौज के प्रतिहार सम्राट विजयपाल देव के सामन्त मथनदेव का 959 ई० का राजौर शिलालेख। इस शिलालेख में मथनदेव को 'गुर्जरप्रतीहारान्वयः' कहा गया है जिसका विद्वानों ने अर्थ लगाया है 'गुर्जर देश के प्रतिहार कुल में उत्पन्न'।[xviii] इसी प्रकार राष्ट्रकूट एवं पाल अभिलेखों में प्रतिहारों को गुर्जरेश एवं गुर्जरराज शब्दों से सम्बोधित किया गया है। यहाँ पर गुर्जरेश या गुर्जरराज से तात्पर्य गुर्जर जाति का राजा नहीं, वरन् गुर्जर देश का राजा है। जैसे लाटेश, मालवेश, कुन्तलेश, गौड़ेश आदि।[xix] अतः गुर्जर शब्द यहाँ भौगोलिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, न कि जाति बोधक अर्थ में। अरब लेखक जब प्रतिहारों के लिये जुर्ज या जुज्र का प्रयोग करते हैं तो वे उन्हें गुर्जर देश का राजा मानकर ऐसा करते हैं, क्योंकि प्रारम्भ में वे गुर्जर देश के ही राजा थे और उसी हैसियत से उन्होंने अरबों के साथ संघर्ष प्रारम्भ किया

था। कालान्तर में वे कन्नौज के साम्राज्य के स्वामी अवश्य हो गये, परन्तु अरबों ने आरम्भ में उनके लिये प्रयुक्त भौगोलिक नाम का प्रयोग नहीं छोड़ा।[xx]

वस्तुतः गुर्जरेश या गुर्जरराज भौगोलिक महत्व का शब्द है जिसका प्रयोग उन जातियों के लिये भी हुआ है जो कभी भी गुर्जर देश या उसके किसी भी भाग पर शासन करती रहीं हैं। उनमें प्रतिहारों के अतिरिक्त चाहमानो और चालुक्यों यहाँ तक कि मुसलमानों का भी, उल्लेख किया जा सकता है।

## गुर्जर-प्रतिहार पद की व्याख्या

ऐतिहासिक स्रोतों में प्रतिहारों के लिये गुर्जरेश, गुर्जरराज, जुज्र या जुर्ज शब्दों का प्रयोग मिलता है जो उनके मूल राज्य से सम्बन्ध रखता है। कालान्तर में वे कन्नौज के सम्राट अवश्य हो गये, परन्तु उनका मूल राज्य उनके अधीन बना रहा और उसी पर पड़ी उनकी गुर्जरेश या गुर्जरराज की उपाधि भी पूर्ववत् चलती रही। इसमें कोई ऐसी बात नहीं हैं जो सामान्य दृष्टि से ठीक न हो। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि प्रतिहार शब्द प्रारम्भ में राजकीय पद का सूचक था जो कालान्तर में जाति सूचक बन गया। यही कारण है कि प्रतिहार ब्राह्मण, प्रतिहार क्षत्रिय, प्रतिहार वैश्य आदि का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है और राजस्थान में अभी भी इन जातियों के लोग विद्यमान है।

भोज के ग्वालियर प्रशस्ति में कन्नौज के प्रतिहार अपने को लक्ष्मण का वंशज कहते हैं[xxi], और चूँकि छोटे भाई लक्ष्मण ने राम के आधीन प्रतीहार का पद स्वीकार किया था, अतः उनके वंशज प्रतीहार कहलाये। इस बात की पुष्टि शाकम्भरी के चाहमान नरेश विग्रहराज द्वितीय के 973 ई0 के हर्ष शिलालेख से

भी होता है।[xxii] इस शिलालेख में कन्नौज के तत्कालीन प्रतिहार सम्राट को रघुकुल चक्रवर्ती (रघुकुले भू चक्रवर्ती स्वयं) अर्थात् रघुकुल में उत्पन्न नरेश कहा गया है। इस प्रकार शाकम्भरी के चाहमान भी कन्नौज के प्रतिहारों को रघुकुल में उत्पन्न क्षत्रिय स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में हम दशरथ शर्मा के इस निष्कर्ष से पूर्णतः सहमत हो सकते हैं कि 'शताब्दियों तक गुर्जर उस भू-भाग का नाम था जिसमें भिन्नमाल एवं जालौर सम्मिलित थे, और चूँकि यह प्रतिहारों का मूल स्थान था अतः मिथिला के कणार्टा की भाँति वे अपने मूल स्थान के नाम पर गुर्जर, गुर्जरवासी या गुर्जरेश के नाम से तब भी विख्यात रहे जबकि उनकी शक्ति का केन्द्र हटकर कन्नौज हो गया था।[xxiii]

## गुर्जर-प्रतिहार राजवंश के प्रारम्भिक शासक: नागभट्ट प्रथम (730-756 ई०)

इसका एक अभिलेख बुचकला (जोधपुर) से प्राप्त है जिससे उसके राज्य की सीमा को निर्धारण किया जा सकता है। इस अभिलेख के आधार पर इसके राज्य की सीमा भड़ौच, मालवा व उज्जैन तक जाती है।[xxiv] प्रतिहार सम्राट भोज की ग्वालियर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कन्नौज के प्रतिहार वंश का प्रथम शासक एवं संस्थापक नागभट्ट प्रथम था जिससे इस वंशावली का प्रारम्भ होता है।[xxv] जनश्रुतियों के अनुसार यह एक शक्तिमान शासक था जिसने अपनी सैनिक सफलताओं के फलस्वरूप अरबों के बढ़ाव को रोकने का सफल प्रयास किया। इस कार्य में उसने राजस्थान के अन्य राजाओं का सहयोग तो प्राप्त किया ही, साथ ही राष्ट्रकूट नरेश दन्तिदुर्ग के साथ संघ बनाकर अरबों पर आक्रमण किया और उन हिन्दू राजाओं को स्वतंत्र किया जिन्हें पराजित कर अरबों ने अपने आधीन कर रखा था। ग्वालियर प्रशस्ति के अनुसार, अरबों से आक्रान्त लोगों की प्रार्थना पर

नारायण की भाँति सद्गुणों का विनाश करने वाले शक्तिमान म्लेच्छ राजा की विशाल सेना का दमन किया।[xxvi] इस लेख में उल्लिखित 'म्लेच्छाधिपति' से तात्पर्य सिन्ध एवं मुल्तान के अरब शासक से है।

## अरबों का प्रतिरोध

नागभट्ट द्वारा अरबों के पराजय की पुष्टि अरब इतिहासकार अलविलादूरी के विवरण से भी होती है। उसने भारत के भीतरी भागों पर अरब आक्रमणों का उल्लेख करते हुए बतलाया है कि उन्होंने उज्जैन पर आक्रमण किया तथा बहरीभंड पर धावा कर उसके आस-पास के प्रदेश को जला डाला था।[xxvii] इस विवरण से यह स्पष्ट है कि आठवीं शताब्दी के चतुर्थ दशक में अरबों को अनेक भारतीय प्रान्तों से पलायन करना पड़ा था और उनके इस पलायन का प्रमुख कारण भारतीय राजाओं का उग्र प्रतिरोध एवं आक्रमण था, जिसका नेतृत्व नागभट्ट प्रथम ने किया था। अतः अरब आक्रमण से पश्चिमी भारत की रक्षा का श्रेय इसी नागभट्ट को प्राप्त है जो उसके जीवन की सर्वाधिक महत्वूपर्ण उपलब्धि है। राजस्थान, मालवा और गुजरात के कुछ भागों पर अधिकार हो जाने के पश्चात् बढ़ते हुए राज्य की प्रशासनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उसने अपनी राजधानी जालौर से हटाकर उज्जैन में स्थापित की जो राज्य के केन्द्र में स्थित विशेष राजनीतिक महत्व का नगर था। यद्यपि लाट पर अधिकार हो जाने के बाद ही राष्ट्रकूटों द्वारा इसे हस्तगत करने के उद्देश्य से एक लम्बे संघर्ष का प्रारम्भ हुआ। यह सर्वप्रथम नागभट्ट प्रथम के शासनकाल में दिखलाई पड़ता है। संक्षेप में इस संघर्ष का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

## राष्ट्रकूटों से संघर्ष

प्रतिहार नरेश, नागभट्ट ने क्रमशः मारवाड़ से मालवा होते हुए लाट अर्थात् दक्षिणी गुजरात तक अपनी अधिकार सीमा बढ़ा ली थी। अतः इन दोनों राजाओं की सीमाओं के मिलने पर इन दोनों नरेशों के बीच संघर्ष अनिवार्य हो गया था क्योंकि लाट और मालवा के महत्वपूर्ण भूखण्डों पर, जो नागभट्ट के अधिकार में थे, राष्ट्रकूट नरेश की वक्र दृष्टि थी और वह उन्हें अपने अधीन करना चाहता था।[xxviii] इसी क्रम में राष्ट्रकूट नरेश ने मालवा एवं लाट पर आक्रमण कर दिया और इस प्रयास में उसे सफलता भी मिली और विजेता के रूप में दन्तिदुर्ग ने प्रतीहारों की नई राजधानी उज्जयिनी में प्रवेश किया, जहाँ उसने हिरण्यगर्भ महादान का अनुष्ठान कराया और पराजित प्रतिहार नरेश नागभट्ट आदि को यज्ञशाला में प्रतिहार (द्वारपाल) का पद प्रदान किया।[xxix] उज्जयिनी पर दन्तिदुर्ग के अधिकार और उसके द्वारा वहाँ किये जाने वाले महादान का उल्लेख मामानगढ़ अभिलेख[xxx] और एलोरा के दशावतार गुहाभिलेख[xxxi] से भी प्राप्त हो जाता है। लेकिन दन्तिदुर्ग का उज्जयिनी पर अधिकार लम्बे समय तक नहीं रहा और नागभट्ट ने पुनः स्थिति सामान्य कर ली। नागभट्ट के बाद प्रतिहार साम्राज्य का इतिहास कन्नौज के इतिहास से जुड़ा है।

**कक्कुस्थ**

नागभट्ट प्रथम का उत्तराधिकारी उसका भ्रातुज कक्कुस्थ/कक्कुक हुआ। कक्कुक शब्द का तात्पर्य होता है सदैव अच्छी बातें कहते हुए हसंते रहने वाला।[xxxii] ग्वालियर अभिलेख में इसे वंश का यश बढ़ाने वाला कहा गया है।[xxxiii] संभवतः यह एक साधारण शासक था।

**देवराज**

कक्कुस्थ के बाद उसका अनुज देवराज अथवा देवशक्ति अवन्ति की राजगद्दी का उत्तराधिकारी हुआ। ग्वालियर प्रशस्ति से यह ज्ञात होता है कि उसने अनेक राजाओं तथा उनके शक्तिशाली पक्षधरों की स्वतंत्र गति को रोका।[xxxiv] ऐसा प्रतीत होता है कि उसे अपने राज्य के शत्रुओं से लड़ना पड़ा जिसमें उसे सफलता मिली।

**वत्सराज (775-800 ई०)**

देवराज और उसकी रानी भूयिका देवी से उत्पन्न पुत्र वत्सराज कन्नौज का शासक हुआ इसके तीन अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिसके आधार पर इसके साम्राज्य की सीमा का आकलन किया जा सकता है जो गुजरात, राजस्थान, पश्चिमी उ०प्र०, पश्चिमी व मध्य म० प्र० आदि थी।[xxxv] यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता है कि उसकी सफलताओं का क्रम अनवरत बना रहा तथापि यह परिलक्षित होता है कि उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा सभी समकालिक सत्ताओं ने स्वीकार की। उसका सर्वप्रथम अभियान मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख में वर्णित है।[xxxvi] हम जानते है कि उत्तर भारत में आठवीं शताब्दी में साम्राज्य का सूचक एक मात्र कन्नौज नगर था। अगले महत्वपूर्ण प्रतिहार शासक वत्सराज के शासनकाल तक कन्नौज अपने पूर्व गौरव को अवश्य खो चुका था, परन्तु प्रतिहार और पाल नरेश कन्नौज पर अधिकार स्थापित करने के लिये सदैव इसीलिए प्रयत्नशील रहे कि कन्नौज पर अधिकार स्थापित होने के पश्चात् ही उत्तर भारत में सम्राट-पद का प्रमाणीकरण हो सकता है। आठवीं शताब्दी के तृतीय चरण तक कन्नौज पर मौखरियों का अधिकार था और इसके बाद यशस्वी सम्राट यशोवर्मा जिसकी मृत्यु के बाद कन्नौज का साम्राज्य एक बार पुनः बिखर गया। इस समय हमें कन्नौज के शासक के रूप में आयुधान्त तीन नाम मिलते हैं वज्रायुध, इन्द्रायुध एवं चक्रायुध। वत्सराज ने सम्राट पद की प्राप्ति के लिये अवन्ति से कन्नौज की ओरससैन्य प्रयाण

किया और कन्नौज के शासक इन्द्रायुध (वज्रायुध) को, जो अपनी हस्तिसेना के कारण अपने को अजेय समझता था, युद्ध में पराजित कर बलपूर्वक उससे सम्राट पद छीना लिया। परन्तु जान यह पड़ता है कि उसने इन्द्रायुध द्वारा अधीनता स्वीकार कर लिये जाने पर उसे राज-पद से वंचित नहीं किया और अधीनस्थ शासक के रूप में उसे कन्नौज का शासक बना रहने दिया।[xxxvii]

**गौंडो से युद्ध**

कन्नौज विजय ने वत्सराज को उत्तर भारत में सम्राट का पद अवश्य प्रदान किया, परन्तु शक्तिशाली गौड़नरेश धर्मपाल की गतिविधियों के कारण यह पद निरापद नहीं था। धर्मपाल भी उत्तर भारत का सम्राट-पद प्राप्त करने का इच्छुक था। अतः इन दोनों शक्तिशाली एवं महत्वकांक्षी नरेशों के बीच संघर्ष का मूल कारण कन्नौज था। इस संघर्ष में आक्रामक वत्सराज ही प्रतीत होता है। उसने कन्नौज विजय के पश्चात् धर्मपाल को पराजित करना आवश्यक समझा। राष्ट्रकूट सम्राट गोविन्द तृतीय के वनिदिन्दोरी[xxxviii] तथा राधनपुर ताम्रपत्रों[xxxix] से ज्ञात होता है कि गौड़-राज्य की राजलक्ष्मी पर सरलतापूर्वक अधिकार कर लेने के कारण वत्सराज मदान्ध हो रहा था और इस विजय से उसका यश सर्वत्र व्याप्त हो रहा था।[xl] गुजरात के राष्ट्रकूट शासक कर्क सुवर्णवर्ष के बड़ौदा ताम्रपत्र[xli] (812 ई०) के अनुसार गौड़ एवं बंग के दोनों राजछत्र छीन लेने के कारण गुर्जरेश (वत्सराज) फूला न समा रहा था। यद्यपि आधुनिक इतिहासकार आर०सी० मजूमदार यह स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि वत्सराज ने गौड़देश के राजा को उसके राज्य पर आक्रमण कर बंगाल में हराया था। उनका मानना है कि यह संघर्ष दोआब में कहीं हुआ था।[xlii]

## राष्ट्रकूटों से संघर्ष

इस अप्रत्याशित विजय से उत्तर भारत का शक्ति-संतुलन बिगड़ गया, अतः नवोदित राज्य की सीमा से लगे होने के कारण राष्ट्रकूट उदासीन भी नहीं रह सकते थे। इन परिस्थितियों में वत्सराज एवं ध्रुव के बीच संघर्ष आवश्यक हो गया और शीघ्र ही राष्ट्रकूट सेनाओं ने उत्तर भारत की ओर कूंच कर दिया। गोविन्द तृतीय के बनिदिन्दोरी तथा राधनपुर दानपत्रों से ज्ञात होता है कि ध्रुव ने वत्सराज को युद्ध में पूर्णरूप से पराजित किया एवं उसे राजस्थान के मरूस्थल के संकटाकीर्ण भूखण्ड में शरण लेने पर विवश किया और साथ ही उसने प्रतिहार नरेश से वे दोनों राजछत्र भी छीन लिये जिन्हें वत्सराज ने धर्मपाल को पराजित कर प्राप्त किया था।[xliii] सम्भवतः इस आकस्मिक स्थिति का सामना करने के लिये वत्सराज तैयार नहीं था और ध्रुव से पराजित होकर उसे मैदान छोड़कर अपने पैतृक राज्य गुर्जरत्रा की ओर भागना पड़ा। प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के संघर्ष का यह द्वितीय चरण था जिसमें प्रतीहारों की पराजय की पुनरावृत्ति हुई थी। यद्यपि ध्रुव के अभियान कितने ही महत्वपूर्ण क्यों न रहे हो पर वह अपनी राजधानी मान्यखेट से इतनी दूर बहुत दिनों तक टिक नही सकता था और शीघ्र ही वह उत्तर भारत छोड़कर अपने राज्य वापस लौट गया। इससे प्रतिहारों को अपना राज्य वापस लेने का अवसर पुनः प्राप्त हुआ। उज्जयिनी के प्रतिहारों के लिए ये कठिन परीक्षा के दिन थे, जिसकी चुनौती वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने स्वीकार की।

## नागभट्ट द्वितीय (800-833 ई०)

वत्सराज और सुन्दरी देवी से उत्पन्न पुत्र नागभट्ट द्वितीय गुर्जर-प्रतिहार वंश का शासक हुआ इसके सिवा (गुजरात) से अभिलेख प्राप्त होता है इसके आधार पर

इसके राज्यारोहण की तिथि 800 ई० के आस-पास आती है। जो पूर्णतः अनुमान पर आधारित है।[xliv] उसके समकालीन जो राजनीतिक घटनाक्रम हुए है उनसे भी तिथिक्रम निश्चित करना बड़ा कठिन है। इतना निश्चित है कि उसके राजनीतिक जीवन में अनेक उतार चढ़ाव हुए और राष्ट्रकूटों के आक्रमणों के रूप में दक्षिण का प्रबल प्रतिरोध होते हुए भी निष्कर्षतः वह अपनी राजनीतिक सत्ता के विस्तार में सफल रहा। अन्त में वह अपनी पैतृक राजधानी उज्जैन को छोड़कर कन्नौज से उत्तर भारत की सर्वप्रमुख सत्ता के रूप में शासन प्रारंभ कर गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य का संस्थापक सिद्ध हुआ। मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख[xlv] से इसकी सैनिक उपलब्धियों की सूचना मिलती है। जिसके आधार पर इसके साम्राज्य सीमा का निर्धारण किया जा सकता है। इसने आन्ध्र, सिन्ध, विदर्भ और कलिंग के राजाओं को अधीन किया, कन्नौज में चक्रायुध को हराया, गौड़ नरेश धर्मपाल को परास्त किया तथा बलपूर्वक आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स और मत्सय के पर्वतीय दुर्गो को छीन लिया। नागभट्ट द्वितीय को राष्ट्रकूटों के साथ संघर्ष अपने पिता से विरासत के रूप में प्राप्त हुआ था। यद्यपि यह संघर्ष पैतृक हो चला था परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि प्रतिहार इस पराजय से हतोत्साहित न हुए और अपने खोये हुए गौरव एवं पद को प्राप्त करने में वे पुनः जुट गये। वत्सराज की मृत्यु के पश्चात् शासन की बागडोर जब युवक नरेश नागभट्ट द्वितीय के हाथों में आई तो प्रतीहारों में एक नई चेतना एवं उत्साह का संचार हुआ। वत्सराज के हटते ही उत्तर भारत की राजधानी कन्नौज पर पाल सम्राट धर्मपाल ने अपना अधिकार स्थापित कर वत्सराज द्वारा नियुक्त कन्नौज के शासक इन्द्रायुध को हटाकर उसके स्थान पर अपनी अधीनता में चन्द्रायुध नामक व्यक्ति को कन्नौज का शासक नियुक्त कर दिया था साथ ही अपनी विजय के उपरान्त कन्नौज में एक राजदरबार का आयोजन कर

उसमें उत्तर भारत के अनेक राजाओं को निमंत्रित कर उसने अपने सम्राट पद की तथा अपने अधीन कन्नौज के शासक के रूप में चन्द्रायुध की नियुक्ति की विधिवत् घोषणा भी कर दी।[xlvi] अतः प्रारम्भ से ही नागभट्ट के सम्मुख पालों को पराजित करने की समस्या वर्तमान थी जिसके उचित समाधान पर ही प्रतिहारों के गौरव की पुनर्स्थापना सम्भव थी। उधर दक्षिण में राष्ट्रकूट सम्राट ध्रुव की मृत्यु के पश्चात् उसका यशस्वी, समरविशारद एवं कूटनीति में पारंगत पुत्र गोविन्द तृतीय मान्यखेट के सिंहासन पर विराजमान था। यह अपने पिता ध्रुव से भी अधिक महत्वकांक्षी एवं सफल सम्राट था। अतः नागभट्ट को एक साथ गौड़-नरेश धर्मपाल एवं राष्ट्रकूट सम्राट गोविन्द तृतीय के साथ संघर्षरत होना था। अन्तर केवल यही था कि धर्मपाल से उसे उत्तर भारत का सम्राट पद छीनना था जिसे उसके पिता ने प्राप्त कर खो दिया था, और राष्ट्रकूटों के आक्रमण से अपने राज्य की रक्षा करते हुए सीमा पर स्थित अपने राज्य को संगठित करना था। अतः पाल-नरेश धर्मपाल से उलझने और सम्राट पद पुनः प्राप्त करने के प्रयास के पूर्व नागभट्ट द्वितीय ने अपनी शक्ति को संगठित करना प्रारम्भ किया। इस कार्य में उसे सर्वाधिक बाधा राष्ट्रकूटों से ही अपेक्षित थी, क्योंकि अपने राज्य की सीमा पर प्रतिहार राज्य का मजबूत होना उन्हें प्रारम्भ से ही असह्य था। नागभट्ट द्वितीय के शासनकाल में प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट संघर्ष के दो स्वरूप स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। एक तो सीमावर्ती संघर्ष है जो दो पड़ोसी राजाओं की महत्वकांक्षा का प्रतिफल था और दूसरा उत्तर भारत में शक्ति-संतुलन बनाये रखने की अभिलाषा से गोविन्द तृतीय की उत्तर भारत की दिग्विजय-यात्रा है जिसमें नागभट्ट को अकारण राष्ट्रकूट संघर्ष का लक्ष्य बनना पड़ा।

**राष्ट्रकूटों के साथ संघर्ष**

यह संघर्ष नागभट्ट के राज्यारोहण-काल से ही प्रारम्भ हो गया प्रतीत होता है और यह निरन्तर चलता रहा। प्रारम्भ में संघर्ष की अनिर्णायक स्थिति के कारण दोनों पक्ष अपनी-अपनी विजय का गुणगान करते हैं। अपने पिता की तरह गोविन्द तृतीय ने अपने दक्षिण विजय के पश्चात् उत्तर भारत की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। उसके उत्तर अभियान के दो प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं, पहला- वह उत्तर भारत की दिग्विजय द्वारा उत्तर भारत में किसी सबल साम्राज्य की स्थापना के प्रयत्न का अन्त करना चाहता था। दूसरा- सीमा पर प्रतीहारों के बढ़ते हुए उपद्रव को समाप्त करना था। अमोघवर्ष प्रथम के संजन दानपत्र (871 ई०) से ज्ञात होता है कि उसने युद्ध में नागभट्ट एवं चन्द्रगुप्त को पराजित कर उन्हें यशहीन कर दिया।[xlvii] इस लेख का नागभट प्रतिहार नरेश नागभट्ट द्वितीय ही है। स्वयं गोविन्द के राधनपुर दानपत्र (730 ई०) के अनुसार गोविन्द के भय से गुर्जरनरेश कहाँ भाग गया यह किसी को ज्ञात नहीं हो सका, मानों वह स्वप्न में भी युद्ध नहीं चाहता था।[xlviii] विद्वानों का अनुमान है कि गोविन्द ने नागभट्ट को युद्ध में करारी हार दी।[xlix] वह यही नही रूका बल्कि आगे बढ़कर चक्रायुध और धर्मपाल को भी आत्मसमर्पण के लिए विवश किया।[l] लेकिन गोविन्द तृतीय को भी अपने पिता की भाँति लौटना पड़ा। नागभट्ट उससे हारा तो थ, किन्तु उसकी शक्ति कुचली नही जा सकी थी। उसने इस अवसर का लाभ उठाया। प्रतीहारों एवं राष्ट्रकूटों के संघर्ष का यह तृतीय चरण था और इसमें भी विजय श्री ने राष्ट्रकूटों का वरण किया।

**कन्नौज विजय और धर्मपाल की पराजय**

दूसरी तरफ उत्तर भारत में उसका प्रतिद्वन्द्वी पाल नरेश धर्मपाल भी अपने दीर्घकालीन शासन के बाद पर्याप्त वृद्ध हो चला था, अतः इन परिस्थितियों से लाभ

उठाकर नागभट्ट ने कन्नौज की ओर ध्यान दिया। उस समय कन्नौज पर चक्रायुद्ध का अधिकार था जो धर्मपाल के अधीन शासन कर रहा था। ग्वालियर प्रशस्ति के अनुसार उसके दूसरों के आश्रित रहने के कारण नीच भाव वाले चन्द्रायुध को पराजित किया।[li] नागभट्ट का यह प्रयत्न पूर्ण सफल रहा और धर्मपाल की अधीनता स्वीकार करने वाला चक्रायुध पदच्युत कर दिया गया तथा कन्नौज का राज्य प्रतिहार नरेश के अधिकार में आ गया। विद्वानों का मानना है कि इसी समय नागभट्ट ने अपनी राजधानी उज्जैन से हटाकर कन्नौज नगर में स्थापित की।[lii] उत्तर भारत की राजधानी के रूप में गौरवान्वित कन्नौज नगर पर अधिकार हो जाने से प्रतिहारों की शक्ति और प्रतिष्ठा में आकस्मिक रूप से बड़ी वृद्धि हुई और उत्तर भारत के सम्राट के रूप में प्रतिहारों की गणना प्रारम्भ हुई। नागभट्ट ने प्रथम गुर्जर प्रतिहार सम्राट् के रूप में परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण की।[liii]

उत्तर भारत में नागभट्ट का मुख्य प्रतिद्वन्द्वी धर्मपाल था जो प्रतिहार नरेश की इस बढ़ती हुई शक्ति से उदासीन नहीं रह सकता था। चक्रायुध के हटाये जाने तथा कन्नौज पर नागभट्ट के अधिकार कर लेने पर उसे विवश होकर मैदान में उतरना पड़ा। ग्वालियर प्रशस्ति के अनुसार जिस प्रकार प्रातः कालीन सूर्य घने अन्धकार को चीरता हुआ उदित होकर दिशाओं को प्रकाशमान कर देता है, उसी प्रकार विशाल हस्ति, रथ एवं अश्व सेना के कारण सघन बादल-पुंज की भाँति प्रतीत होने वाले अपने शत्रु बंगनरेश को पराजित कर तीनों लोकों को सुखी बनाने वाले नागभट का आविर्भाव हुआ।[liv] यह विवरण पाल नरेश धर्मपाल पर नागभट्ट की स्पष्ट विजय का द्योतक है। डॉ० दशरथ शर्मा का मत है कि नागभट्ट ने कन्नौज और बंगाल की विजय गोविन्द तृतीय के दक्षिण लौट जाने और कर्कराज द्वितीय के

बड़ौदा अभिलेख के समय (812 ई०) के बीच कभी की होगी। इस अभिलेख में गौड़राज की पराजय की घटना हाल में बताई गई है।[lv] इस प्रकार हम देखते है कि नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज को राज्य की राजधानी बनाकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया तथा पालों एवं राष्ट्रकूटों से अपने साम्राज्य की रक्षा की।

**रामभद्र (833-835 ई०)**

चन्द्रप्रभसूरि कृत प्रभावकचरित[lvi] से पता चलता है कि वि० सं० 890 (833 ई०) में नागभट्ट द्वितीय ने पवित्र गंगा में जलसमाधि लेकर प्राण विसर्जित कर दिये उसकी रानी इष्टादेवी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रामभद्र था, जो आगे चलकर शासक हुआ। ग्वालियर अभिलेख[lvii] से पता चलता है कि रामभद्र ने ''सर्वोत्तम घोड़ों वाले अपने सामन्तों से शत्रु सेनाओं के नायकों को बलपूर्वक बंधवाया। आर० सी० मजूमदार के अनुसार पालों के दबाव के कारण रामभद्र को अपने सामन्तों की सहायता लेनी पड़ी।[lviii] देवपाल ने मुंगेर अभिलेख में सम्पूर्ण उत्तर भारत की विजय का उल्लेख किया है।[lix] नारायणपाल के बादल स्तम्भ लेख[lx] से ज्ञात होता है कि देवपाल ने उत्कल कुल को उखाड़ फेंका, हूणों के दर्प को चूर किया एवं द्रविड़ और गुर्जर राजाओं के घमण्ड को बिखेर दिया। इसमें गुर्जर राजा रामभद्र प्रतीत होता है। रामभद्र के निर्बलता के कारण ही गुर्जरता भूमि एवं कालजंर मंडल के कुछ क्षेत्रों से उसका शासन समाप्त हो गया। इसके पश्चात् भी ग्वालियर जैसे सुदूर क्षेत्रों पर अब भी रामभद्र का शासन था क्योंकि इसने गोपाचलगढ़ (ग्वालियर) पर बैलभट्ट को मर्यादाधुर्य (सीमाओं का रक्षक) नियुक्त किया।[lxi]

## मिहिरभोज (835-885 ई०)

रामभद्र के अत्यल्प शासन के बाद उसकी रानी अप्पा देवी से उत्पन्न पुत्र मिहिरभोज उसका उत्तराधिकारी हुआ। मिहिरभोज के इतिहास का ज्ञान कराने वाले अनेक अभिलेख मिले है, जिनमें कई तो उसने स्वयं लिखवाये है और अन्य या तो उसके उत्तराधिकारियों के समय में अथवा कन्नौज के प्रतिहार वंश के सामन्तो द्वारा लिखवाये गये है। मिहिरभोज के कुल 16 अभिलेख प्राप्त होते हैं जिनसे उसके इतिहास की जानकारी मिलती है और उसके साम्राज्य की सीमाओं का आकलन किया जा सकता है। मिहिरभोज के साम्राज्य की उत्तरी सीमा हिमालय की तलहटी तक जाती है। पेहेवा अभिलेख[lxii] जो करनाल हरियाणा से प्राप्त हुआ है इसके आधिपत्य की सूचना देते है। इसके साथ ही दिल्ली से प्राप्त खण्डित लेख[lxiii] भी उसका दिल्ली पर अधिकार प्रमाणित करता है। पश्चिम की सीमा सौराष्ट्र काठियावाड़ तक तथा पूर्व में बंगाल के निकट तक साम्राज्य विस्तारित था। दक्षिणी सीमा विन्ध्य पर्वत निर्धारित करता था जो ग्वालियर प्रशस्ति से सूचित होता है।[lxiv] चेदिवंशीय कोक्कल देव के बिल्हरी प्रस्तर शिलालेख[lxv] से ज्ञात होता है कि दक्षिण में कृष्णराज और उत्तर में भोजदेव ने एक-दूसरे का समर्थन किया और दोनों समकालीन थे, कृष्ण द्वितीय ने कोक्कल की बेटी से विवाह किया था और जिन्होंने लगभग 875 ई० से 911 ई० तक शासन किया था। भोजदेव के देवगढ़ स्तम्भ लेख[lxvi] में दर्ज है कि परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर के शासनकाल में लुआच्छगिर पर महदसामंत या महासामंत विष्णुराम का कब्जा या शासन था जिन्हे भोजदेव ने पांच महाशब्द प्रदान किये थे।

## पालों के साथ युद्ध

अभिलेखों में उसके कई नामभेद या विरूद मिलते है। जनसामान्य में अधिक प्रचलित नाम भोज था, परन्तु उसके ग्वालियर प्रशस्ति एवं राष्ट्रकूटों के वेगुमरा ताम्रपत्र में इसका नाम मिहर भी प्राप्त होता है। ग्वालियर के चतुर्भुज लेख एवं इसके सिक्कों पर इसकी उपाधि आदि वराह मिलती है।[lxvii] सर्वप्रथम प्रतिहार साम्राज्य की आन्तरिक अशांति एवं दुर्व्यवस्था को दूर कर भोज ने अपने वंश के पैतृक शत्रु पालों की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। उसका समकालीन पाल-सम्राट देवपाल था जो धर्मपाल ही की भाँति महत्वाकांक्षी एवं शक्तिमान था और उसी के समान पाल-साम्राज्य के विस्तार के लिये कृत संकल्प था। भोज के ग्वालियर प्रशस्ति में उल्लिखित है कि जिस लक्ष्मी ने धर्म (धर्मपाल) के पुत्र का वरण किया था वही बाद में भोज की पुनर्भू (दूसरा पति ग्रहण करने वाली) हो गयी अर्थात राजलक्ष्मी देवपाल के हाथ से निकलकर भोज के हाथ में चली गई।[lxviii] फलतः दो सबल सम्राटों का संघर्ष प्रारम्भ हुआ जिसके प्रारम्भिक चरण में सम्भवतः भोज को ही सफलता प्राप्त हुई। कहला दानपत्र के अनुसार भोज के गोरखपुर क्षेत्र के कलचुरी सामन्त गुणाम्बोधिदेव ने इस संघर्ष में अपने स्वामी का साथ दिया और गौड़ों को श्रीहीन करने में सफलता प्राप्त की।[lxix] अतः यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि पाल-प्रतिहार नरेशों की शक्ति परीक्षा के अंतिम दौर में प्रतिहारराज भोज को ही सफलता मिली। यद्यपि कुछ समय के लिये पाल-प्रतिहार संघर्ष स्थगित अवश्य हो गया, परन्तु इससे उनके पुश्तैनी संघर्ष का अन्त नहीं हुआ। भोज का समकालीन राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष प्रथम या उसका उत्तराधिकारी कृष्ण द्वितीय शक्तिमान एवं महत्वाकांक्षी शासक नहीं थे, जिससे भोज को अपने साम्राज्य के इस भाग के संगठन में उनकी ओर से किसी प्रकार के आक्रामक हस्तक्षेप का सामना नहीं करना पड़ा।[lxx]

## मिहिर भोज की उपलब्धियाँ

अरब सौदागर सुलेमान ने जो 851 ई0 में भारत आया था, प्रतिहार सम्राट के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए बतलाया है कि उसकी सेना विशाल थी और किसी भी भारतीय नरेश के पास इतनी सुसंगठित अश्व-सेना नहीं है। वह अरबों का शत्रु अवश्य है, परन्तु वह अरब-सम्राट को सबसे बड़ा सम्राट मानता है। भारतीय राजाओं में उसके समान इस्लाम धर्म का विरोधी अन्य कोई राजा नहीं है। वस्तुओं का क्रय-विक्रय एवं विनिमय चाँदी और सोने के सिक्कों द्वारा होता है। इनके राज्य में इन धातुओं की अनेक खाने हैं। भारत का कोई भी राज्य डाकुओं से इतना अधिक सुरक्षित नहीं है जितना कन्नौज का प्रतिहार राज्य है।[lxxi] अरब सौदागर का यह विवरण बड़ा महत्वपूर्ण है। शत्रु-पक्ष के लेखक की उपर्युक्त प्रसंशा प्रतिहारों की शक्ति, साम्राज्य की सुसंगठित शासन-व्यवस्था, सैनिक शक्ति की दृढ़ता, शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षात्मक नीति के प्रति सतत जागरूकता की परिचायक है।

चाँदी और ताँबे के मिश्रित सिक्कों को, जिन्हें आदिवराह शैली का माना जाता है कन्नौज के प्रतीहार सम्राट भोज का माना जाता है। इन सिक्कों पर सामने की ओर तत्कालीन नागरी लिपि में ‘श्रीमद्-आदिवराह’ पद अंकित है और नीचे की ओर कुछ ऐसा अस्पष्ट चिन्ह है जो सासानी हवन-कुण्डों से मिलता है। पीछे की ओर वराह के सिर से युक्त मनुष्य की आकृति अंकित है जो विष्णु के वराह अवतार की द्योतक है और उसके सामने सूर्य का चक्र बना है।[lxxii] उसके अभिलेखों और सिक्कों में उल्लिखित उसके विरूद्ध आदिवराह से यह ज्ञात होता है कि वह वराहवतार की तरह भारत भूमि को मलेच्छों (अरबों) से मुक्त करना अपना कर्त्तव्य समझता था।

## महेन्द्रपाल प्रथम (885-910 ई०)

भोज के बाद अगला महत्वपूर्ण शासक महेन्द्रपाल महारानी चन्द्रभट्टारिका देवी और सम्राट भोज का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। इसके उत्तराधिकार प्राप्त करने के समय प्रतिहार-साम्राज्य अपने उत्कर्ष की सीमा तक पहुँच चुका था। महेन्द्रपाल ने इस स्थिति से पूरा लाभ उठाया और अपनी सफलताओं से उसने साम्राज्य के गौरव में चार चाँद लगा दिये। अभिलेखों में उसे महेन्द्रपाल अथवा महेन्द्रपालदेव (गुनेरिया और ऊणा अभिलेख) कहा गया है जबकि उसके दरबारी कवि राजशेखर ने उसे निर्भयराज और निर्भयनरेन्द्र कहा है। महेन्द्रपाल प्रथम के शासनकाल के कुल 11 अभिलेख प्राप्त हुए है जिनसे उसके इतिहास व साम्राज्य विस्तार की सूचना मिलती है। उत्तर में हरियाणा तक (पेहेवा अभिलेख)[lxxiii] तथा दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक फैला हुआ था। ऊणा अभिलेख[lxxiv] से ज्ञात होता है कि इसकी पश्चिमी सीमा सौराष्ट्र, जुनागढ़ तक तथा पूर्वी सीमा बंगाल तक विस्तारित थी जो मुंगेर अभिलेख (देवपाल)[lxxv] से उद्घाटित होता है।

## पालों की पराजय

देवपाल की मृत्यु के बाद से ही पाल-साम्राज्य क्रमशः दुर्बलता का शिकार होता जा रहा था। गद्दी पर बैठने के बाद महेन्द्रपाल ने अपने पिता की नीति का अनुसरण करते हुए अपने इन पैतृक शत्रुओं के साथ संघर्ष जारी रखा। महेन्द्रपाल के अभिलेखों की संख्या भोज के अभिलेखों से भी अधिक है, जिसमें अधिकांश दानपरक है। इन अभिलेखों से उसके राज्य विस्तार, प्रशासन की इकाइयों तथा उसके अधिकारियों के बारे में प्रभूत सामग्री प्राप्त होती है। ये अभिलेख ऐसे स्थानों से प्राप्त है, जो प्रतिहार साम्राज्य में भोज के समय एवं उसके बाद शामिल किये गये थे। इसके अतिरिक्त बिहार और बंगाल के अनेक स्थानों से व्यक्तिगत लोगों द्वारा

मंदिर आदि के निर्माण तथा मंदिरों अथवा ब्राह्मणों को दिये जाने वाले दानों को अंकित करने वाले अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जो महेन्द्रपाल के शासन के समय प्रकाशित किये गये थे। इन अभिलेखों का ऐतिहासिक महत्व है जो अपने प्राप्ति स्थानों पर महेन्द्रपाल के अधिकार और शासन का प्रमाण देते है। उसके सौभाग्य से उसका समकालीन पाल नरेश नारायणपाल शासन से विरक्त, निर्बल एवं अशक्त था। महत्वाकांक्षी महेन्द्रपाल ने उसकी इस दुर्बलता से पूरा लाभ उठाया जिसके फलस्वरूप प्रतिहार साम्राज्य की सीमा क्रमशः पूर्व की ओर बढ़नी प्रारम्भ हो गई।[lxxvi] बिहार शरीफ से उसके दो लेख प्राप्त हुए हैं जो उसके शासन के चौथे वर्ष के हैं।[lxxvii] उसके शासनकाल के पंचम वर्ष का एक लेख बंगाल के राजशाही जिला के पहाड़पुर नामक स्थान से प्राप्त हुआ है।[lxxviii] इनके अतिरिक्त गया जिले में रामगया अभिलेख उसके शासन के आठवें वर्ष का तथा उसी जिले के दक्षिणी भाग में स्थित गुनेरिया नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख उसके शासन के नवें वर्ष का है।[lxxix] इन अभिलेखों के प्राप्ति स्थान इस बात के सूचक हैं कि प्रायः समस्त मगध एवं उत्तरी बंगाल महेन्द्रपाल के शासन के पाँचवें वर्ष के भीतर ही उसके अधिकार में आ गये थे। इस प्रकार प्रायः एक शताब्दी पूर्व प्रतिहारों एवं पालों के बीच उत्तर भारत के आधिपत्य के लिये जिस संघर्ष का प्रारम्भ हुआ था, उसका अन्त पालों के पराभाव में हुआ और उत्तर भारत के साम्राज्य की कामना करने वाले पालों का राज्य बंगाल के कुछ हिस्से तक ही सीमित रह गया।[lxxx] पीछे हम देख चुके है कि भोज के समय प्रतिहार राष्ट्रकूट संघर्षों के अंतिम दौर में गुजरात पर प्रतिहारों का अधिकार हो गया था। यह क्षेत्र महेन्द्रपाल के समय भी प्रतिहार सत्ता के भीतर था।[lxxxi]

**महेन्द्रपाल का अधिराजत्व**

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि महेन्द्रपाल ने न केवल प्रतिहार साम्राज्य को संगठित एवं सुरक्षित रखा, वरन् पूर्व दिशा में उसकी पर्याप्त वृद्धि भी की। तत्कालीन भारत के राजनीतिक जीवन में लगभग डेढ़ शताब्दी पूर्व साम्राज्य की स्थापना के निमित्त जिस त्रिकोणीय संघर्ष का प्रारम्भ हुआ था उसकी चरम परिणति हमें महेन्द्रपाल के शासन काल में मिलती है।

महेन्द्रपाल न केवल कुशल शासक एवं सफल विजेता था, बल्कि वह साहित्य प्रेमी एवं साहित्यकारों का महान संरक्षक भी था। उसका राजदरबार अनेक कवियों से सुशोभित था जिनमें सबसे महान कवि राजशेखर था जो अपने ग्रन्थ 'कर्पूरमंजरी' में अपने को निर्भयराज महेन्द्रपाल का उपाध्याय या गुरु कहता है और अपनी प्रशंसा करते हुए स्वयं अपने को आदिकवि वाल्मीकि, भर्तृहरि एवं भवभूति की परम्परा में उत्पन्न बतलाता है।[lxxxii] राजशेखर ने इसके अतिरिक्त बालरामायण, बालभारत तथा विद्धशालभंजिका नामक नाटकों की भी रचना की थी। इससे स्पष्ट है कि प्रतिहार साम्राज्य महेन्द्रपाल के दिनों में अपने राजनीतिक चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। अगला शासक महीपाल प्रथम महेन्द्रपाल प्रथम का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। उसके शासन के प्रारम्भिक वर्षों में अपनी विरासत पर किसी प्रकार आँच नहीं आने दी। किन्तु कालान्तर में दक्षिण के राष्ट्रकूट शासकों ने महीपाल को शान्तिपूर्वक साम्राज्य का उपभोग नहीं करने दिया।

## महीपाल प्रथम (910-930 ई०)

महीपाल प्रथम ने लगभग 910 ई० में गद्दी ग्रहण की। इसके लगभग तीन अभिलेख प्राप्त हुए है जिससे इसके इतिहास का ज्ञान होता है। हड्डाला

अभिलेख[lxxxiii] से पता चलता है कि सुदूरस्थ काठियावाड़ प्रदेश में महासामन्ताधिपति धराणिवराह उसकी अधिसत्ता स्वीकार करता था। उत्तर में पंजाब तथा पश्चिम में सिन्ध से लेकर दक्षिण में राष्ट्रकूटों की सीमाओं तक कन्नौज के शासक महीपाल का शासन क्षेत्र फैला हुआ था। कृष्ण तृतीय के करहड अभिलेख[lxxxiv] से ज्ञात होता है कि पृथ्वी का स्वामी बनने के पश्चात् इसने गुर्जरों को भयभीत किया। हम जानते है कि गोविन्द तृतीय के उत्तरी भारत के अभियान के पश्चात लगभग सौ वर्षों से ऊपर तक राष्ट्रकूटों की नीति रक्षात्मक हो गई थी और इस बीच प्रतिहार सम्राटों ने अपने साम्राज्य में पर्याप्त वृद्धि कर ली और उसे संगठित एवं सुदृढ़ बनाया। अमोघवर्ष प्रथम (814-80 ई०) तथा उसके उत्तराधिकारी कृष्ण द्वितीय (880-914 ई०) में प्रतिहारों पर आक्रमण करने की क्षमता का नितान्त अभाव था फलतः ध्रुव एवं गोविन्द तृतीय के नेतृत्व में उत्तर भारत की दिग्विजय करने वाले राष्ट्रकूट को उनके शासनकाल में अपमान के घूँट पीने पड़े थे। कृष्ण द्वितीय के पौत्र इन्द्र तृतीय ने गद्दी पर बैठने के साथ इस अपमानजनक स्थिति का अन्त करने का निश्चय किया। यह युवक सम्राट घोर महत्वाकांक्षी था जो उत्तर भारत के अभियान में ध्रुव एवं गोविन्द की श्रेणी में आना चाहता था। इसके साथ ही एक बार पुनः प्रतिहारों का मान-मर्दन कर राष्ट्रकूटों का खोया हुआ गौरव भी प्राप्त करना चाहता था।[lxxxv] इस अभियान का पूरा विवरण तो अप्राप्य है, परन्तु दिग्विजयी राष्ट्रकूट सम्राट के अभियान-मार्ग का संकेत राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थ के कैम्बे दानपत्र में इस प्रकार अंकित हैं[lxxxvi]- "उनके मद बरसाने वाले हाथियों के दन्तघात से कालप्रिय (के मन्दिर) का प्रागंण विषम (उबढ़-खाबड़) हो गया। घोड़ों ने सिन्धु-प्रतिस्पर्धिनी अथाह यमुना को पार किया। उसने शत्रुनगर महोदय का समूल उन्मूलन किया जो आज भी लोगों में कुशस्थल के

नाम से विख्यात है।''[lxxxvii] इन्द्र के आक्रमण की घटना का समर्थन कन्नड़ कवि पम्प रचित पम्पभारत (विक्रमार्जुनविजय) नामक काव्य से भी होता है।[lxxxviii]

**राष्ट्रकूट आक्रमण**

ऐसा जान पड़ता है कि प्रतिहार सम्राट इस आकस्मिक आक्रमण का सामना करने के लिये तैयार नहीं था, फलतः वह आक्रान्ता का सफल प्रतिरोध न कर सका। राष्ट्रकूट प्रतिहार संघर्ष में यह प्रथम अवसर था जब प्रतिहार राजधानी शत्रु के अधिकार में आई और सम्राट को अपनी जान बचाने के लिये राजधानी से भागना पड़ा। इस पराजय ने कुछ समय के लिये प्रतिहार गौरव को छिन्न-भिन्न कर धराशायी कर दिया।[lxxxix] इस आक्रमण के परिणाम के विषय में मजूमदार का मत है कि इस पराजय ने प्रतिहारों के गौरव को इतनी गहरी क्षति पहुँचायी कि वे पुनः पूर्णरूप से उसका प्रत्युद्धार न कर सके।[xc]

महीपाल के समकालीन अरब यात्री अल मसूदी ने 915-16 ई० में सिन्धु घाटी की यात्रा की थी और 943-44 ई० में उसने अपने ग्रन्थ मुरु जुल-जहाब की रचना की। उसने इस ग्रन्थ में कन्नौज का जो वर्णन किया है उससे महीपाल की शक्ति एवं शौर्य का ज्ञान होता है। सिन्ध के संदर्भ में वह कहता है कि भारत के पड़ोसी राजाओं में एक बाऊर है जो समुद्र से अतिदूर कन्नौज का स्वामी है। यह उपाधि (बाऊर) उस राज्य के सभी राजा धारण करते हैं। यह कन्नौज नरेश बाऊर भारत के राजा बल्हर (बल्लभ जो राष्ट्रकूट सम्राटों की एक उपाधि था) का शत्रु है। अरब यात्री के इस विवरण से प्रतिहारों की शक्ति का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।[xci] महीपाल साहित्य प्रेमी एवं विद्वानों का आश्रय दाता भी था। कन्नौज का सांस्कृतिक गौरव उसके शासन काल में पूर्ववत् बना रहा। महाकवि राजशेखर

उसके राज-दरबार का श्रेष्ठ रत्न था जिसने अपने ग्रन्थ काव्य-मीमांसा की रचना उसी के दरबार में की थी और उसका नाटक बालभारत (प्रचण्डपाण्डव) प्रतिहार सम्राट के समक्ष अभिनीत हुआ था।[xcii]

## विनायकपाल (931-944 ई०)

गुर्जर-प्रतिहार राजवंश में महीपाल के बाद महत्वपूर्ण शासक विनायकपाल हुआ। इसके दो अभिलेख प्राप्त होते हैं जिनसें इसके इतिहास का ज्ञान होता है। इसी विनायकपाल के समय में प्रतिहार-साम्राज्य अन्तिम बार राष्ट्रकूटों द्वारा आक्रांत हुआ। राष्ट्रकूट युवराज कृष्ण तृतीय ने 937 एवं 940 ई० के बीच किसी समय उत्तर भारत का अभियान किया था और जैसा कि उसके देवली[xciii] एवं करहड[xciv] दानपत्रों से ज्ञात होता है, उसने अपनी इस रण-यात्रा में उत्तर की ओर बढ़कर कालंजर एवं चित्रकूट पर अधिकार बनाये रखने की आशा से प्रतिहारों को वंचित किया, अर्थात् इन दोनों दुर्गों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[xcv] प्रतिहार सम्राट विनायकपाल अपने साम्राज्य के शक्ति-स्तम्भ रूप इन दुर्गों की रक्षा करने में असमर्थ रहा यह उसकी और उसके साम्राज्य के दुर्बलता का परिचायक है।

उपर्युक्त राजनीतिक विवरण से स्पष्ट है कि संगठन, शक्ति एवं विस्तार की दृष्टि से प्रतिहार साम्राज्य महीपाल प्रथम (910-30 ई०) के शासन के अन्त तक अपने उत्कर्ष पर था। लेकिन महीपाल की मृत्यु के बाद से ही साम्राज्य में दुर्बलता दिखलाई पड़ने लगी थी जिसका श्रीगणेश सम्भवतः पारिवारिक कलह से प्रारम्भ हुआ जिसमें महीपाल के एक पुत्र को अधिकार से वंचित किया गया और उसे सम्राट-पद प्राप्त करने के लिये सोलह-सत्रह वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।[xcvi] इसमें विनायकपाल (931-44 ई०) ने यथासाध्य साम्राज्य की सीमाओं की रक्षा का प्रयत्न

किया परन्तु चालुक्य मूलराज प्रथम ने गुजरात के सारस्वत मण्डल पर अपना अधिकार स्थापित कर ही लिया।[xcvii] राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय ने साम्राज्य को आक्रान्त कर कालंजर और चित्रकूट के दुर्गों पर अधिकार कर लिया जिन्हें पुनः प्राप्त करने की आशा प्रतिहारों ने खो दी। इसी काल में सामन्तों के आन्तरिक विद्रोह भी प्रारम्भ हो गये थे। परन्तु इन सारी घटनाओं के होते हुए भी अभी विघटन की प्रक्रिया बड़ी शिथिल और दुर्बल थी। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल द्वितीय (946 ई०) ने कम से कम मालवा एवं दक्षिणी राजस्थान तक का प्रदेश अपने अधीन रखा, यद्यपि स्वयं उसके ही द्वारा नियुक्त उज्जैन का दण्डनायक तंत्रपाल माधव अपने दानपत्र में सम्राट का नामोल्लेख न करने की धृष्टता करने लगा था।[xcviii] विघटन की यह प्रक्रिया देवपाल के शासन काल में बड़ी तीव्र हो गई और विजयपाल का शासन प्रारम्भिक वर्षों के भीतर ही कन्नौज का महान प्रतिहार साम्राज्य अपने पुराने स्वरूप का अतीत मात्र बन कर रह गया।

**महेन्द्रपाल द्वितीय (944-947 ई०)**

विनायकपाल के बाद रानी प्रसाधना देवी से उत्पन्न पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय प्रतिहार राजसिहांसन पर बैठा। इसके काल की जानकारी तीन अभिलेखों से होती है इसमें से एक अभिलेख दक्षिण राजपूताना के प्रतापगढ़ नामक स्थान से मिला था। यह अभिलेख श्रीविदग्ध द्वारा हस्ताक्षरित है।[xcix] डा० दशरथ शर्मा के अनुसार श्रीविदग्ध, महेन्द्रपाल द्वितीय का उपनाम है। इससे यह प्रकट होता है कि महेन्द्रपाल के समय में भी गुर्जर-प्रतिहारों का अवन्ति, मालवा के दशपुर, माण्डू, उज्जैन और प्रतापगढ़ जैसे स्थानों पर अधिकार पूर्ववत बना हुआ था।

**देवपाल (947-955 ई०)**

महेन्द्रपाल द्वितीय का शासनकाल अत्यल्प रहा। इसके पश्चात् देवपाल शासक हुआ। इसी के समय चन्देल शासक यशोवर्मा ने कालंजर का दुर्ग सुगमता से जीत लिया। यहां तक कहा गया है कि वह गुर्जरों के लिए एक जलती हुई अग्नि के समान था।[c] इससे प्रतीत होता है कि गुर्जर-प्रतिहारों की राजनीतिक सत्ता और प्रतिष्ठा का तेजी से ह्रास हो रहा था। हर्षदेव के खुजराहो अभिलेख से पता चलता है कि यशोवर्मन को देवपाल से बैकुंठ की छवि प्राप्त हुई जिसे उन्होंने मंदिर में स्थापित करवाया।

## विजयपाल (955-985 ई०)

राजौर अभिलेख[ci] से ज्ञात होता है कि मथनदेव गुर्जर, सावट का पुत्र था। राजोर (अलवर क्षेत्र के राजगढ़ जिले में स्थित) से शासन करने वाला यह प्रतिहारवंशी शासक अपने बड़े विरूदों के बावजूद कन्नौज के प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार करता था। यह समय गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के विघटन का समय था। प्रतापगढ़ अनुदान[cii] में स्तुति किये गये युद्धप्रिय चाहमानों के नाम किसी अन्य रिकार्ड से ज्ञात नहीं है। यह सभंवतः चाहमानों का स्थानीय राजवंश था जिसने राजा भोजदेव प्रथम के साथ एक अधिनस्थ गठबन्धन में प्रवेश किया था और उनके युद्धों में मदद की थी जिससे अधिपति को प्रसन्नता हुई।

## राज्यपाल (985-1019 ई०)

विजयपाल के पश्चात् राज्यपाल कन्नौज के सिहांसन का उत्तराधिकारी हुआ और गद्दी ग्रहण किया। एक अदिनांकित भतूरिया अभिलेख[ciii] प्राप्त होता है जिससे इसके इतिहास के बारे में पता चलता है। गुर्जर-प्रतिहार के उत्तर-पश्चिमी सीमा पर एक नये शक्ति केन्द्र की स्थापना हुई जहां से गजनी के पहले शासक सुबुक्तगीन तुर्क

ने भारत के विरूद्ध सैनिक अभियान प्रारम्भ किया और गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के प्रदेश एक-एक कर कन्नौज सत्ता की अधीनता से पृथक होते जा रहे थे। 1018 ई० में महमूद वृहद् सेना के साथ कन्नौज के भाग्य का निपटारा करने के लिए गंगा-यमुना क्षेत्र के ओर बढ़ने का साहस करता है और इसका मार्ग रोकने वाला कोई नहीं है। अपने-अपने स्वार्थवश उत्तर भारत के किसी राजा ने सहयोग नहीं दिया और राज्यपाल विवश होकर परिस्थितिवश महानगर छोड़ गंगा पार बारी के दुर्ग में शरण ली। यह कन्नौज के पूर्व दिशा में सरयू, रहाब व कामनी नदी के संगम पर स्थित है। तत्पश्चात् महमूद ने सातो गढ़ों को तोड़ते हुए नगर की लूटपाट की। महमूद के जाने के पश्चात भारतीय राजाओं ने राज्यपाल को दोषी सिद्धकर विद्याधर के नेतृत्व में सेना भेजी गई और युद्ध में लड़ता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ।

## त्रिलोचन पाल (1019-1030 ई०)

राज्यपाल के पश्चात त्रिलोचन पाल सिंहासनारूढ़ हुआ। इसका एक अभिलेख झूसी[civ] से प्राप्त हुआ जिससे कुछ जानकारी इसके बारें में पता चलती है। इसकी राजधानी अब बारी थी। राज्यपाल से युद्ध के एक वर्ष बाद महमूद पुनः इस पर आक्रमण करता है और अन्य राज्यों के असहयोग के कारण पराजित होता है किन्तु इसका राज्य बना रहा। इसके राज्य की सीमाओं का आकलन नहीं किया जा सकता है। त्रिलोचनपाल के झूसी ताम्रपत्र में सम्राट की परम्परागत उपाधि परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर का प्रयोग किया गया है।[cv]

सुल्तान महमूद[cvi] ने 1022 ई० में दूसरी बार चंदेल विद्याधर के क्षेत्रों पर आक्रमण किया इस अभियान के दौरान उसमें किले की घेराबंदी की। ग्वालियर को मजबूत पाते हुए उन्होंने किले के हाकिम या गवर्नर को पैंतीस हाथियों के उपहार

के साथ औपचारिक अधीनता स्वीकार करने की अनुमति दी। कुरेठा के नरवर्मन के प्लेट[cvii] से पता चलता है कि नायक विशेषण से प्रतीत होता है कि प्राप्तकर्ता राजा का अधिकारी या सामंत था। यह अनुदान राजा की महादेवी, ज्येष्ठ कुमार, महामंत्री, पुरोहित अक्षपटलिक की सहमति से दिया गया था।

**यशपाल (1030-1036 ई०)**

1036 ई० के कड़ा (इलाहाबाद) में मिले महाराजाधिराज यशपाल देव के अभिलेख[cviii] के आधार पर इतिहासकारों ने अनुमान लगाया है कि यशपाल, त्रिलोचन का उत्तराधिकारी, कौशाम्बी मण्डल (जिला इलाहाबाद) का राजा था। सम्भवतः वह कड़ा से शासन करता रहा हो। इसके पश्चात् का इतिहास अधंकार में है।

**प्रतिहार साम्राज्य का विघटन**

साम्राज्य के विघटन का सूत्रपात गुजरात से हुआ जब 941 ई० में चालुक्य मूलराज ने सारस्वत मण्डल के स्थानीय शासक को पदच्युत कर उस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसने शीघ्र ही गुजरात के अतिरिक्त सौराष्ट्र का कुछ भाग भी ले लिया और निर्भीक भाव से वह पड़ोसी भू-भागों को आक्रांत करने लगा।[cix] इसी प्रकार मालवा के परमार शासक हर्ष सीयक द्वितीय ने भी अपने पड़ोसी मूलराज का अनुकरण प्रारम्भ किया। महेन्द्रपाल द्वितीय (946 ई०) के शासनकाल तक तो मालवा पर प्रतिहारों का नियंत्रण पूर्ववत् बना रहा, परन्तु शीघ्र ही परिस्थिति पलटी और हरसोला दानपत्र (949 ई०)[cx] के अनुसार हर्ष

सीयक द्वितीयक ने सामन्तपद सूचक महामाण्डलिक चूड़ामणि की उपाधि के साथ प्रायः स्वतंत्र पदसूचक महाराजा- धिराजपति की उपाधि भी धारण कर ली।

ऐसे ही कन्नौज के पड़ोस में स्थित जेजाकभुक्ति (बुन्देल खण्ड) के चंदेलों ने हर्ष के समय (910-30 ई०) तक तो अपनी पूर्ण स्वामिभक्ति का परिचय दिया, परन्तु यशोवर्मा की महत्वाकांक्षा इस स्वामिभक्ति में बाधक बन गई। उसने सरलतापूर्वक चेदियों से कालंजर का अजेय दुर्ग छीन लिया और इस विजय ने उसकी राजनीतिक एवं सैनिक महत्वाकांक्षा को तीव्र कर दिया।[cxi] शाकम्भरी के चाहमान भी इस विघटन की प्रक्रिया में कम सहायक नहीं रहे। हर्ष शिलालेख के अनुसार प्रतिहार सत्ता को सर्वप्रथम चुनौती वाक्पतिराज प्रथम ने विनायकपाल के शासनकाल में दी थी।[cxii] त्रिपुरी के कलचुरी दसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण से ही शक्ति-संचय कर भारतीय राजनीति में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाना चाहते थे। वस्तुतः प्रतिहारों के विरूद्ध अपने अस्तित्व की रक्षा एवं वृद्धि के निमित्त नवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से ही उन्होंने दक्षिण के राष्ट्रकूटों के साथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर न केवल अपनी शक्ति बढ़ाई, वरन् राष्ट्रकूटों को भी पर्याप्त सहायता पहुँचायी और दक्षिण में उनके अनेक युद्धों में भाग लिया।[cxiii]

साम्राज्य के सभी दूरस्थ प्रान्त अलग होकर विभिन्न शक्तिमान स्वतंत्र राज्यों में तो परिणत हो ही गये थे। भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर तुर्क-आक्रमण के रूप में एक ऐसा दैवी प्रकोप मंडराने लगा जिससे छूटकारा पाना भारत के ईर्ष्यालु एवं परस्पर द्वेषी राजाओं के लिये दुष्कर था। प्रतिहारों ने तो अपना प्रतिहारत्व, जिसकी आधारशिला पर ही साम्राज्य की स्थापना हुई थी, बहुत पहले ही खो दिया था। अलप्तगीन नामक एक तुर्क ने 962 ई० में गजनी में एक स्वतंत्र राज्य की

स्थापना की थी। संस्थापक की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों की दुर्बलता एवं उनके पारस्परिक संघर्ष की स्थिति से लाभ उठा कर सुबुक्तगीन नामक एक साहसी एवं कुशल सेनानी ने 977 ई० में गजनी पर अधिकार कर लिया। कालान्तर में अफगानिस्तान के हिन्दू शाही राजवंश ने गजनी के शासकों से सन्धि करके अपने सीमाओं की रक्षा की। इस सन्धि के बाद भी सीमावर्ती झगड़ों को लेकर तनातनी चलती रही और 991 ई० में जयपाल ने एक विशाल सेना लेकर गजनी पर पुनः आक्रमण कर दिया। फरिश्ता का यह कथन, कि इस युद्ध में कलिंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के राजाओं ने जयपाल की सहायता की थी, विश्वास के योग्य नहीं है।[cxiv] समकालीन एवं दरबारी इतिहासकार उत्बी इस प्रकार के किसी संघ का उल्लेख नहीं करता है। जो भी हो सुबुक्तगीन के कुशल सैनिक नेतृत्व के कारण जयपाल को पराजित होना पड़ा था।

सुबुक्तगीन का उत्तराधिकारी महमूद (988-1030 ई०) अपने अप्रतिम शौर्य, साहस, सूझ-बूझ, नीति-निपुणता एवं कुशल सैनिक नेतृत्व के कारण अपने सभी युद्धों में सदा विजयी रहा। भारत पर आक्रमण करने का उसका मुख्य उद्देश्य यहाँ की अपार धन-राशि प्राप्त करना था। इस प्रकार जब भारत के प्रवेश-द्वार पर आक्रमण की जोरदार तैयारी हो रही थी, भारतीय नरेश शक्ति और साधन में अजेय होते हुए भी अपने व्यक्तिगत एवं राजवंशीय हितों के साधन के लिये अपने में ही लड़ रहे थे। नाम-मात्र के लिये सम्राट पद का अधिकारी राज्यपाल अपने पूर्वजों की भाँति देश का प्रतिहारत्व करने में सर्वथा असमर्थ था, परन्तु हर प्रकार के साधनों से युक्त मालवा का परमार सम्राट भोज देश की रक्षा में सहयोग देने के बजाय कल्याणी के चालुक्यों के विरूद्ध कलचुरियों और चोलों का संघ बनाकर युद्ध करने

में लगा हुआ था। दक्षिण भारत के महान चोल सम्राट राजराज महान एवं राजेन्द्र प्रथम को उत्तरी भारत के सम्बन्ध में कोई रूचि नहीं थी और वे अपनी सारी शक्ति दक्षिणी भारत, सिंहल एवं इण्डोनेशिया के युद्धों में ही लगा रहे थे। फलतः भारत के प्रवेश द्वार की रक्षा में पंजाब के शाही अकेले रह गये और उन्होंने इसमें अपनी सारी शक्ति लगा दी। यह उनका दुर्भाग्य था कि धन-जन के उनके समस्त साधन मुसलमानों के धर्मोन्माद, धन-लोलुपता और इनसे भी बढ़कर स्वयं महमूद के शौर्य एवं सैनिक नेतृत्व के सामने व्यर्थ सिद्ध हुए।[cxv]

## महमूद गजनवी के आक्रमण और प्रतिहार साम्राज्य

महमूद ने भारत पर कुल सत्रह आक्रमण किये, परन्तु भारतीय भूमि पर उसे सबसे अधिक विरोध शाही जयपाल एवं उसके उत्तराधिकारियों की ओर से ही मिला और एक-दो बार तो उसे उनके कारण भारी संकटमय स्थिति में भी पड़ना पड़ा। फरिश्ता के अनुसार आक्रमण की जानकारी होने पर आनन्दपाल ने भारत से मुसलमानों के निष्कासन के लिये भारतीय नरेशों से सहायता की याचना की। कन्नौज के राजा (राज्यपाल) ने, जो इससे पूर्व उसके पिता की सहायता कर चुका था, उस कार्य में उसकी मदद के लिये एक सेना भेजी और उज्जैन, ग्वालियर, कालंजर, दिल्ली और अजमेर के राजाओं ने उसका अनुसरण किया।[cxvi] फरिश्ता द्वारा इस युद्ध में भी भारतीय नरेशों के संघ के पराजय का उल्लेख करता है, और उससे इस वर्णन में किसी प्रकार की भूल होने की सम्भावना भी नहीं है, क्योंकि सुल्तान के निजी सचिव के रूप में वह वहाँ विद्यमान था। आनन्दपाल की इस पराजय ने पंजाब के भाग्य का तो निर्णय कर ही दिया, साथ ही इससे भारतीय

नरेशों का मनोबल इतना अधिक गिर गया कि इसके बाद कभी फिर महमूद को इतने उग्र प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा।

महमूद गजनवी ने 1014 ई० में थानेश्वर पर चढ़ाई की और वही से चक्रस्वामी की मूर्ति के साथ अपार धन राशि लूट कर ले गया। इसके बाद उसने मथुरा नगर को पूरी तरह लूटा, मूर्तियों को तोड़ा तथा मन्दिरों में एकत्र रत्न-राशि को अधिकृत किया और फिर उनमें आग लगवा दी। महमूद ने इस अभियान में जिन दुर्गों और नगरों को अधिकृत किया वे सम्भवतः प्रतिहार राज्य की सीमा के भीतर ही रहे होंगे, परन्तु राज्यपाल ने उनकी रक्षा की कोई व्यवस्था न कर घोर भीरूता का परिचय दिया। मथुरा की लूट के बाद सुल्तान सीधा कन्नौज की ओर बढ़ा और 1018 ई० को कन्नौज जा पहुँचा। महमूद के आक्रमण के समाचार से प्रतीहार सम्राट राज्यपाल भयभीत हो उठा और दुर्ग छोड़कर नदी के पार बारी के दुर्ग में चला गया।[cxvii] नगर पर एक ही दिन में उसका अधिकार हो गया।

महमूद के इस आक्रमण ने प्रतीहारों की रही-सही प्रतिष्ठा को भी समाप्त कर दिया और कन्नौज का गौरव धूल में मिल गया। किसी भी भारतीय नरेश ने न तो इस आक्रमण में राज्यपाल का साथ दिया और न देश के भीतर इतनी दूर तक घुस आये विजेता का मार्गविरोध ही किया। परन्तु जब कन्नौज की विजय के बाद सुल्तान वापस चला गया, तब राज्यपाल का वह भीरूतापूर्ण आचरण उन्हें अपमानजनक जान पड़ा। जेजाकमुक्ति के शक्तिशाली चन्देल नरेश विद्याधर ने दूत भेजकर पराजित सम्राट को उसके पलायन एवं मुसलमानों के सम्मुख आत्म-समर्पण पर भर्त्सना की, जिसने अन्त में संघर्ष का रूप धारण कर लिया। विद्याधर ने अपने

सामन्तों के साथ एक विशाल सेना लेकर राज्यपाल पर आक्रमण कर दिया और चन्देलों तथा प्रतीहारों में युद्ध छिड़ गया।[cxviii]

अब हम प्रतिहार राजवंश का मूल्यांकन उनकी राजनीतिक उपलब्धियों के आधार पर करेंगे। यह स्पष्ट है कि सिन्ध व मुल्तान पर अरबों की स्थापना के बाद पश्चिमी भारत में आक्रमण का उत्पात बढ़ा और उस क्षेत्र में राजनीतिक एवं धार्मिक अस्थिरता प्रारम्भ हो गयी। देश, धर्म और समाज की रक्षा के लिये विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिरोधात्मक शक्तियों का प्रादुर्भाव प्रारम्भ हुआ। अरबों का विरोध करने वालों और देश के भीतरी भागों में उनके प्रवेश को रोकने वालों में गुर्जर देश के प्रतिहार प्रमुख थे जिन्होंने अपने नेता नागभट्ट के द्वारा स्थानीय शक्तियों को संगठित कर एक दृढ़ मोर्चा कायम किया। न केवल अरब आक्रमण से पश्चिमी भारत की रक्षा की, बल्कि अपनी पैतृक भूमि गुर्जरा के अतिरिक्त दक्षिणी राजस्थान, पश्चिमी मालवा एवं लाट तक के प्रदेश को अधिकृत कर एक संगठित और शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। इस प्रकार इसने एक ओर तो देश की रक्षा में अरब आक्रमण के विरूद्ध वास्तविक प्रतिहार (द्वारपाल) का कार्य किया तथा दूसरी ओर एक सबल राज्य की स्थापना कर पश्चिमी भारत में शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था की। उन्होंने उत्तरी भारत के प्रधान नगर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया और पालों, राष्ट्रकूटों तथा अरबों के आक्रमण से उस साम्राज्य की रक्षा में सतत् जागरूक एवं प्रयत्नशील बने रहे। प्रतिहार राजवंश एक प्रकार से भाग्यशाली था कि अपने शासन के प्रथम दो सौ वर्षो में नागभट्ट प्रथम से महीपाल प्रथम तक उसने योग्य और शक्तिमान उत्तराधिकारी पैदा किये, जिन्होंने साम्राज्य के किसी भी अंग में किसी प्रकार की दुर्बलता या शिथिलता नहीं आने दी।

## गुर्जर-प्रतिहारों का मूल्यांकन

गुर्जर-प्रतिहारों का भारतीय इतिहास में जो महत्व है उसका सही मूल्यांकन बहुत दिनों तक प्रायः नहीं के बराबर था। किन्तु अब स्थिति कुछ परिवर्तित हो गई है तथा इतिहासकारों द्वारा उसका सही मूल्यांकन होने लगा है। नागभट्ट के द्वारा धर्मपाल को मात देकर कन्नौज पर 9वीं शती के प्रारम्भ में अधिकार कर लेने के समय से 10 वीं शती के मध्य तक के लगभग 150 वर्षों तक के बीच, पालों और राष्ट्रकूटों की गहरी प्रतिद्वन्द्विता के होते हुए भी, प्रतिहार सत्ता सारे उत्तर भारत को एक राजनीतिक और प्रशासकीय सूत्र में बाँधे रही। यही नहीं पाल और राष्ट्रकूट भारतवर्ष के हृदय स्थल और सदा से भारतीय राजनीति के केन्द्र (उत्तरी और मध्यभारत) को अधिकृत करने की त्रिकोणात्मक लड़ाई प्रतिहारों से हार गये, और अपने-अपने क्षेत्रों में भी उनकी सत्ता का उतना दीर्घकालीन दबदबा नहीं रहा, जितना सारे उत्तर भारत में गुर्जर-प्रतिहारों का था। अपने चरमोत्कर्ष के दिनों में पूर्व में उत्तर बंगाल से पश्चिम में सिन्ध, सौराष्ट्र और गुजरात तक; उत्तर में हिमालय की निचली पहाड़ियों से लेकर दक्षिण में सारे बुन्देलखण्ड और मालवा तक तथा पूर्वी पंजाब और दिल्ली होते हुए सारे राजपूताने तक प्रतिहार सम्राटों की प्रशासकीय आज्ञाएँ समानरूप से स्वीकृत थीं तथा इस क्षेत्र के बीच के अनेकों राजवंश उनकी सैनिक सेवा करते हुए अपने को यशस्वी और गौरवान्वित समझते थे। अपने सर्वाधिक उत्कर्ष और विस्तार के समय केवल मौर्यों का साम्राज्य प्रतिहारों से बड़ा था, लेकिन उसका जीवन प्रतिहार साम्राज्य के 150 वर्षों के मुकाबले एक सौ वर्षों से भी कम (321-232 ई०पू०) का था। लगभग इतना ही जीवन (350 ई० 467 ई०) गुप्त साम्राज्य का भी था, किन्तु वह अपने अन्यतम विस्तार के समय भी भोज-महेन्द्रपाल के साम्राज्य-विस्तार से छोटा ही था। हर्ष का

साम्राज्य प्रतिहारों जैसा न तो विस्तृत था, न दीर्घकालीन, और न प्रशासन में ही उतना सुसंगठित था। दीर्घजीवन में भारतवर्ष का यदि अन्य कोई एक साम्राज्य प्रतिहार साम्राज्य का मुकाबला कर सका तो वह मुगल साम्राज्य (1556-1707) ही था, जो उससे अधिक विस्तृत भी था। किन्तु प्रतिहारों को एक साथ जिस लम्बी अवधि तक विभिन्न दिशाओं-दक्षिण में राष्ट्रकूटों, पूर्व में पालों और पश्चिम में अरबों जैसे अपने सामान ही शक्तिशाली शत्रु राजवंशों का मुकाबला करना पड़ा, वैसी समस्या न तो मौर्यों की थी, न गुप्तों की और न मुगलों की। पुनः इन सभी साम्राज्यों के पतन के दो समान कारण दिखायी देते हैं - शक्तिहीन उत्तराधिकारी तथा विदेशी आक्रमण। किन्तु जितने दिनों तक प्रतिहारों ने विदेशी आक्रमणकारियों का सफलतापूर्वक मुकाबला किया, उतने दिनों तक मुकाबले की समस्या उनके अतिरिक्त किसी अन्य साम्राज्य के सामने थी ही नहीं। अरब इतिहासकार[cxix] - सुलेमान, अबूजैद, अल्मसूदी आदि ने सैन्यशक्ति, देशभक्ति, वीरता, अरबों के प्रति शत्रुता[cxx] तथा उन्हें पीछे ढकेल देने के लिए अनवरत रूप में उनके तैयार रहने की प्रशंसात्मक बातें लिखते हैं। शत्रुपक्ष के इन लेखकों की प्रशंसा से बढ़कर प्रतिहारों की और कोई प्रशंसा नहीं हो सकती। अरब सुल्तान मुल्तान और मन्सूर तक सीमित रहने को बाध्य हो गये[cxxi] और अपने को बचाने के लिए उन्हें 'अल्-महफूज' (शत्रु के आक्रमण और भय से मुक्त) नाम का नगर बसाना पड़ा।[cxxii] 'एलफिस्टन' के समय से ही भारत के कुछ युरोपीय इतिहासकार[cxxiii] इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते रहे हैं कि क्या कारण है कि जिन मुसलमानों ने अपने आक्रमणों के प्रथम आवेग में ही प्रायः सम्पूर्ण मध्य और पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका और दक्षिणी यूरोप को

भयाक्रान्त कर डाला तथा उन सभी भूखण्डों की अधिकांश जनता को इस्लाम मानने को विवश कर दिया, वे ही 8वीं शती के प्रारम्भ में भारत के सिन्ध और मुल्तान में स्थापित हो जाने पर भी उससे आगे बढ़ने में लगभग 300 वर्षों तक कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं प्राप्त कर सके? इस गुत्थी के समाधान में गुर्जर प्रतिहारों के विशाल, शक्तिशाली और सुशासित साम्राज्य की उस जागरूकता का हवाला दिया जा सकता है, जिसके नेतृत्व में राजपूताना और गुजरात की अनेक छोटी- छोटी सत्ताएँ भी अरबों की चुनौतियाँ स्वीकार करने में पीछे नहीं रही।[cxxiv] प्रतिहारों ने सच्चे अर्थों में देश की सुरक्षा और मान-मर्यादा की रक्षा में प्रतिहार (ड्योढ़ीदार अथवा रक्षक) के कर्तव्यों का अक्षरशः पालन किया। उन्होंने आठवीं शताब्दी के प्रथम चरण से ही अरबों का मुकाबला प्रारम्भ कर दिया था। भोज का ग्वालियर अभिलेख इस बात का दावा करता है कि म्लेच्छ (मुसलमान) आक्रमणकारियों से देश की स्वतंत्रता और संस्कृति की रक्षा करने में प्रथम नागभट्ट, द्वितीय नागभट्ट और मिहिरभोज भगवान् नारायण, विष्णु पुरुषोत्तम और आदिवराह की तरह मानों अवतारी पुरुष हुए।[cxxv] यही नहीं, प्रतीहारों के चरमोत्कर्ष के समय कन्नौज भारतीय संस्कृति और सभ्यता का केन्द्र हो गया[cxxvi], जहाँ देश के सभी भागों से विद्वान और कलाकार जुटने लगे और अन्य भारतीय प्रदेशों के स्त्री-पुरुष अपने ओढ़ावे-पहरावे, बोलचाल एवं रीति-रिवाज में वहाँ के लोगों की नकल करने लगे। राज्यपाल के समय प्रतीहारों की घोर अवनति के होते हुए भी कन्नौज की अपनी निराली शान थी। 'उस नगर का सिर आसमान छूता था' तथा 'शक्ति और सौन्दर्य में कन्नौज इस बात का अभिमान कर सकता था कि उसकी

प्रतिद्वन्द्विता करने वाला कोई दूसरा नगर नहीं था।'[cxxvii] प्रतिहार साम्राज्य की छाया में ही पल्लवित मथुरा नगर अपने भव्य मंदिरों की विशालता, कारीगरी और सौन्दर्य से महमूद गजनवी जैसे कट्टर मूर्तिभंजक को भी आकृष्ट किये बिना न रहा। महमूद के ही शब्दों[cxxviii] में 'मथुरा नगर के बीच में स्थित' बड़े मंदिरों की तुलना के अन्य वास्तु यदि कोई निर्मित कराना चाहता तो उसे काम पर सर्वाधिक अनुभवी कारीगरों को लगाने पर भी एक लाख सोने की दीनारें खर्च करनी होगी तथा दो सौ वर्ष लगाने होगें।' प्रतिहार साम्राज्य के वैभव और आर्थिक सम्पन्नता का इससे बढ़कर कोई अन्य साक्ष्य नहीं हो सकता। यह सम्पन्नता उनकी राजनीतिक और सैनिक शक्ति एवं प्रशासनिक 'धरणिबन्ध' का ही परिणाम थी। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन विद्वानों का यह मत स्वीकार नहीं किया जा सकता कि हर्ष प्राचीन भारत का अंतिम हिन्दू सम्राट था। यह गौरव वस्तुतः गुर्जर- प्रतिहारों को ही दिया जाना चाहिए, जिनके बाद का हिन्दू भारत आपस में लड़ने वाले राज्यों में विभक्त हो गया। उन विभिन्न राज्यों में समय-समय से कई शक्तिशाली विजेता तो अवश्य हुए, किन्तु उनमें से कोई भी ऐसी परम्परा नहीं छोड़ गया जो प्रतिहार साम्राज्य के उत्कर्ष के समय की अपनी विशेषता थी।

# गुर्जर - प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित समाज

संरचनात्मक रूप से समाज व सामाजिक स्थिति की व्याख्या करते हुए पाते है कि इसके दो घटक है, एक पुरूष दूसरी महिला। समाज इन्ही का सम्मिलन है। मनुष्य अपने जीवन को सुगम व सुव्यवस्थित बनाने के लिए उसे कई स्तरों में विभाजित कर लेता है। जैसे- वर्णव्यवस्था, जाति व्यवस्था, रहन-सहन, शिक्षा आदि। गुर्जर-प्रतिहार कालीन सामाजिक व्यवस्था भी इससे अछुता नहीं था। इस काल में भी वर्ण व्यवस्था विद्यमान थी। जाति व्यवस्था के कारण वर्णो का फैलाव छोटे-छोटे रूपों में होने लगा था। उच्चवर्णो के साथ-साथ जन सामान्य की स्त्रियां भी सामाजिक कार्यों में हिस्सा लेती थी। निम्न या शूद्र वर्ग दयनीय स्थिति में था जिनका प्रमुख कार्य ऊपर के वर्णो की सेवा करना ही था। अत: यह देखा जा सकता है कि समाज प्राचीन आचार विचारों के आधार पर चल रह था किन्तु गतिशीलता की कमी नहीं थी।

सामाजिक पुननिर्माण में गुर्जर-प्रतिहार शासकों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। अपने राज्य को वाह्य व आन्तरिक बाधाओं से सुरक्षित करते हुए जनता के हित व कल्याण के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहें। प्रजा को अपने धर्म पर अवस्थित रखना तथा प्रजा का पालन व रक्षा करना राजा के प्रमुख कर्त्तव्य बताये गये है।

वर्णाश्रम धर्म हिन्दू समाज का मेरूदण्ड रहा है। इस काल की सामाजिक व्यवस्था चातुर्वर्ण व्यवस्था के आदर्शों पर आधारित थी। यद्यपि इसका स्वस्थ दार्शनिक आधार गुण धर्म का सिद्धान्त था किन्तु अब जन्म एवं वंशानुक्रम पर अधिक बल परिलक्षित होता है। पूर्ववर्ती युगों में भी सिद्धान्ततः चारों वर्णो को मान्यता थी किन्तु इसमें कट्टरता नहीं थी। परिणामतः कुछ नवीन समूहों को इस व्यवस्था में आत्मसात् किया गया था जैसे- शक, यवन, पह्लव, हूण आदि किन्तु इस काल में सामाजिक आत्मसातिकरण की प्रक्रिया मंद सी पड़ गयी थी क्योंकि वाह्य समूहों को पचाने के स्थान पर उनके प्रभाव से स्वयं के अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया। यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक संकट इतना भयावह था कि संपूर्ण सामाजिक चिंतन ही प्रतिरक्षात्मक हो गया जिसके कारण बहुआयामी परिवर्तन हुए। इस परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण तत्कालीन इतिहास में समुचित बोध के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

परम्परागत सामाजिक मूल्यों व व्यवस्था की रक्षा के प्रति शासकों की सचेष्टता समकालीन साहित्य एवं अभिलेखों में कई स्थान पर प्राप्त होते है।साहित्य के अन्तर्गत राजशेखर की काव्यमीमांसा[cxxix] व अभिलेखों में पेहोवा अभिलेख (भोजदेव)[cxxx], कमौली प्लेट (वत्सराज)[cxxxi] जयभट्ट (गुर्जर सामन्त)[cxxxii], ऊणा अभिलेख (महेन्द्रपाल प्रथम)[cxxxiii] के अभिलेख में करनाल, जूनागढ़ (ऊणा), बनारस, सौराष्ट्र आदि से प्राप्त होते है। धर्म की रक्षा राजा का प्रथम कर्त्तव्य था। मेधातिथि ने कहा है कि राजा म्लेच्छो को पराजित कर चातुर्वर्ण व्यवस्था स्थापित करे।[cxxxiv] बौद्धानुयायी पाल नरेश भी हिन्दू-सामाजिक व्यवस्था का पालन करते थे। समकालीन अन्य शासकों ने

भी सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए आर्य-धर्म को अभिप्रकाशित किया है।

**वर्ण-व्यवस्था-**

मिहिर भोज के ग्वालियर अभिलेख[cxxxv] कुरेठा से प्राप्त प्रतिहार अनुदान[cxxxvi], पेहेवा अभिलेख[cxxxvii] घटियाला अभिलेख[cxxxviii] से गुर्जर-प्रतिहार कालीन वर्णव्यवस्था की सूचना मिलती है। गुर्जर-प्रतिहार कालीन सामाजिक जीवन सैद्धान्तिक तौर पर परम्परागत वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था से चालित होता हुआ शास्त्र सम्मत सदाचार को अपनाकर लौकिक एवं पारलौकिक सुखो के लिये प्रयत्नशील रहा था। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में लिखा है कि पूर्व एवं पश्चिमी सागर तथा हिमालय एवं विन्ध्याचल के बीच का भाग आर्यावर्त कहा जाता है। इस आर्यावर्त में चार वर्णो की व्यवस्था थी।[cxxxix] गुर्जर-प्रतिहारो को वर्णाश्रम धर्म में निपुण कहा गया है। प्रतिहार शासक कक्कुक के घटियाला अभिलेख से संकेत मिलता है कि रोहिसंकूप (घटियाला) अभिरो के उपद्रव के कारण अच्छे नागरिको के रहने योग्य नहीं रह गया था जिसे उस शासक ने भयरहित कर रहने योग्य बनाया उसमें बाजारों की व्यवस्था की और तीनों वर्णों के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के रहने के लिये मकान, सड़क आदि का निर्माण करवाया। इस सन्दर्भ से स्पष्ट होता है कि प्रतिहार शासक चारों वर्णो की व्यवस्था के प्रति जागरूक थे।[cxl] हर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन के विषय में कहा गया है कि उसने वर्ण व्यवस्था को स्थिर रखा था।[cxli]

**ब्राह्मण -**

वैदिक युग से ही ब्राह्मण सामाजिक संगठन का महत्त्वपूर्ण एवं शीर्षस्थ वर्ग था जो अध्ययन एवं अनुशासन के प्रति समर्पित था। अध्यात्म से प्रेरित होकर आदर्शवाद के प्रति अनुशासित जीवन का समर्पण इस वर्ग की विशिष्टता थी। यह सामाजिक जीवन में रीढ़ की हड्डी के समान प्रतिष्ठित था। राजशेखर ने ब्राह्मणों के लिए ब्राह्मण[cxlii], विप्र[cxliii], द्विज[cxliv] आदि शब्द प्रयुक्त किया है तथा उन्हे सर्वश्रेष्ठ जाति के रूप् में बताया गया है। ब्राह्मण को कष्ट पहुंचाने वाला तथा उसे प्रताडित करने वालों को पतित कहा गया है।[cxlv] इनसे यह अपेक्षित था कि निर्धनता का जीवन व्यतीत करते हुए भी समाज का नेतृत्व करेंगे। ब्राह्मण शासकों द्वारा संरक्षित थे तथा सामाजिक चेतना को जीवंत रखते थे। गुर्जर-प्रतिहार काल में ब्राह्मणों के आचार-व्यवहार में महत्त्वपूर्ण  परिवर्तन दिखाई देने लगता है वह यजन-याजन एवं पठन-पाठन तक ही सीमित न रहकर राजनीतिक गतिविधियों की ओर उन्मुख होने लगे थे। क्षत्रियों की भांति ब्राह्मणों में भी सामन्तवादी प्रवृत्तियां अंकुरित होती थी। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण वर्ग में अन्तर्विभाजन की प्रक्रिया भी इस युग में तीव्र हो जाती है। अनुवांशिक एवं क्षेत्रीय आधार पर अनेक ब्राह्मण जातियाँ एवं उपजातियां अस्तित्व में आई। राजनीतिक उथल-पुथल के कारण विभिन्न दूरस्थ प्रदेशों में ब्राह्मण परिवारों का प्रव्रजन भी इस काल के सामाजिक जीवन की एक विशिष्टता है। इन परिवर्तनों के पीछे प्रतिरक्षा की भावना ही कार्यरत एवं प्रभावी थी। जयपाल देव कालीन सिलिमपुर शिलालेख[cxlvi] से ज्ञात होता है कि पांच गोत्रों (जिनमें से एक भारद्वाज गोत्र है) से संबंधित

पांच ब्राह्मणों को कन्नौज से आयात किया था। साथ में पांच कायस्थ भी आये थे। ब्राह्मणों के इस आयात का कारण यह था कि वैदिक विधा में पारंगत ब्राह्मणों की कमी के कारण रूढ़िवादी हिन्दू रीति-रिवाज लुप्त हो गये थे। इस अर्द्धपौराणिक राजा के शासन का समय इतिहासकारों द्वारा अलग-अलग निर्धारित किया गया है लेकिन ऐसे सभी अधिकारी इसे 700 से 1100 ई० की शताब्दियों के भीतर सीमित करने पर सहमत है।

समकालीन साहित्य में ब्राह्मणों के सन्दर्भ में प्राय: पंचगौड़ों का उल्लेख मिलता है। सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल और गौड़ पंचगौड़ों में परिगणित थे। राजतरंगिणी में इनका उल्लेख बंगाल के ब्राह्मणों के सन्दर्भ में हुआ है किन्तु ह्वेनसांग ने पंचगौड़ को पंचभारत के नाम से पुकारा है।[cxlvii] पंचगौड़ सम्भवत: उत्तर भारत के पांच विशिष्ट ब्राह्मणों का समूह था।[cxlviii] इससे यह भी प्रतीत होता है कि पंचगौड़ों के आधार पर ब्राह्मणों का वर्गीकरण क्षेत्रीय आधार पर ही हो गया था। इनके अतिरिक्त सरयूपारी जैसे अन्य ब्राह्मणों का भी उल्लेख मिलता है।

गुर्जर-प्रतिहारों के काल में अधिकतर अभिलेख दानपत्र है। इन दान-पत्रों का विवेचन करने पर पता चलता है कि दान प्राप्त करने वाले अधिकतर ब्राह्मण है या भगवान के मंदिर। प्रतिहार राजा भोजदेव के समय हर्षुका भट्ट (ऋग्वेद के आश्वालायन शाखा से संबंधित ) को शिव नामक अग्रहार गॉव जो डन्डवन का विषय तथा गुर्जरत्रा देश के अन्तर्गत था दिया गया।[cxlix] ब्राह्मण दान लेने के साथ-साथ दान देने की भूमिका भी निभाते थे। पेहोवा अभिलेख में हमें लगभग 34 ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है जो अलग-

अलग गावों का प्रतिनिधित्व करते हुए पेहोवा में लगने वाले पशु मेला में सम्मिलित होते थे। इनके द्वारा कन्नौज, गोतीर्थ, पृथुदक में स्थापित मंदिरों, पुजारियों, बलि के स्थान को दो द्रम्म दान में देने का उल्लेख मिलता है।[cl] आहार-प्रस्तर अभिलेख में ईश्वरभट्ट, महादेव व उसकी माता इयाता की भूमि को 'गोष्ठि' नामक संस्था द्वारा खरीदकर कनक श्री मंदिर को दान में देने का उल्लेख मिलता है।[cli] जोकि तत्कालीन समाज में उनके प्रभुत्व को दर्शाता है। कतिपय दानपत्रों में गोत्र के साथ विशिष्ट वैदिक शाखा का भी उल्लेख मिलता है। गोत्र एवं शाखा के द्वारा दानग्रहीता ब्राह्मण का वंश परिचय तो स्पष्ट होता है ही, साथ में अन्य ब्राह्मणों से उसका पार्थक्य भी प्रकट होता है।

कन्नौज के महेन्द्रपाल के शासनकाल से एक अदिनांकित प्रशस्ति[clii] कन्नौज के भोजदेव का देवगढ़ स्तंभ लेख[cliii], महेन्द्रपाल द्वितीय के समय का प्रतापगढ़ अभिलेख[cliv], विग्रहपाल तृतीय के प्लेट[clv] से इस बात की पुष्टि हो जाती है ब्राह्मणों में गोत्र व प्रवर आदि का महत्त्व था। अरबो-तुर्कों के आक्रमण के फलस्वरूप स्थानीय भावना तीव्र हो गई और भारतीय संस्कृति निर्माताओं तथा संरक्षकों ने वंशानुगत शुद्धता तथा अस्पृश्यता पर जोर देकर उसे बनाने का प्रयत्न किया। अन्तर्जातीय विवाहों पर रोक लगा दी गई और समुद्र मात्रा वर्जित हो गई। स्वच्छता के नियमों का पूर्ण निर्वाह करते हुए ब्राह्मण की देखरेख में किसी शूद्र द्वारा बनाया हुआ भोजन भी ब्राह्मणों के लिए अभक्ष्य हो गया। मुस्लिम जनता के सम्पर्क में आने वाले ब्राह्मण निम्न समझा जाने लगा। शाकाहार और मांसाहार करने वाले ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति में

बड़ा अन्तर आ गया अपना मूलस्थान छोड़कर दूरस्थ स्थानों को चले जाने पर कुछ व्यवसायों के ग्रहण कर लेने पर और दार्शनिक -धार्मिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक व्यवहार संबंधी मतभेदो के कारण एक ही जाति के लोग अनेक उपजातियों में विभक्त हो गये। ब्राह्मणों का एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को प्रव्रजन इस काल की विशिष्ट घटना है। भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मणों के मध्य देश से बंगाल जाने का भी उदाहरण है। महिपाल के बेलवा ताम्र प्लेट[clvi] अनुदान से हमें पता चलता है कि प्राप्तकर्त्ता पीताबंर- देव- सरमन का परपोता था जो उत्तरी राधा के सिड़धला गांव का निवासी था और जो मध्यदेश से आया था लेकिन मध्यदेश से इस तरह का अयात हमेशा से ही चलता रहा है न केवल बंगाल में बल्कि भारत के अन्य हिस्सों में भी। हम तद्नुसार कल्पना कर सकते है कि सवर्ण गोत्र के बाद के अप्रवासी बंगाल में उसी गोत्र के स्थानीय निवासियों के साथ मिल गए होंगे। इसका एक साक्षात् प्रमाण कवि राजशेखर के उद्धरण से ही ज्ञात होता है कि उसने कन्नौज के प्रतिहारवंश का आश्रय छोड़ वृद्धावस्था में त्रिपुरी चला आया था जहाँ उसने युवराज के संरक्षण में विद्धशालभंजिका और काव्यमीमांसा की रचना की थी। उत्तर भारत में गुर्जर-प्रतिहारों की प्रबल सत्ता अरब एवं तुर्क आक्रमणों के विरूद्ध कुछ समय तक अभेद्य दीवार की तरह बनी रही किन्तु महमूद गजनी के हाथों राज्यपाल की पराजय तथा 1019 ई० में ़विद्याधर द्वारा राज्यपाल के वध के साथ प्रतिहारो की सत्ता का सूर्य अस्त हो गया, इसके साथ ही स्वाभाविक रूप से कन्नौज एवं मध्य प्रदेश का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गौरव भी विलुप्त हो गया। गजनवी की विजयोन्मत सेनाओं ने कन्नौज के भव्य मंदिरों एवं भवनों को कुरूप बनाकर छोड़ दिया। परिणामत: धर्मभीरू

ब्राह्मण परिवारो ने अधिक सुरक्षित क्षेत्रों की ओर जाने के लिए प्रयत्न किया। यद्यपि कुछ ब्राह्मण विद्वान राज्याश्रय के लोभ से भी दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिम के नवोदित राज्यवंशो के आश्रय में गये। तथापि बड़ी संख्या में ब्राह्मणों के प्रव्रजन का मुख्य कारण भयजनित प्रतिरक्षा की प्रवृत्ति ही प्रतीत होती है।

गुर्जर-प्रतिहार युगीन ब्राह्मण प्रशासन के कार्य में भी भलीभांति रूप से संलग्न थे जो उनके अत्यधिक अधिकारयुक्त व समाज में प्रभावशाली स्थान को प्रदर्शित करता है। गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में लगभग 10 ब्राह्मण प्रशासनिक अधिकारियों का उल्लेख मिलता है जो कि मर्यादाधुर्य[clvii], महासामन्त[clviii], प्रशस्ति लिखने वाले[clix], सूत्रधार[clx], प्रान्तीय अधिकारी[clxi], दूत्तका[clxii] इत्यादि जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन थे। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों द्वारा इस काल में मठाधीश[clxiii] दानो के गवाह[clxiv] आदि कार्य भी करते थे। ऐसा प्रतीत नही होता है कि ब्राह्मणों द्वारा उपर्युक्त कार्यो को अपनाये जाने के कारण वे अपना वंशानुगत कार्य जैसे- यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, अग्निहोत्र तथा आतिथ्य जैसे कार्यो को सम्पादित नहीं करते थे। राजशेखर की रचनाओं में भी तीन प्रकार के ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है- यायावर, उपाध्याय और चारण। यायावर वह ब्राह्मण होते थे जो राजघराने का गुरू एवं सर्वविद्या पारंगत होता था।[clxv] राजशेखर स्वयं को यायावर वंश का कहते थे एवं प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल प्रथम के गुरू व राजपुरोहित थे। सामाजिक, धार्मिक, अनुष्ठानों एवं दान दक्षिणा करने वाले ब्राह्मणों को उपाध्याय कहते थे। वैदिक मन्त्रों को गाकर सुनाने वाले को

चारण कहते थे। गुर्जर-प्रतिहार राजा भोजदेव के समय के ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख[clxvi] से ज्ञात होता है कि नगरभट्ट नामक ब्राह्मण आनन्दपुर लाटमण्डल (गुजरात) से ग्वालियर आकर बस गये थे। जिसका पुत्र बेल्लभट्ट प्रतिहार प्रशासन में मर्यादाधुर्य तथा पौत्र अल्ले ग्वालियर किले का कोट्टपाल नियुक्त किया गया था । यह उनके अधिकार, सम्मान को समाज में प्रदर्शित करता है।

**क्षत्रिय-**

आठंवी और बारहवी सदी के मध्य उत्तर भारत में जो राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संकट उत्पन्न हुआ उसने क्षत्रियों के अधिकार एवं कर्त्तव्य दोनों में वृद्धि की। युद्ध के वातावरण में क्षात्र-धर्म प्रासंगिक हो उठता है। युद्ध की निरन्तरता में संलग्न क्षत्रियों के समक्ष जहाँ आसन्न मृत्यु का संकट उपस्थित किया वहीं उनकी सुख-सुविधाओं व विलासिता में विस्तार भी किया। मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा बलात् इस्लाम का प्रचार, जनसाधारण में गहरे भय का संचार किया जा रहा था। ब्राह्मणों के क्षत्रिय समाज में समावेश और युद्धप्रिय विदेशी जातियों का देशी क्षत्रिय समाज में समावेश और युद्धप्रिय विदेशी जातियों का देशी क्षत्रिय वंशो में सम्मिश्रण और वैवाहिक संबंध करने के प्रमाण पाये जाते है। इन आगन्तुक जातियों ने अपना संबंध सूर्य तथा चन्द्र वंश के राजाओं से जोड़कर वैदिक धर्म परपंरा को स्वीकार कर लिया। इसी काल में 861 ई० में ब्रह्मक्षत्र का उल्लेख मिलता है। गुर्जर-प्रतिहार शासक के घटियाला अभिलेख[clxvii] से पता चलता है कि  इस वंश का आदि पुरूष हरिश्चन्द्र ब्राह्मण था। जिसे रोहिल्लादि भी कहते थे। इसने एक ब्राह्मण

स्त्री व दूसरी भद्र नामक क्षत्रिय स्त्री से विवाह किया था। ब्राह्मणों के पुत्र ब्राह्मण और क्षत्रिय स्त्री के पुत्र क्षत्रिय कहलाये। इसकी पुष्टि गुर्जर-प्रतिहार शासक बाउक के जोधपुर अभिलेख से होती है।[clxviii] अभिलेखों से इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि क्षत्रियों की जाति में 5 प्रवर भार्गव, च्यवन, आप्तवन, और्ण और जमदग्नि उल्लखित है। इस प्रकार गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज में क्षत्रियों के कुलों का ही अधिक महत्व था। कहीं किसी स्थान पर कुल को ही गोत्र की संज्ञा दी जाती थी। जैसे- प्रतिहार कुल के स्थान पर प्रतिहार गोत्र का उल्लेख होने लगा था।[clxix] गुर्जर-प्रतिहार शासक भोजदेव की पेहोवा प्रशस्ति (882ई०) में क्षत्रियों के लिए ठाकुर शब्द का प्रयोग किया गया है।[clxx] समाज में ब्राह्मणों के बाद इन्ही का स्थान वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत आता था। स्वयं गुर्जर-प्रतिहार शासको ने स्वयं को राम के भाई लक्ष्मण से जोड़ते हुए इक्ष्वाकु कुल का क्षत्रिय बताया है। अपने राज्य को आन्तरिक व वाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखना, सामाजिक कल्याणकारी कार्यों को सम्पन्न कराना, धर्म सहिष्णु, इत्यादि कार्य एक राजा द्वारा संपादित किये जाते थे। दक्षिण में राष्ट्रकूट शासकों का पूर्व में पाल राजाओं तथा पश्चिम से अरब आक्रान्ताओं से अपने राज्य को दो ढ़ाई सौ साल तक सुरक्षित रखकर उत्तर भारत में अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित कर अपने क्षत्रिय धर्म का वास्तव में परिचय दिया। गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज में राजाओं के अलावा उनके सामन्त तथा सैन्य अधिकारी भी अधिकांशत: क्षत्रिय होते थे। ऊणा अभिलेख में अवनिवर्मन द्वितीय तथा बलवर्मन को महासामन्त की उपाधि मिली थी जो क्षत्रिय वर्ण से संबंधित थे।[clxxi] इस काल में क्षत्रियों द्वारा भी दान दिये जाने

का उल्लेख मिलने लगता है। आहार प्रस्तर अभिलेख में कक्क, पद्मनाभ, मामल्लवर्मन इत्यादि क्षत्रिय जाति के लोगों द्वारा कनक श्री मंदिर के अदरूनी हिस्से के रख रखाव के लिए 10 विशोंपाक प्रतिमाह देने की बात कही गई है।[clxxii] शासक द्वारा धर्म और साहित्य को प्रश्रय देना भी एक कार्य था। प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल ने राजशेखर को संरक्षण दिया। जिसने बालभारत, काव्यमीमांसा, कर्पूर मंजरी इत्यादि की रचना की, जो शासको की रूचि व प्रोत्साहन को प्रदर्शित करता है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में बताया है कि क्षत्रियों का प्रमुख कार्य राज्य का संचालन तथा राष्ट्र की रक्षा था।[clxxiii]

**वैश्य -**

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में तृतीय वर्ण, जो द्विज के अन्तर्गत माना जाता था, वैश्य था। कृषि, पशुपालन एवं व्यापार उनका प्रमुख व्यवसाय था। आल्बरूनी ने लिखा है कि यदि शूद्र और वैश्य वेदोच्चारण करते थे तो उनकी जीभ काट ली जाती थी किन्तु यह कथन सत्य प्रतीत नही होता है। लक्ष्मीधर के अनुसार, जो समाज के बारे में निश्चय ही अधिक ज्ञान रखते थे, वैश्यों को वेद पढ़ने की अनुमति थी।[clxxiv] वैश्यों को वणिक संज्ञा से पुकारा गया है। अधिकांश व्यापार-वाणिज्य से जुड़े थे। तत्कालीन स्रोतो में सौदागरों का उल्लेख मिलता है जो सम्पन्न स्थिति में थे तथा बैलो एवं ऊँटो पर विक्रय करने हेतु सामान लादकर भ्रमण करते थे। सिंहदेव के जूना अभिलेख में 10 ऊँटो और 20 बैलो वाले सौदागर का उल्लेख है।[clxxv] मार्ग में लुटेरो के भय से प्राय: सौदागर बड़ी संख्या में रक्षकों से युक्त होकर समूह में यात्रा करते थे।

स्थल मार्ग के द्वारा सुदूर प्रदेशों में व्यापार के निमित्त जाना होता था और राज्य को कर भी देना पड़ता था। साथ ही समुद्री मार्गसे विदेशो में व्यापार करने वाले धनाढ्य व्यापारी भी अज्ञात नही थे। सियदोणी अभिलेख[clxxvi] से पता चलता है कि वैश्यों का बड़ा समूह औद्योगिक कार्यक्षेत्रों से भी जुड़ा हुआ था जिसमें कुम्भकार, कांस्यकार, स्वर्णकार, ताम्बूलिक, शिलाकूट इत्यादि प्रमुख थे। गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज में वैश्यवर्ण  शासन में भी भागीदार होने लगा था। यद्यपि वे अभी भी किसी महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद के हकदार नहीं थे, किन्तु किसी भी दान के गवाह के रूप में, दान देने वाले के रूप में समाज में उनके अधिकारों व प्रभाव का प्रसार हो रहा था। सियदोणी अभिलेख में ही चीनी बनाने वाले व्यापारी, सूत्रधार, पत्थर काटने वालेव्यापारियों द्वारा नारायण भट्टारक, विष्णुभट्टारक मंदिरो को दुकान, घर, पान के पत्तेइत्यादि दान में दिया गया।[clxxvii] महेन्द्रपाल प्रथम के ताम्रपत्र में तरूणादित्य मंदिर को दान में दिये गये जयपुर गाँव के बारह गवाहों में से 4 व्यापारी वर्ग के थे जो कि अनुमानत: वैश्य वर्ण से ही सम्बन्धित रहे होगें।[clxxviii] भोजदेव का आहार प्रस्तर अभिलेख से पता चलता है कि कलुवा व भद्रप्रकाश नामक स्वर्णकार समुदाय तथा वणिक वर्कटक जाति से सम्बन्धित ये दोनों व्यक्ति भीनमाल से आकर तत्तनन्दपुरा में बस गए थे। जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैश्यों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसना तथा वहीं कोई पेशा जीविकोपार्जन के लिए अपनाना अपने लिए सम्मान प्राप्त करना प्रदर्शित होता है।

आगे चलकर वैश्यों की स्थिति में ह्रास का संकेत भी मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीतिक स्थिरता एवं सामन्तवाद के विकास तथा अर्थव्यवस्था के कृषि और पशुपालन पर आधारित होने के कारण व्यापारिक गतिविधियाँ कुछ मंद पड़ गयी थी परिणामत: साधारण वैश्यों की स्थिति में गिरावट आई। यह उल्लिखित है कि पराशरस्मृति के अनुसार वैश्यों एवं शूद्रों के लिए समान रूप से कृषि, वाणिज्य और शिल्प की संस्तुति की गई है।[clxxix] अलबरूनी ने भी दोनों के समान स्तर की ओर संकेत किया है।[clxxx] विष्णु पुराण का यह कथन भी उल्लेखनीय है कि कलियुग में वैश्य लोग कृषि एवं वाणिज्य का परित्याग करेगें तथा शिल्प एवं श्रम के द्वारा जीविकोपार्जन करेंगे।[clxxxi] आठवीं एवं बारहवीं सदी के मध्य वैश्यों की स्थिति की ओर संकेत करते हुए स्कन्दपुराण[clxxxii] में कहा गया है कि वणिक तैलकार, तन्दुलकार आदि का व्यवसाय करेंगे तथा राजपूतों पर आश्रित रहेंगे। वस्तुत: वणिज्य पर आधृत नगरीय अर्थव्यवस्था के ह्रास तथा कृषि पर आधारित ग्राम्य अर्थव्यवस्था के उदय के कारण व्यापार समान रूप से संकटग्रस्त हुए । ऐसे में वैश्य वर्ग के साधारण जनों की स्थिति शूद्रों के निकट पहुच जाना स्वाभाविक था। अल्बरूनी का यह कथन कि शूद्रों के समान वैश्य भी वेदाध्ययन के अधिकार से वंचित थे, आंशिक रूप से इस ह्रास की ओर ही संकेत करता है। गुर्जर प्रतिहार कालीन सियदोणी अभिलेख में से पंचीयक द्रम्म का उल्लेख हुआ है। जिसे आर०सी० भण्डारकर ने स्थानीय पंचायत द्वारा ढाला गया सिक्का मानते है। इस प्रकार स्थानीय संस्थाए व्यापारियों द्वारा जारी किये

गये सिक्के केन्द्रीय सत्ता के निष्प्रभाव होने और क्षेत्रीय आर्थिक ईकाईयों के अस्तित्व में होने के साक्षी है।[clxxxiii]

**शूद्र –**

गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज में शूद्रों का अन्तिम व चौथा स्थान था। इनके विषय में कहा गया है कि ईश्वर की ओर शूद्रों का एकमात्र कर्त्तव्य द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की सेवा और सुश्रुषा करना है।[clxxxiv] यद्यपि ये सबसे निम्न वर्ण में आते थे अपितु वैश्यो द्वारा व्यापार व वाणिज्य में अधिक रूचि लेने के कारण इनके द्वारा कृषि कार्य किया जाने लगा। अरब लेखक इब्नखुर्दाब[clxxxv] और अलइद्रीसी[clxxxvi]ने शूद्रों को कृषक वर्ग में सम्मिलित किया है। सम्भवत: यह तत्कालीन समाज का बहुत बड़ा परिवर्तन प्रदर्शित होता है। शूद्रो का वर्ण एक अवश्य है किन्तु जातियां अलग-अलग है। इनमें से कुछ ऐसी थी जो कालान्तर में अपने उद्यम और प्रयत्न से द्विजों में भी स्थान प्राप्त कर ली थीं। शूद्रो में श्रमिक, खेतिहर और दस्तकार सभी सम्मिलित थे। कुम्हार, माली, तम्बोली,सिलावट, कलाल ( कलार), तेली और मेहर आदि जातियों का उल्लेखशिलालेखों तथा साहित्य में मिलता है।[clxxxvii] इनके अतिरिक्त सुनार, स्वर्णकार, बढ़ई, तमेर, नाई, गड़रिया, दर्जी, कहार आदि जातियों के भी उल्लेखमिलते है।[clxxxviii]

गुर्जर-प्रतिहार काल में शूद्रों को वेद पढ़ने की अनुमति नहीं थी व उपहार प्राप्त करने का भी पात्र नहीं समझा जाता था। डा० दशरथ शर्मा[clxxxix] ने बृहत्कथाकोष का एक उदाहरण दिया है जिसमें कहा गया है कि कलाल

जातीय के पूर्णभद्र ने शिवमूर्ति ब्राह्मण को निमन्त्रण दिया। अत: शिवमूर्ति ने शूद्रका अन्न् एक दूसरे ब्राह्मण के घर पकवा कर वन में बैठकर ग्रहण किया। कलाल और उनके मित्र जब मदिरा पान करते थे तब ब्राह्मण लोग दूध में गुड मिलाकर पीते थे। फिर भी ब्राह्मण समाज में शिवमूर्ति को मदिरा के सन्देह में जाति से बहिष्कृत कर दिया। दूसरे तरफ गुर्जर-प्रतिहारो के अभिलेखों में कहीं भी शूद्रों का वर्णन नहीं मिलता है। अपितु ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख में वेल्लभट्ट नामक ब्राह्मण मर्यादाधुर्य नामक प्रशासनिक अधिकारी व व्याकरण का प्रकांड विद्वान है। उसके द्वारा छोटे या नीच मनुष्यों से कोई भी मैत्री संबंध नहीं रखने का उल्लेख मिलता है।[cxc] जो सम्भवत: यह दर्शाता है कि शूद्रो को ज्यादा अधिकार प्राप्त नहीं थे। अन्य दृष्टिकोण से शूद्रों द्वारा कृषि कर्म में संलग्न होना उनकी अवस्था में थोड़ा सुधार दर्शाता है। किसान शूद्र अपने युग के वैश्य बन बैठे। इसमें कोई आश्चर्य नही कि जैन तथा शैव धर्मो में उनका स्वागत हुआ मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार मेधातिथि को नवीं शदी ई० में लिखना पड़ा कि शूद्र भी सम्पत्ति के स्वामी हो सकते है और वे चाहें तो अन्य तीन वर्णो की सेवा न करें।[cxci]

इस प्रकार इस काल में वर्ण व्यवस्था प्राचीन समाज की तरह ही थी, किन्तुउनके कार्य और आचार व्यवहार में भिन्नता भी आई फिर भी उनका मूल रूप सदियों से प्रचलित धारा पर ही आधारित था।

**कायस्थ-**

सामाजिक व्यवस्था में एक विशेष महत्त्वपूर्ण था चातुर्वर्ण व्यवस्था से बाहर एक नये जाति-समूह का उद्धव है जिसे कायस्थ नाम से जाना जाता है।

पृथक जाति के रूप में स्थापित हुए कायस्थों का व्यवसाय लेखन से जुड़ा हुआ था। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का कथन है कि कायस्थ ब्राह्मण-क्षत्रियों की सन्तान है। निवास स्थान के आधार पर कायस्थों में भी अनेक उपजातियां तथा शाखायें बन गई थी। बंगाल के गौड़ कायस्थों का उल्लेख अधिक मिलता है जो प्रशस्ति लिखने में दक्ष थे और सुन्दर अक्षर लिखने के कारण मध्य प्रदेश और राजपूताना में निमंत्रित किये जाते थे।[cxcii]दामोदरपुर ताम्रपत्र में प्रथम कायस्थ अथवा ज्येष्ठ कायस्थ का एक सन्दर्भ है जिसे आर० डी० बैनर्जी ने प्रधान लिपिक माना है।[cxciii] बाद में कायस्थों की कई उपजातियां प्राप्त होती है जिनमें नैगम, गौड़, माथुर कुलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक वर्ग श्रीवास्तवोंका था जो संभवत: श्रावस्ती से जुड़े हुए थे। ये अपनी योग्यता के कारण उच्च पदों पर भी नियुक्त हुए। समाज में भी अपने ऊँचे स्थान के कारण प्राय: ठक्कुर की उपाधि धारण करते थे।

**अन्त्यज**

निम्नस्तर के कार्य करने के कारण कुछ जातियं नगर के बाहर रहती थी। इन जातियों में भिल्ल, डोम्ब, सौकरिक, मत्स्यबंधक या मछुवाहे, रजक (धोबी),चर्मकार (चमार), शाकुनिक (बहेलिया) आदि का उल्लेख मिलता है।[cxciv] इनकेनिम्न स्तरीय जीवन दरिद्रता तथा सामाजिकहीनता का संकेत उपमितिभवप्रपंचकथा[cxcv] तथा जिनेश्वर कृत कथाकोषप्रकरण[cxcvi] में मिलता है। इनमें से कुछ जातियां संगठित होकर रहती थी। कुछ की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। जिनेश्वर ने ऐसी जातियों को अधमाधम कहा है। शहर के बाहर रहने वाली इन जातियों को नगर में प्रवेश करने पर बांस का डण्डा पीटते

चलना पड़ता था। ऐसा प्रतीत होता है कि छुआछुत की भावना में वृद्धि के कारण इस युग में अन्त्यजो की संख्या में विस्तार हुआ। अन्त्यजो में अधिकतर अपने घृणास्पद आचरण तथा खानपान के कारण समाज से दूर रखे जाते थे कुछ गोमांस भक्षी एवं श्वान मांस भक्षी भी थे। चाण्डाल आदि अत्यज सड़को, नालियो की सफाई का कार्य करते थे। अन्त्यजों में चण्डाल प्रमुख थे। ये नगर के बाहर रहते थे नगर प्रवेश करते समय लकड़ी बजाते हुए चलते थे। जिससे लोग स्पर्श से बच सके। सम्भवत: इनका एक पेशा राजदण्ड पाये अपराधियों का वध करना भी था।

## मिश्रित जातियां

अल्बरूनी ने मिश्रित जातियों का वर्णन किया है जिसमें मुख्यत: अम्बष्ठ,मागध, निषाद, आर्धिक, श्रेष्ठिन् इत्यादि थी।[cxcvii]बृहद्धर्मपुराण के अनुसारअब्राह्मण जनसंख्या जो निम्न व्यवसाय से संबंधित थी इन्हीं जातियों मेंवर्णित थी। समाज में इन्हे शूद्र के समान समझा जाता था। इनका वर्गीकरणउत्तम, मध्यम एवं अधम के रूप में किया गया था।[cxcviii]

## विदेशी जातियाँ

गुर्जर-प्रतिहार काल में अनेक ऐसी आदिवासी तथा विदेशी जातियां भी थी जो चार्तुवर्ण व्यवस्था से सर्वथा असम्पृक्त थी। शकों, यवनों तथा हूणों में कुछतो ऐसे रहे होगें जो क्षत्रिय वर्ण में समाविष्ट न हो सके हो किन्तु शबर,किरात, ओड्र, खस, पुलिन्द, भिल्ल भी आर्य संस्कृति के उपासक न होने के कारण म्लेच्छ ही कहे जाते थे। इनका संगठन तथा जीवन पद्धति अपनी

प्रकार का था। ये जातियां अधिकाशंत: पहाड़ी क्षेत्रों अथवा वन प्रदेशों में निवास करती थी सम्भवत: आर्यों के आगमन के पश्चात् इन्होंने अपना निवास पर्वतीय दुर्गम स्थलों तथा जंगलों को ही बना लिया और लूटमार से अपनी आजीविका चलाने लगे। आर्य इन्हें अधर्मी मानते थे। इनके उपद्रवों व लूटमार के कारण व्यापार में बाधा पहुंचती थी। कभी-कभी ये व्यापारियों या किसी मनुष्य को बन्दी बना लेते थे तथा बदले में फिरौती मिलने पर ही मुक्त किया जाता है।[cxcix]ये म्लेच्छ, क्षत्रियों से लड़ते थे और कहीं-कहीं राजपूतों तथा ब्राह्मणों को पराभूत भी कर देते थे। धार्मिक अनुष्ठान के रूप में ये जातियां पशुबलि देती थी। इनकी मुख्य देवी दुर्गा याचण्डिका थी सम्भवत: विन्ध्यवासिनी देवी की पूजा मूल रूप से इनआदिवासी जातियों द्वारा किया जाता रहा होगा। कुछ आदिवासी लोग नट,नर्तक एवं वैद्य के रूप में काम करके जीविकोपार्जन करते थे, किन्तु अधिकांश आखेटक थे।

उपर्युक्त विभिन्न वर्णो की अपनी-अपनी जातियों में उपजातियों विकसित हो गयी थी जो उनके व्यवसाय से जुड़ी हुई थी। जातियों का उपजातियों में विभाजन सामाजिक विघटन को भी प्रदर्शित करता है चाहे इसका कारण अन्तर्जातिय वैवाहिक संबंध हो अथवा उनसे उत्पन्न वर्णसंकर सन्तानें। अपितु इस बात को भी असिद्ध नहीं किया जा सकता है कि ये जातियां और उपजातियां तत्कालीन समाज के मुख्य धारा से स्वयं को निरन्तर संलग्न की रही जो कि गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज व संस्कृति की प्रमुख विशेषता है।

**सामाजिक संस्थाएँ**

**आश्रम व्यवस्था**

वर्ण के ही समान समाजशास्त्रियों ने मनुष्य के जीवन को चार वर्गों में विभाजित कर उनके अलग-अलग कर्तव्य तथा कर्म निर्धारित किए। जीवन के इस विभाजन को उन्होंने आश्रम नाम दिए है। आश्रम शब्द की उत्पत्ति श्रम धातु से है। जिसका अर्थ है परिश्रम या प्रयास करना। प्रत्येक आश्रम जीवन की एक अवस्था है। जिसमें रहकर व्यक्ति एक निश्चित अवधि तक प्रशिक्षण प्राप्त करता है। गुर्जर राजा जयभट्ट के अनुदान पत्र में आश्रम व्यवस्था का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि इन्होंने चार जातियों (वर्ण) और चरणों (आश्रम जीवन) के उचित प्रबंधन द्वारा कलियुग के सभी अहंकार को नष्ट कर दिया था।[cc]महाभारत में वेद-व्यास ने चारों आश्रमों को ब्रह्मलोक पहुँचने के मार्ग में चार सोपान परिलक्षित किया है।[cci] भारतीय विचारकों ने चतुराश्रम व्यवस्था के माध्यम से प्रवृत्ति तथा निवृत्ति के आदर्शों में समन्वय स्थापित किया है।

गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज में भी प्राचीन काल की तरह चारों आश्रमों का उल्लेख मिलता है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में यह लिखा है कि पूर्व एवं पश्चिमी सागर तथा हिमालय एवं विन्ध्याचल के बीच का भाग आर्यावर्त था जहाँ पर चार वर्ण और चार आश्रम विद्यमान थे। वर्णाश्रम धर्म के आधार पर ही वहाँ सदाचार प्रचलित थे।[ccii] उनके विभिन्न ग्रन्थों में चारो आश्रमों का ब्रह्मचर्य[cciii], गृहस्थ[cciv] वानप्रस्थ[ccv] और संन्यास[ccvi] का अलग-अलग उल्लेख मिलता है।

यद्यपि गुर्जर-प्रतिहारों के अभिलेखों में हमें इन चारों आश्रमों का उनके नाम के साथ उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु इन आश्रमों में किए गए क्रिया-कलापों के उल्लेख से तत्कालीन समाज में इसकी उपस्थिति पता चलती है। जिसकी व्याख्या हम प्रत्येक आश्रमों के वर्णन के साथ करेंगे जो निम्नवत् है।

**ब्रह्मचर्य आश्रम**

यह जीवन की प्रथम अवस्था है जिसका अर्थ है- "ब्रह्म के मार्ग पर चलना"। यह विद्याध्ययन का काल है। जिसका प्रारम्भ उपनयन संस्कारसे होता है। राजशेखर के काव्यमीमांसा से यह संकेत मिलता है कि उपनयन संस्कार के पश्चात् शिष्य गुरू के यहाँ जाता था और गुरू का पैर पकड़कर आर्शीवाद लेता था।[ccvii] यहीं से ब्रह्मचर्याश्रम का प्रारम्भिक चरण आरम्भ होता है। गुर्जर-प्रतिहार राजा भोजदेव के समय के दौलतपुर अभिलेख में ऋग्वैदिक ब्राम्हण विद्यार्थी हर्षुका भट्ट, वासुदेव भट्ट को अग्रहार भूमिदान में देने का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार राजा महिपाल के समय के हड्डाला अभिलेख[ccviii] में महेश्वराचार्य नामक ब्राम्हण विद्यार्थी का उल्लेख मिलता है। जो कि ब्रह्मचर्य आश्रम के तत्कालीन समाज में विद्यमान होने का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

**गृहस्थ आश्रम**

जब ब्रह्मचारी विद्याध्ययन समाप्त कर लेता था तो वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। गृहस्थाश्रम को सभी आश्रमों का स्रोत बताया गया है। इसी आश्रम में रहकर मनुष्य त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थएवं काम का एक साथ

उपयोग करते हुए मोक्ष प्राप्ति के योग्य बनता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि जिस प्रकार सभी प्राणी वायु के सहारे जीवित रहते है, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थाश्रम के सहारे जीवन प्राप्त करते है।[ccix] तीनों आश्रमों का भार वहन करने के कारण यह श्रेष्ठ है। मनुष्य का विवाह संस्कार के साथ गृहस्थाश्रम में पदार्पण होता था तत्पश्चात्, संतानोपत्ति, धर्म के अनुकूल आचरण करना, अतिथि सेवा इत्यादि गृहस्थ के प्रमुख कर्तव्य थे। ग्वालियर प्रशस्ति[ccx] में राजा भोज द्वारा अपनी रानी या पत्नी के लिए विष्णु मंदिर का निर्माण करने का उल्लेख मिलता है। संभवतः प्रतिहारों द्वारा भी विवाह तथा अन्य गृहस्थाश्रम सम्बन्धित कर्म अपनाए जाते थे।

**वानप्रस्थ आश्रम**

वानप्रस्थी का जीवन शरीर के कष्ट का था जिससे स्वर्ग की प्राप्ति होती थी। राजशेखर ने बालरामायण में बताया है कि वानप्रस्थी लोग वन में जाते समय वलकल वस्त्र धारण करते थे तथा अपनी जटा को बढ़ाते थे, वे लोग पेड़ों की छाल को पहनते थे, मृगचर्म की शैय्या पर सोते थे, सघन पत्तों वाली गुफाओं में उनके गृह होते थे तथा कन्दमूल फल-फूल आदि का भोजन करते थे।[ccxi]

गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में राजाओं द्वारा वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने की चर्चा मिलती है। बाउक के जोधपुर अभिलेख में उल्लेख मिलता है किगुर्जर-प्रतिहार नरेश संसार को चंचल तथा नाशवान समझकर छोटे भ्राता भोज को अपना राज्य सौपकर स्वयं पवित्र जीवन यापन करने और सत्यधर्म

तथा कर्मकाण्ड का अभ्यास करने हेतु सुन्दर नदियों और झीलों से युक्त माण्डव्याश्रम को गमन किया।[ccxii] बैजनाथपुरी ने इसी राजवंश के नरेश शिलूक के पुत्र झोटा के सम्बन्ध में लिखा है कि वह भागीरथी पर गया था। उसका पुत्र भिलाद्वार भी गंगाद्वार पर तप करने के लिये गया था और उसने वहाँ तप और व्रत करते हुए प्राणोत्सर्ग किया था।[ccxiii]

**संन्यास आश्रम**

जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति के लिए संन्यास आश्रम सर्वथा महत्वपूर्ण मार्ग था। इस आश्रम में व्यक्ति पूर्णरूपेण निर्लिप्त होकर मोक्ष प्राप्ति में लीन हो जाता था और मूल आत्मा को ब्रह्म की ओर लगाता था। संन्यास आश्रम का मूल उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति थी। संन्यासी का जीवन समस्त रागद्वेष और मोहमाया से विरक्त, पूर्णतया एकांकी का था। विरक्त राजशेखर ने संन्यासियों का वर्णन करते हुए बताया है कि ये देश में दूर-दूर तक भ्रमण करते हुए लोगों को धर्मोपदेश देते थे, किन्तु वर्षा ऋतु में यह कार्य समाप्त कर देते थे।लेकिन प्रतिहारों के किसी भी अभिलेख में हमें संन्यासियों का कोई उदाहरण नहीं प्राप्त होता है।

**संस्कार**

हिन्दू समाज में मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए संस्कार की व्यवस्था की गयी थी। संस्कारों की महत्ता पर राजशेखर ने प्रकाश डालते हुए कहा है कि सभी गुणों का उत्कर्ष संस्कारों द्वारा होता है।[ccxiv] तथा इसके सम्पन्नता के कारण ही पवित्रता की प्राप्ति होती है। ऐसी मान्यता है कि मनुष्य जन्म से असभ्य होता है, किन्तु संस्कारों के माध्यम से वह सुसंस्कृत हो जाता

है। संस्कारों से मनुष्य में अर्न्तनिहित शक्तियों का पूर्ण विकास हो पाता है, तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। इस प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व की सर्वागीण उन्नति के लिए भारतीय संस्कृति में संस्कारों का विधान प्रस्तुत किया गया है।

स्मृतियों में इनकी 16संख्या बताई गई है। आज यही सर्वप्रचलित है। ये संस्कार निम्नवत् है- गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णभेद, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ केशान्त, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि।

यद्यपि प्रत्यक्ष तौर पर हमें प्रतिहारों के अभिलेख में इस संस्कारों का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु पत्नी (विवाह संस्कार के बाद ही संभव) विद्यार्थी (उपनयन के बाद) इत्यादि के उल्लेख से यह पता चलता है कि प्रतिहार कालीन समाज में लोगों द्वारा उपर्युक्त सभी संस्कार पूर्ण किए जाते रहे होंगे।

**विवाह**

तत्कालीन समाज में विवाह का प्रचलन था। राजशेखर ने अपने ग्रथों में इस पर भरपूर प्रकाश डाला है। उनके सम्पूर्ण ग्रन्थों में विवाह योग्य कुमारी कन्याओं को 'बाला' शब्द से अभिहित किया गया है। इनके विवाह की उम्र 16 वर्ष मानी जाती थी, क्योंकि इससे कम उम्र में कन्या का विवाह अपराध समझा जाता था। विद्धशालभंजिका में पाणिग्रहण का उल्लेख है।[ccxv] वैवाहिक कार्यक्रम शुभ मुहूर्त में सम्पन्न होता था।

तत्कालीन समाज में यद्यपि ब्रम्ह व दैव विवाह का प्रचलन था और सामान्यतः लोग एक विवाह ही करते थे तथापि एकाधिक पत्नियों के होने से लोग अपरिचित नहीं थे। संभवतः ये धनाढ्य या उच्चवर्ग द्वारा ही होता था। समाज में अनुलोम विवाह की प्रथा रही होगी क्योंकि राजशेखर स्वयं ब्राम्हण थे परन्तु उन्होंने चाहमानवंशीय क्षत्रिय कन्या अवन्ति सुन्दरी से विवाह किया था।

## पुरूषार्थ

हिन्दू शास्त्रकारों ने मनुष्य तथा समाज के उन्नति के निमित्त जिन आदर्शों का विधान प्रस्तुत किया है, उन्हें पुरूषार्थ की संज्ञा दी जाती है। पुरूषार्थ चार है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। अर्थ व काम भौतिक सुखों के प्रतिनिधित्व करते है जबकि धर्म तथा मोक्ष आध्यात्मिक सुखों का प्रतिनिधित्व। मोक्ष मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। परन्तु मोक्ष की प्राप्ति सभी के लिए सम्भव नहीं है। अतः कालान्तर में तीन पुरूषार्थ धर्म, अर्थ तथा काम के पालन पर ही बल दिया गया। इन्हें त्रिवर्ग कहा गया जिनकी प्राप्ति सभी मनुष्यों के लिए सरल है।

## स्त्रियों की स्थिति

प्रतिहारकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति उच्च और परिष्कृत थी। समाज में उनका मान और आदर था। प्रतिहार कालीन अभिलेखों का अध्ययन करने पर हमें स्त्री के सभी रूप (देवी, माता, पत्नी, पुत्री) का उल्लेख मिलता है। जिसका वर्णन निम्नवत् है।

देवी के रूप में

1. कनक श्री देवी
2. कंचन श्री देवी
3. गंधा देवी
4. सर्वमंगला देवी
5. नन्दभगवती देवी
6. मैत्रिका (कार्तिकेय के साथ उल्लेखित)
7. वट यक्षिणी देवी

**माता के रूप में**

1. भट्टिनी महादेवी
2. इयाता

**पत्नी के रूप में राजपरिवार से सम्बन्धित :**

1. भूयिका देवी (पत्नी शक्ति देव)
2. सुन्दरी देवी (पत्नी वत्सराज)
3. इस्तादेवी (पत्नी नागभट्टदेव)
4. अप्पादेवी ( पत्नी-रामभद्रदेव)
5. चन्द्रभट्टारिकादेवी ( पत्नी-देव मिहिर भोज)
6. महादेवी (महेन्द्रपाल)

7. प्रशाधना देवी (विनायक पाल)

8. रानी जयावली (प्रतिहारों के स्वगोत्र श्री जज्जक की पत्नी)

**सामन्त की पत्नी के रूप में**

- जज्जा (पत्नी मर्यादाधुर्य,महासामन्त वेल्लभट्ट)

**जन साधारण की पत्नी के रूप में**

- लाच्छिका (पत्नी क्षत्रिय देनका)
- सम्पत (पत्नी क्षत्रिय माधव)

**पुत्री के रूप में**

- गोगा (पुत्री भट्ट) .
- गौरी (पुत्री महादेवा)
- शिला (पुत्री गोवर्धन)
- इस्ता (पुत्री नम्रका)

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि गुर्जर-प्रतिहार कालीन नारी के सभी रूप तत्कालीन समाज में विद्यमान थे। अब नारी के अधिकारों में भी वृद्धि हो रही थी अब वे प्राचीन काल की तरह संकीर्ण विचारधाराओं से घिरी हुई नहीं थी। ऊपर लिखित विवरणों को देखते हुए कुछ सामान्य तथ्य उभर कर सामने आते है।

1. प्राचीन काल की तरह इस काल में मनुष्य अपनी सुरक्षा व सुख समृद्धि के लिए मातृ देवी या लोक देवी पर ही आश्रित था। उपर वर्णित देवियों की संख्या से यह तथ्य प्रमाणित होता है।

2. गुर्जर-प्रतिहारकालीन समाज में भी माता के साथ बड़े प्रेम और श्रद्धा का व्यवहार किया जाता था। आहार प्रस्तर[ccxvi] अभिलेख में भट्टिनी महादेवी तथा इयाता नाम की दोनों माताओं से स्वर्णिक महाजन द्वारा अवारी खरीदने तथागोष्ठि को बेचकर कनक श्री मंदिर को दान में देने के लेख से उनके महत्व का पता चलता है।

3. यद्यपि पत्नी के रूप में पहले भी स्त्रियों को सम्मानजनक माना जाता था लेकिन अब उनका उल्लेख राजा या जनसाधारण की पत्नी के रूप में अभिलेखों में उल्लेखित कर तथा उनकी धार्मिक कीर्ति में बढ़ोत्तरी करने के लिए दान देनाया मंदिर का निर्माण करना, साथ ही उनके लिए भद्र व गुणी स्त्री का उद्बोधन संभवतः उस काल में पत्नी धर्म या एक पत्नी धर्म का बहुत ईमानदारी से पालन किये जाने को दर्शाता है। यद्यपि प्राचीन काल की तरह गुर्जर-प्रतिहार काल में भी वेश्यावृत्ति अपनाने वाली स्त्रियों का एक वर्ग था। राजेशखर ने वेश्या, गणिका, अभिसारिका आदि शब्दों का प्रयोग किया है।[ccxvii] शायद इन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान नहीं प्राप्त था।

4. वव्वा नामक स्त्री के आध्यात्मिक कीर्ति में वृद्धि के लिए अनेक स्त्रियों जिनके साथ उनके पिता के नाम का उल्लेख है जिनके द्वारा विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया जा रहा है। यह तत्कालीन समाज में स्त्रियों

की धार्मिक स्वंतत्रता, साथ ही अपने पिता, पुत्र व पति के सम्पत्ति में उनके अधिकार को वर्णित करता है।

यद्यपि ये स्थिति उच्च वर्ण (ब्राम्हण, क्षत्रिय) के साथ थी लेकिन अन्य वर्ग की स्त्रियों की भी स्थिति ज्यादा खराब नहीं रही होगी।

गुर्जर-प्रतिहारकालीन समाज में भी सती का प्रचलन था। घटियाला अभिलेख[ccxviii] से यह ज्ञात होता है कि राजपूत सामंत राणुक की पत्नी सांवलदेवी सती हुई थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि सती प्रथा का प्रचलन मुख्य रूप से राजपरिवारों तथा कुलीन वर्गों में अधिक था। साधारण जनता में इसका व्यवहार कम था। सती होना विधवा की इच्छापर निर्भर करता था कि वह सती हो या आजन्म ब्रह्मचर्य काजीवन-यापन करें।

**आभूषण**

तत्कालीन समाज में पुरूषों एवं स्त्रियों को सोने, चाँदी से सुसज्जित होने का विधान था। अलंकरण के अन्तर्गत दो प्रकार की सामग्रियाँ प्रमुख थी। प्रथम सोने चाँदी से निर्मित दूसरी प्राकृतिक उपादानों से निर्मित।

प्रतिहारों के अभिलेखों में स्वर्णकार, महाजन जैसे शब्दों से उस काल में सोने चांदी के आभूषणों के होने की पुष्टि होती है। राजशेखर ने भी अपने ग्रन्थों में सोने चाँदी के भिन्न-भिन्न प्रकार के आभूषणों का वर्णन किया है। जैसे माथे का अलंकरण शिखर या मांग टीका, गले में धारण किये जाने वाला माला, कान में कुण्डल, नर-नारी की कलाइयों को शोभित करने वाले

अलंकरण में वलय (कंगन) कांचीलता (करधनी) कमर में" पैरों में मधुर शब्द नुपुर युक्त पायल आदि ।

प्राकृतिक उपादानों से बने तथा श्रृंगार में पुष्प का स्थान प्रमुख था, जन साधारण की सौन्दर्य रचना में इसका प्रमुखता से उपयोग होता था। इसके बिना कोई उत्सव सम्पन्न नहीं हो सकता था और सभी अवसरों की सज्जा-सामग्रीयों में इसका प्रमुख स्थान था। नर-नारी सभी इसका उपयोग करते थे। इसमें सर्वप्रथम फूलों की माला थी जिसका अधिकाधिक प्रयोग सुन्दरियों के केश-पाश को अलंकृत करने में किया जाता था। विद्धशालभंजिका में सिर पर धारण करने वाली नीलकमलों से बनी माला का वर्णन है।[ccxix]

## वेशभूषा

प्रतिहारकालीन समाज की वेश-भूषा पर यद्यपि उनके अभिलेखों में कोई प्रकाश नहीं पड़ता, किन्तु राजशेखर के ग्रन्थो में वेशभूषा का वर्णन किया गया है। कर्पूरमंजरी में माथे के वस्त्रों के प्रति शीर्षकर्म कहा गया है।[ccxx] यह पगड़ी की भाति धारण किया जाता था। कर्पूरमंजरी में बालाओं द्वारा चोली पहनने का उल्लेख मिलता है।[ccxxi] यह मुख्यतः उच्च वर्गीयस्त्रियों में ही प्रचलित था। उत्तरीय एक प्रकार का कन्धे से नीचे लटकता वस्त्र था जिसकी समता वर्तमान दुपट्टे से की जा सकती है। राजशेखर ने कमर (मेखला) से नीचे वाले अंगों में पहने जाने वाले वस्त्रों को शाटिका अन्तरीय कहा जाता था। नींवी का अर्थ रस्सी से लगाया जाता है। जो घाघरे बाँधने में प्रयुक्त होती थी। साड़ी रेशमी एवं बहुरंगी दोनों प्रकार की थी ऊनी वस्त्रों का भी यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है।

**मनोरंजन के साधन**

तत्कालीन समाज में मनोरंजन भौतिक जीवन का प्रमुख अंग था। व्यक्ति के जीवन के लिए यह अत्यन्त उपयोगी होता था। समाज के विभिन्न वर्गों में मनोरंजन भिन्न-भिन्न ढंग के थे। इसके लिए अनेक साधन प्रयोग में लाये जाते थे। बी०एन०पुरी ने राजशेखर के ग्रन्थों के आधार पर मनोरंजन के साधनों में तत्कालीन समाज में प्रचलित नृत्य, संगीत, तैराकी, मुकाभिनय आदि का उल्लेख किया है।[ccxxii] प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल प्रथम के समय के ऊणा अभिलेख[ccxxiii] में अवनिवर्मन द्वितीय नामक महासामन्त ने यक्षदशा नामक राजा को पराजित कर सागर शोभा नामक तुरया (वाद्ययन्त्र) प्राप्त किया था। संभवतः यह उस समय मनोरंजन के लिए प्रचलित कोई वाद्ययन्त्र रहा होगा, जो शायद प्रतिष्ठा से भी सम्बन्धित रहा होगा।

गुर्जर-प्रतिहारकालीन समाज में नृत्य मनोरंजन का प्रमुख साधन था। राजशेखर ने आरभटी, चर्चरी एवं नटी जैसे नृत्यों का उल्लेख किया। कर्पूरमंजरी में इन नृत्यों का उल्लेख है।[ccxxiv]नृत्य मुख्यतः स्त्रियों द्वारा ही सम्पन्न होता था।

नर्तन के अतिरिक्त नाटक का भी आयोजन किया जाता था। पुरूष और स्त्री दोनों ही नाटक में भाग लेते थे राजशेखर के ग्रन्थ कर्पूरमंजरी और विद्धशालभंजिका नाट्य कृतियाँ ही है। विवाह, बसन्तागमन के उत्सव पर अभिनय होता था।

आखेट भी मनोरंजन का एक साधन था। हरिण, वनशूकरों के माँस का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय आखेट की प्रथा प्रचलित थी।

मनोरंजन के अन्य साधनों में गोष्ठी का भी पर्याप्त महत्व था। गोष्ठियाँ राजदरबारों तथा सार्वजनिक स्थानों में आयोजित की जाती थी। सार्वजनिक स्थानों में सम्पन्न गोष्ठी में सभी वर्गों के लोग सम्मिलित होते थे।

इस प्रकार प्रतिहारकालीन समाज छोटी-छोटी विभिन्न ईकाइयों में तो विभाजित हो रहा था किन्तु उसका मूल आधार प्राचीन समाज की ही तरह था, जिसमें सभी भौतिक सुविधाएँ तथा मौलिक अधिकार उच्च वर्ण तक ही सीमित थे। निम्न वर्ग आज भी उन सुविधाओं का लाभपाने से वंचित था।

**समाज का मुस्लिम वर्ग**

गुर्जर-प्रतिहार कालीन भारत के सामाजिक जीवन में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनमुसलमानों के कारण आया। आठवीं सदी के प्रारम्भिक काल में भारत पर अरबोंके आक्रमण शुरू हुए थे, और सिन्ध का प्रदेश उनकी अधीनता में आ गयाथा। उस समय कपिशा और गान्धार भारत के ही अन्यतम प्रदेश थे। अरबों नेउन्हें भी आक्रान्त किया था, और चिरकाल के निरन्तर संघर्ष के पश्चात् उन्हेंभी अपने आधिपत्य में ले जाने में वे समर्थ हो गए थे। दसवीं सदी के अन्तमें तुर्कों ने भारत पर आक्रमण प्रारम्भ किए और तुर्क सुल्तान महमूद गजनवीविजय-यात्राएँ करता हुआ दूर-दूर तक चला गया। यद्यपि अरबों के

समानवह् भी भारत को जीत सकने में विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सका पर पंजाब का बड़ा क्षेत्र अब मुस्लिम तुर्कों की अधीनता में आ गया।

विदेशी आक्रमण भारत के लिए नई बात नहीं थी। चौथी सदी ई० पू० में यवनराज सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था, दूसरी सदी ईस्वीपूर्व से चौथी-पाँचवी सदी ईस्वी पश्चात् तक यवन, शक, पह्लव, कुषाण औरहूण सदृश कितनी ही विदेशी जातियाँ भारत को आक्रान्त करती रही थीं। ये विदेशी आक्रान्ता भारत में अपने शक्तिशाली राज्य स्थापित करने में समर्थ भी हुए थे। राजनीतिक दृष्टि से सफलता प्राप्त करके भी ये विदेशी जातियाँ धर्मऔर संस्कृति के क्षेत्र में भारतीयों द्वारा परास्त कर दी गई थीं। यवन, शक,कुषाण और हूण आदि आक्रान्ताओं ने भारत में आकर भरतीय धर्म, भाषा और संस्कृति को अपना लिया था, वे पूर्णतया भारतीय समाज मेंघुलमिल गई थीं। विदेशी आक्रमणों के युग की इस प्रवृत्ति का पुराणों में बड़े सुन्दर रूप से वर्णन किया गया है। शक, यवन आदि जातियों का परिगणनकर पुराणकार ने भक्ति के आवेश में आकर यह कहा है कि ये और अन्य जोभी पाप या पापयोनि जातियाँ हैं, वे सब जिस प्रभुविष्णु के सम्पर्क में आकर शुद्ध हो जाती है, उस विष्णु को नमस्कार हो (ये केऽपि चान्ये खलु पापयोनयः शुद्धयन्ति तस्मै प्रभविष्णुवे नमः)। वैष्णव, शैव आदि भारतीय धर्मों की यह पावनी शक्ति गुप्त युग में हूणों के आक्रमण तक कायम रही थी, पर मुस्लिमधर्म के अनुयायी अरबों और तुर्क-अफगानों के भारत में प्रवेश के समय यहशक्ति क्षीण हो चुकी

थी। इसी कारण अरब, तुर्क और अफगान आक्रान्ताओंको आत्मसात् कर हिन्दू समाज का अंग बना सकने में उस समय के भारतीयअसमर्थ रहे, और भारत के समाज में मुसलमानों का एक पृथक् वर्ग बनगया।

पूर्व-मध्य युग में मुसलमानों के कारण भारत के सामाजिक जीवन पर कोई विशेष प्रभाव पड़ा था, यह स्वीकार कर सकना सम्भव नहीं है। भारत काबहुत बड़ा क्षेत्र मुस्लिम आक्रमणों से सर्वथा अछूता रहा था, क्योंकि उत्तरभारत में तुर्क-अफगानों के शासन की नींव तेरहवीं सदी के प्रारम्भिक भाग में हीपड़ी थी। सिन्ध इस युग के बड़े भाग में अवश्य अरबों की अधीनता में रहा था और वहाँ के निवासियों का एक अच्छा बड़ा भाग इस्लाम को अपना लेने के लिए विवश भी किया गया था। सिन्ध के मुसलमान दो वर्गों में विभक्त थे, प्रथम वे अरब जिन्होंने शस्त्रशक्ति द्वारा इस प्रदेश की विजय की थी और दूसरे वे भारतीय जो इस्लाम के अनुयायी हो गए थे। अरबों के शासन में सिन्ध में बहुत-सी मस्जिदों का निर्माण हुआ और अनेक मन्दिरों को भी मस्जिदों के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। अफगानिस्तान से पंजाब तकतुर्क शासन स्थापित हो जाने का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ, कि पश्चिमी देशों के मुस्लिम विद्वानों और महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों के लिए भारतआने-जाने का मार्ग निष्कटंक हो गया और ईरान, मध्य एशिया तथा खुरासान आदि से बहुत से मुसलमान परिवार पंजाब में आ बसने के लिए प्रवृत्त हुए। इनमें अनेक ऐसे पीर व सन्त भी थे, जो इस्लाम के प्रचार के

लिएउन प्रदेशों में भी जाने लगे जहाँ अभी तुर्कों का राज्य नहीं था। इस प्रकार भारत में इस्लाम के प्रसार का सूत्रपात गुर्जर-प्रतिहार काल में ही हो गया था।

# गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित अर्थव्यवस्था

प्राचीन काल से समाज का उत्कर्ष मनुष्य के जीवन की सम्पन्नता, समुन्नति और सुख सुविधा पर निर्भर करता है। अर्थ को धर्म और काम का स्रोत कहा गया है। अर्थ की अवधारणा उपयोगितावादी और व्यावहारिक है। समाज में धर्म और संस्कृति की कार्यप्रणाली व्यवस्थित ढंग से कार्यरत होने के लिए अर्थ की प्रकृति को नियमित करना आवश्यक है। प्रतिहार राजाओं का शासनकाल धन धान्य से पूर्ण था। प्रतिहारों के सामन्त चाहमान, गुजरात के पूर्ववर्ती चालुक्य, चन्देल, कलचुरि, गहड़वाल, चेदि तथा गुहिलोत न केवल राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अपितु आर्थिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यह आर्थिक सम्पन्नता इस शासकों को अपने पूर्वजों से विरासत में मिली थी। गुर्जर-प्रतिहारकालीन अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार निम्नलिखित थे-

## कृषि

गुर्जर-प्रतिहार शासन काल में कृषि और कृषकों की स्थिति काफी सुदृढ़ थी। कृषकों की सम्पन्नता का वर्णन राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में किया है। शरद ऋतु का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि इस ऋतु में खेती से काटकर लाये गये नवीन शालि (धान) के कणों के सुगंध से सुरभित ग्रामीण घरों के आँगन इन दिनों आनन्द के आगार बन जाते है, क्योंकि नवीन धानों को कूटती हुयी ग्राम वधुओं के हस्त कंकण, मूसल चलाने के कारण मनोहर शब्द करते

रहते है।[ccxxv] इससे धान की अच्छी खेती होना, कृषक परिवारों में श्रम की गरिमा और हाथों में स्वर्ण ककंण के होने से सुखी एवं सम्पन्न होना जैसी बातें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इस काल में कृषि ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रो को समान रूप से आकर्षित किया। चूंकि शुद्र श्रमिक वर्ग के थे अत: उनकी माली हालत और उच्च वर्ग के साथ उनके आर्थिक और सामाजिक संबंध संघर्षमय थे।

प्रतिहार शासक महीपालदेव के महासामंताधिपति धरणिवाराह के हड्डाला अभिलेख[ccxxvi] तथा राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष के संजन ताम्रपत्राभिलेख[ccxxvii] में उल्लेख मिलता है कि कृषि कार्य में दासत्व प्रथा थी और ब्राह्मण स्वंय कृषि कार्य न करके दासों पर निर्भर रहता था, लेकिन निर्धन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य स्वयं खेती करते थे तथा कृषि कार्य से जीवन यापन करते थे। अभिलेखीय और साहित्यिक प्रमाण इस बात की पुष्टि करते है कि कृषक वर्ग में सभी जाति के लोग सम्मिलित थे और उनकी स्थिति एक साधारण कृषक की थी।

कृषि कार्य के लिए हल और बैलों की सहायता ली जाती थी। खेती स्वयं तथा हलवाहों द्वारा की जाती थी। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि जिनके पास न हल है, न बैल है, वह दरिद्र परिवार के हैं क्योंकि इन दोनों के अभाव में खेती करना दुष्कर है।[ccxxviii] लोहे के फाल लगे हुए हल को शम्ब कहा जाता था, जिससे गहरी जुताई होती थी। निर्बल या निर्धन किसान अपने खेतों की जुताई के लिए कुदाल का प्रयोग करते थे।

अधिक उत्पादन भूमि के प्रकार, सिंचाई के साधन, बीज की अच्छी किस्म और मात्रा पर निर्भर करता था। प्रतिहार शासक मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख[ccxxix] में उल्लेख मिलता है कि निश्चित भूमि में निश्चित बीज की मात्रा आवश्यक थी। इसी प्रकार महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख[ccxxx] में कहा गया है कि 'धाड़िवाह' और 'मोच्च' क्षेत्र के लिए 10 मणि बीज की आवश्यकता होती थी। खेतों में नाव के आधार पर बीज डाला जाता था इसके लिए 'द्रोण' और माणी शब्दों का प्रयोग किया जाता था। भूमि की अपनी पृथक-पृथक विशेषताओं के कारण उन विशेष भूमिखण्डों में विशेष प्रकार के बीज बोये जाते थे। शालि, ब्रीहि, कोद्रव, मुद्ग, माष, सरसों, अलसी, बाजरा, सब्जी आदि विशेष भूमि में बोयी जाती थी। प्रतिहार काल में जोती जाने वाली भूमि को 'वाहित' क्षेत्र कहा गया है जो ऊसर के ठीक विपरीत थी। भूस्वामी को बेगार लेने का अधिकार था। भूस्वामी जोतने वालों को जोत अधिकार बदलने का अधिकार था। इसी प्रकार दान के साथ बेगार लेने का अधिकार भी स्थानान्तरित हो सकता था।

**सिचांई के साधन**

सिचांई के लिए कृषक प्राय: वर्षा पर निर्भर रहते थे। इसका संकेत हमें राजशेखर के कर्पुरमजंरी[ccxxxi] से प्राप्त होता है, जहाँ वह अपने भरत वाक्य में कामना करता है कि मेघ अपने संचित जल को कृषि कार्य के अनुकूल बरसाये, वर्षा के अभाव में कृत्रिम सिचांई की भी व्यवस्था की जाती थी।

काव्यमीमांसा में ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में सिचांई के लिए रहट (घटिकावलय) का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। उपजाऊ खेत हो या ऊसर सिचांई के लिए रहट (अरघट, अरहट) का प्रयोग किया जाता था। राज्य की आय का प्रमुख स्रोत कृषि होने के कारण राज्य की ओर से भी इस विषय पर सम्यक् ध्यान दिया जाता था। 942 ई० के ग्वालियर रखेतरा[ccxxxii] या गढ़ेलना गुना प्रस्तर लेख से प्रतिहार शासक विनायकपाल द्वारा सिचांई के समुचित प्रबंधों का उल्लेख मिलता है। प्रतापबढ़ अभिलेख[ccxxxiii] से यह सूचना मिलती है कि प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल द्वितीय ने नदी के किनारे भूमि का दान किया था और सिंचाई के लिए रहट की व्यवस्था की थी, जिससे दानग्राही उस अग्रहार भूमि को सिंचाई से उर्वरा कर सके। किसानो को अपनी फसलों की सिचांई के लिए नगरों की व्यवस्था की गयी थी, ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख[ccxxxiv] में नहरों का उल्लेख मिलता है। सिंचाई के लिए 'मोठ' भी काम में लाये जाते थे। मोठ से सिंची जाने वाली भूमि को कांशवाह कहा जाता है। प्राचीन काल से ही सिचांई व्यवस्था पर राज्य की ओर से ध्यान दिया जा रहा था। सिचांई प्रणाली की एक विशिष्ट व्यवस्था का चयन चाहे वह कुआँ, तालाब,अथवा नहर हो, वह उस क्षेत्र के भौगोलिक स्थिति तथा वातावरण पर निर्भर करता था। जब सिंचाई की व्यवस्था कृषक स्वयं करते थे, उन्हें किसी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता था।

**कृषि उत्पादित वस्तुएं -**

गुर्जर-प्रतिहार काल में प्राय: सभी प्रकार के अन्नों की खेती होती थी। चावल की खेती काफी मात्रा में होती थी। इसके अतिरिक्त गेहूँ और जौ की खेती भी पर्याप्त मात्रा में की जाती थी। राजशेखर ने काव्यमीमांसा[ccxxxv] में हेमन्तऋतु का वर्णन करते हुए लिखा है कि इस ऋतु में गेहूँ और जौ की फसलें लहराने लगती थी। चावल की तरह गेहूँ भी एक प्रचलित खाद्य था। इसके अतिरिक्त गन्ना, मसूर, उरद, चना, मटर, मूंग तथा सरसों, सब्जियों में कुंदरी, करैला, कटहल, बैंगन, सहजन आदि का उल्लेख किया है।[ccxxxvi] प्रतिहार कालीन समाज में कृषकों द्वारा विभिन्न प्रकार के अनाजो के अतिरिक्त विविध प्रकार के फलों की भी खेती की जाती थी। फलों में खजूर, आम, अंगूर, केला, जामुन, कटहल, चिरौंजी, नारंगी, खीरा, ककड़ी, इमली, सुपारी आदि थे। इससे ज्ञात होता है कि अन्न के साथ फलों के पैदावार में भी लोग संलग्न थे।

**पशुपालन -**

कृषि के लिए पशुपालन का काफी महत्त्व था। जहाँ खेत जोतने के के लिए बैलों को रखना आवश्यक बताया है। वहीं घी, दूध, दही और मक्खन आदि भोज्य पदार्थो की प्राप्ति के लिए गाय, भैस, भेड़, बकरी के पोषण को भी बल दिया गया है। प्राय: प्रत्येक कृषि परिवार इन पशुओं को अपनी कृषि का आवश्यक अंग मानकर पालता था। बोझ ढोने या आने-जाने के लिए बैलगाड़ियों के अतिरिक्त साधारण घोड़े भी कृषकों के पालतू पशु थे। प्रतिहार कालीन समाज में आज के ही समान पशु मेले का भी आयोजन किया जाता था। जहाँ पर दूर देश के व्यापारी आकर वस्तुओं का क्रय-विक्रय किया करते थे। प्रतिहार शासक भोज के पेहोवा प्रशस्ति[ccxxxvii] में यह उल्लेख मिलता है कि पिशाच चतुर्दशी (वैशाख महीने के शुक्ल पक्ष के 14वे दिन) को पृथुदक में घोड़े का मेला लगता था। रानी चित्रलेखा के प्रतिहार कालीन बयाना अभिलेख में क्रिपश और दाशवट नामक दो अन्य स्थलों का उल्लेख है जहाँ पशुओं का व्यापार होता था।

**भूमि स्वामित्व -**

भू-स्वामित्व को लेकर प्राचीन काल से ही भारतीय विद्वानों और विचारकों में मतभेद रहा है। भूमि पर राजा का स्वामित्व था या किसान का या इन दोनों का कहना कठिन है। प्रतिहार शासक मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख[ccxxxviii] से पुष्टि होती है कि सम्पूर्ण ग्वालियर के समस्त लोगों ने मिलकर एक ग्राम में पड़ा हुआ भूमिखण्ड और दो भूक्षेत्र मंदिर को दान में

दिये थे। इसके विपरीत भूमि पर राजा के स्वामित्व का प्रमाण मिलता है। कई प्रतिहार शासकों ने ब्राह्मणों और शैक्षणिक संस्थाओं को भूखण्ड दान में दिया था। सीयदोणी अभिलेख[ccxxxix] से यह प्रमाणित होता है कि प्रतिहार शासक महीपाल देव के पुत्र देवपाल ने सीयदोणी (झांसी जिले के सिरीजखुर्द) में ब्राह्मणों को भूमिखण्ड दान में किया था। प्रतापगढ़ अभिलेख[ccxl] में जो कि 948 ई० का है। उसमें यह उल्लिखित है कि महेन्द्रपाल द्वितीय ने नदी के किनारे की भूमि को दान में दिया था। प्रतिहार शासकों द्वारा इस प्रकार के किये गये दान पर राजकीय स्वामित्व स्पष्ट होता है।

**उद्योग व व्यवसाय -**

गुर्जर-प्रतिहार शासन काल में कृषि के साथ-साथ अनेक उद्योग धन्धे भी विकसित अवस्था में थे तथा लोग अपने अनुकूल धंधा अपनाकर जीवनयापन करते थे। समाज में कई व्यवसायी व शिल्पी वर्ग थे जिसमें शिल्पकार, मणि का काम करने वाले, तेली, माली, कन्दुक (हलवाई), नेमक वणिक (नमक वाले), तंबोली, गंधिक, दस्तकार, शिलाकूट (सिलावट), कुम्भकार (कुम्हार), कांसकार, शंखकाट, वर्द्धकि (बढ़ई), चित्रलेखा कृत (चितेरे), जौहरी, सुवर्णकार, लौहकार आदि है। मनोरंजन करने वालो में नट, नर्त्तक, गायक, वादक, चारण के  अतिरिक्त अरब यात्रियों ने लाहुदों का उल्लेख किया है, जिनके पुरूष खेल-तमाशा करते थे। सपेरे और भविष्य बताने वाले अलग थे। इनमें से विमुख व्यवसायों को अलग करके अठारह श्रेणियाँ प्रमुख थी।[ccxli] राजशेखर ने अपने ग्रन्थ कर्पुरमंजरी में अस्त्र-शस्त्र में

तलवार, भाले, धनुष, तर्कस आदि का उल्लेख किया है। बंगाल में निर्मित तलवारें तीव्र धार और सीधे प्रवाह दोनों विशिष्टताओं से युक्त होती थी। इन शस्त्रों का निर्माण कर इन्हें विभिन्न स्थानों पर भेजा जाता था। राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में विभिन्न धातुओं एवं बहुमूल्य रत्नों से निर्मित आभूषणों का उल्लेख किया है।

सुलेमान के अनुसार प्रतिहार शासक मिहिरभोज के राज्य में सोने, चाँदी की बहुत सी खाने थी।[ccxlii] धातु उद्योग के लिए इस काल में कुछ केन्द्र प्रसिद्ध थे जैसे- सौराष्ट्र अपने मिश्रधातु पीतल उद्योग के लिए प्रसिद्ध था, जोधपुर और बीकानेर ताम्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध थे।

**श्रेणी संगठन -**

एक ही प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करने वाले व्यापारी अपना संगठन बनाते थे। इस संगठन को श्रेणी कहते थे जैसे तेलियों की श्रेणी, मालीयो की श्रेणी। देश की आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न तथा व्यावसायिक कलाओं में निपुण बनाने में श्रेणियों और निगमों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाया है। ये व्यवसायी अपनी आन्तरिक स्वाधीनता और स्वायत्त प्रशासन के कारण शक्ति के केन्द्र, उदार संस्कृति और प्रगति के प्रतीक बन गये थे। यह व्यवसायिक संगठन प्रतिहार काल में कोई नया नहीं था बल्कि पूर्वकाल के अनुसार विद्यमान था। ग्वालियर अभिलेख[ccxliii] में तैलिक (तेली) श्रेणी की ओर से प्रत्येक कोल्हूक (कोल्हू) के पीछे एक पलिका (पली) तेल एक विशेष अवसर पर मंदिर की प्रकाश व्यवस्था के लिए देने का उल्लेख है। इसी प्रकार मालिका

श्रेणी (मालियों से) मंदिर के लिए पचास मालाएं प्रतिदिन देने को कहा गया था।[ccxliv] एक अन्य अभिलेख[ccxlv] में मालिका श्रेणी एक निश्चित राशि स्वीकार करके उसके बदले में मंदिर के लिए साठ मालाएं स्थाई रूप से उपलब्ध कराने का ठेका लेती हुई प्रतीत होती है।

व्यापारिक समुदायों ने अपनी सुरक्षा तथा लाभ के लिए निगमों तथा संघो की स्थापना की थी, इन्हे श्रेणी व्यावहारीजन अथवा देशी कहा जाता था। श्रेणी के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक कार्यकारिणी बनायी जाती थी उसे गोष्ठी तथा उसके सदस्यों को गोष्ठिक कहा जाता था। इसका एक अध्यक्ष भी होता था। इसकी सहायता के लिए दो, तीन या पांच प्रबंध अधिकारी होते थे। श्रेणियों की वास्तविक शक्ति उनकी कार्यकारिणी में निहित थी। श्रेणियों के अधिकारी अपने अधिकारी रूप में व्यक्तिगत सदस्यों के ऊपर अपना अत्यधिक प्रभाव रखते थे। इस कार्यकारिणी द्वारा सदस्यों को उनके प्रधान के आदेश का अनुपालन और क्रियान्वयन के लिए कुछ नियमों को प्रतिपादित किया गया था।

गुर्जर-प्रतिहारकालीन अर्थव्यवस्था में श्रेणियों की व्यवस्था महत्त्वपूर्ण थी, उनके द्वारा व्यापार-वाणिज्य के साथ-साथ विश्रामगृह पंचशाला, सभागृह, कुंड और विभिन्न प्रकार के जनकल्याणकारी निर्माण कार्य भी श्रेणीयों द्वारा देश के विभिन्न स्थानो पर कराये जाते थे। इनके द्वारा दीन-दुखियों व निर्धनों की सेवा, दुर्भिक्ष पीड़ितों  की मदद आदि कार्य किये जाते थे। वाद-विवाद तथा विभिन्न समस्याओं को निपटाने के लिए श्रेणियां

न्यायालय के रूप में भी कार्य करती थी। श्रेणियों के प्रतिनिधि गांवो तथा जिला परिषदों में स्थान प्राप्त करते थे और राजा को व्यापार तथा वाणिज्य के संबंध में सलाह दिया करते थे। श्रेणिया बैकिंग का भी कार्य करती थी। कुम्हारों के प्रत्येक चाक से एक 'पठा' तथा दस्तकारों से एक 'द्रम्म' मासिक वसूली का निश्चय हुआ था। इन श्रेणियों के कारण समाज में धार्मिक दानों को प्रोत्साहन मिलता था। श्रेणियों को प्रशासनिक अधिकार भी प्राप्त थे। श्रेणी महत्तर (महतो) समाज की ओर से जिम्मेवारी लेकर सदस्यों से उसका पालन कराने का अधिकार रखते थे। श्रेणी महत्तर राज्य कर स्वीकार करते थे और उस पर ब्याज लगाकर उसे अदा करते थे। समझौतों से विरूद्ध कार्य करने वाले को वे दण्डित भी कर सकते थे। इसका संकेत टीकाकार मेधातिथि के शब्द श्रेणिधर्माह् (समाज कानून) से मिलता है। पेहोवा अभिलेख[ccxlvi] से ज्ञात होता है कि विभिन्न क्षेत्रों से आये घोटक (घोड़े के व्यापारी) स्वयं तय करते थे कि विक्रय करने वाला दो द्रम्म तथा क्रय करने वाला एक द्रम्म (एक प्रकार का सिक्का) प्रत्येक रास घोड़े के लिए मंदिरों को दान देगा, किन्तु द्रम्म सिक्के का वास्तविक मूल्य ज्ञात नहीं है। यह वणिकों द्वारा इस प्रकार की गई कोई भी व्यवस्था राज्य द्वारा भी मान्य होती थी।

## वाणिज्य एवं व्यापार

गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज के आर्थिक सम्पन्नता का कारण कृषि के साथ-साथ व्यापार वाणिज्य भी था। भारत का प्राचीन काल से ही देश और देश के बाहर से व्यापार हुआ करता था। व्यापार स्थल मार्ग और नदी मार्ग से होता था। अल्बरूनी[ccxlvii] ने भारत के विभिन्न प्रदेशों और नगरों को जोड़ने

वाले 16 स्थलमार्गो की विस्तृत चर्चा की है। माल बैलगाड़ियो व पशुओं पर लादकर बाजार तक पहुचाएं जाते थे। स्थल मार्ग में व्यापारियों को सबसे बड़ा खतरा लुटेरों से था। ये लुटेरे प्राय: आदिवासी होते थे, जो अपने क्षेत्र में व्यापारियों से चढ़ाई-उतराई का महसूल वसूला करते थे। उस समय की दिल्ली से एक मार्ग नागौर, अजमेर होता हुआ आबू, पालनपुर, गुजरात, चित्तौड़ तथा मन्दसौर होता हुआ पूर्वी मालवा जाता था। मालवा का केन्द्र उज्जैन था, जहाँ से एक मार्ग भड़ौच और खम्भात को जाता था तथा दूसरा विदिशा होते हुए एक ओर ग्वालियर और दूसरी ओर कालपी जाते हुए कन्नौज जाता था। इसी प्रकार एक मार्ग विदिशा से भरहुत, कौशाम्बी होता हुआ कन्नौज जाता था। उज्जैन से एक मार्ग माहेश्वर, पैठन (प्रतिष्ठानपुर) होता हुआ दक्षिण को चला जाता था। अभिलेखों में अनाज, तेल, पान, मसाले, नमक, हींग, कपूर, कस्तूरी, चन्दन, अगर, नारियल, त्रिफला, लाख, गुड़, शकर, लाल मिर्च, हाथी दांत, महुआ, खजूर, कपड़े, हाथी और घोड़ो का उल्लेख मिलता है।[ccxlviii] कुवलयमाला से ज्ञात होता है कि कोशल से हाथी, उत्तरापथ से घोड़े, द्वारिका से शंख, बर्बरकूल से हाथीदांत, सुवर्णद्वीप से सोना और चीन से नेत्रपट प्राप्त होता था।[ccxlix]

गुर्जर-प्रतिहार काल में विदेश व्यापार में भी भारतीय व्यापारी निपुण थे। विदेशो को प्रस्थान करने से पहले ढिंढोरा पिटवाकर व्यापारियों की तलाश की जाती थी। प्रत्येक व्यापारी का हिसाब-किताब अलग रहते हुए

उन्हें मुखिया के नेतृत्व में रहना पड़ता था। यह व्यापारी समुदाय सोपारा (सूरपारक) तथा तामलूक (ताम्रलिप्ति) बन्दरगाहों से जहाज पर सवार होकर सुवर्णद्वीप, महाकटाह, बर्बरकूल, चीन और जावा की यात्रा करता था। विदेश यात्राओं से व्यापारी खूब धन कमाकर लौटते थे। तत्कालीन समय में भारत रेशम तथा छपाई के कपड़ो के लिए प्रसिद्ध था, जिसकी मांग विदेशों में काफी होती थी। अन्य वस्तुओं में गोंद, कालीमिर्च, धनिया आदि का एवं रोमन साम्राज्य के पूर्वी भाग को भारत से रेशम, मसाला और कीमती धातु भेजे जाते थे। विदेशों से अनेक वस्तुएं आयात भी की जाती थी। उसमें मिश्र की पन्ने की बनी हुई अगुंठिया, मूंगा, सोना तथा लोहा मुख्य पदार्थ था। मिश्र की बनी शराब भी आती थी । रेशमी कपड़े, पोस्तीन, तलवारे, फारस का प्रसिद्ध गुलाब जल, अरब का खजूर आदि वस्तुएँ भी आयात की जाती थी। राजशेखर के कर्पूरमंजरी में 'चीनाशुंक' नामक वस्त्र का उल्लेख किया है जो प्रतिहार कालीन समाज में काफी लोकप्रिय था। अपने देश में निर्यात होने वाले पदार्थों के विनिमय में भारत को उस समय स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की आवश्यकता नहीं थी। सुलेमान के विवरणों से पता चलता है गुर्जर प्रतिहार राजा जुर्ज, जिसके राज्य में वस्तुओं का विनिमय सोना और चांदी में होता था और उसके राज्य में इन धातुओं की बहुत सी खानें विद्यमान थी।[ccl] एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाने वाले व्यापारियों को सीमा शुल्क देना पड़ता

था। कई साहित्यिक ग्रन्थों में ऐसे व्यापारियों की चर्चा हुई है जो शुल्क के डर से जंगलों से होकर व्यापार करने जाया करते थे।

### व्यापारियों का प्रवास और व्यापारिक प्रतिष्ठान

गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों से व्यापारियों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसने का संकेत मिलता है। प्रतिहार शासक मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख[ccli] से यह सूचना प्राप्त होती है कि वर्कट् जाति का नागभट्ट नामक वणिक आनन्दपुर से जाकर लाटमण्डल में बस गया था। कर्णाट, मध्यप्रदेश, लाट और टक्क के व्यापारी अपने पशुओं को बेचने के लिए अहाड़ (राजपूताना में स्थित) आते-जाते थे और ब्रिकी हुई वस्तुओं पर लगाये हुए कर को देते थे। यह स्थान सम्पूर्ण भारत में विशाल व्यापारिक केन्द्र के रूप में जाना जाता था। नियमित दुकानों को वीथि कहा जाता था। दुकानें, आवासों से संबद्ध भी रहती थी कुछ मुख्य गली में तथा कुछ दुकाने छोटी गली में भी खुलती थी। प्रतिहार शासक कक्कुक के घटियाला अभिलेख[cclii] से पता चलता है कि उसने रोहिंसकूप (घटियाला) के निकट गांव में हाट बनवाकर बसाया था। बाजार में आने-जाने वाली वस्तुओं पर कर लगाया जाता था। यह कर नगदी या सामान के रूप में राज्य द्वारा वसूला जाता था। कक्कुकके घाटियाला अभिलेख[ccliii] से ज्ञात होता है कि इसके प्रिय पुत्र ने एक बाजार बनवाया जो विविध प्रकार के मार्गो से सजा हुआ है, वह चाहता है कि यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य निवास करें, वह उन्हें आजीविका का वचन देता है। उसने वहां महाजनों को स्थापित किया। व्यापार और बाजार प्रबन्ध में

लेख-पुस्तिकाओं का प्रयोग होता था। किसी भी चीज का जीर्णोद्धार पर व्यय राजबही में लिखा जाता था।

## आय का स्रोत

राज्य की आय का प्रमुख स्रोत कर था जो राज्य द्वारा कृषि, वाणिज्य तथा व्यापार सम्बन्धी विभिन्न वस्तुओं पर लगाया जाता था। प्रतिहार शासकों तथा उसके समकालीन शासकों व सामन्तो के अभिलेखों में विभिन्न प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है यथा- भाग, भोग, उपरिकर, हिरण्यकर, प्रवणिकर, जलकर, घटकर, कूटककर आदि। बेलवा से प्राप्त पाल शासक महीपाल के प्लेट[ccliv] से पता चलता है कि अपने अनुदान की सुरक्षा के लिए अधिकारियों व अन्य लोगों के साथ-साथ क्षेत्र के भविष्य के शासकों से राजा का अनुरोध और कृषकों के भाग, भोग, कर और हिरण्य सहित सभी देयराशि प्राप्त कर्ता को उचित समय पर देने का आदेश दिया गया है।

## भाग

गुर्जर-प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल के ऊणा (जूनागढ़) अभिलेख[cclv] में इस कर का उल्लेख है। अन्न के रूप में राजा को दिये जाने वाले उपज की माला को भाग कहते थे। राजा को भाग भूमि की सुरक्षा प्रदान करने के लिए दिया जाता था। सामान्यत: राजा को कृषक से भूमि की उपज का छठवां, आठवां या बारहवां भाग कर के रूप में लेना चाहिए। प्राय: उपज का 1/6 भाग ही राजा किसानों से लेता रहा।

## भोग

फल-फूल आदि वस्तुओं के रूप में प्रतिदिन दिया जाने वाला कर भोग के नाम से जाना जाता था। इसकी वसूली के लिए स्थानीय अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। जो वस्तुओं के रूप में प्रतिदिन वसूल करते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार भोग कर आठ प्रकार का होता था। जैसे- भूमि में रखी हुई धरोहर, खनिज, उपजाऊ भूमि, अति परिश्रम से की गई उपज, भविष्य में प्राप्त होने वाले धन।

## कर

राज्यांश का तीसरा वर्ग 'कर' के नाम से अभिहित था। स्थानीय कर को ही 'कर' कहा जाता था। हेमचन्द्र के अनुसार राज्य की भूमि पर खेती करने वाले उपज का जो अंश राजा को देते थे उसे कर कहा जाता था।[cclvi]

## उपरिकर

परमार शासको के अभिलेख से इस कर बारें में सूचना मिलती है। यह कर भूमि को अस्थायी रूप से जोतने वाले से लिया जाने वाले कर पर उपकर था। अर्थात् दूसरे की भूमि पर कृषि करने वालों से यह कर वसूल किया जाता था।

## हिरण्यकर

1133 ई० के प्रतिहार कालीन इगनौडा अभिलेख[cclvii] में हिरण्य कर का उल्लेख हुआ है। सोने आदि की खानों से लिया जाने वाला कर हिरण्य कर

कहा जाता था। कहीं-कहीं विशेष प्रकार की उपजों पर नकद पैसों के रूप में दिये जाने वाले कर को हिरण्यकर कहा जाता था। यह सामान्यत: वस्तु का 50 वां भाग होता था।

**प्रवणि कर**

गहड़वाल अभिलेखों[cclviii] में इस कर का उल्लेख हुआ है जिसे विद्वानों ने व्यापारियों पर लगा हुआ कर माना है। प्रतिहार शासक मिहिरभोज के पेहोवा प्रशस्ति[cclix] (882 ई०) में घोड़े के क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारियों द्वारा कर देने का वर्णन मिलता है।

**जलकर**

रहट की सिंचाई के लिए एक हाटक कर राजा को देने का उल्लेख मिलता है।

**भवन कर**

राज्य में स्थित प्रत्येक घर से एक द्रम्म कर के रूप में लिया जाता था। सम्भवत: यह एक सम्पत्ति कर था।

**द्युतकर**

गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज में जुआ खेलने की प्रथा थी जिसका उल्लेख राजशेखर ने अपने ग्रन्थ 'प्रचण्ड पाण्डव' में किया है। जुऑ खेलने के अलग-अलग स्थान निश्चित थे जिसमें कर के रूप में राजा को भी धन प्राप्त होता था।

**कूटक कर**

यह कर कृषि के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले हल पर लगने वाला कर था क्योंकि कूट का अर्थ था खेत जोतने वाला। अनेक अभिलेखों में कूटककर का उल्लेख हुआ है जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह कर व्यवहार में था।

**अन्य कर**

गुर्जर-प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल प्रथम के समय ऊणा अभिलेख[cclx] (893 ई०) में दशपराध दण्ड का उल्लेख हुआ है। यह एक प्रकार का अर्थदण्ड था जो इस अपराध करने वालों पर लगाया जाता था । विद्वानों ने दण्ड शब्द का प्रयोग कही भेंट के लिए और कहीं अर्थदण्ड जुर्माने के लिए किया है।

**विनिमय के माध्यम**

प्रतिहार कालीन अर्थव्यवस्था में विनिमय के माध्यम के रूप में विभिन्न प्रकार की मुद्रायें और बाट-माप प्रचलित थे जो इस प्रकार है।

द्रम्म

यह सबसे अधिक लोकप्रिय सिक्का था। यह रजत मुद्रा से मिलता-जुलता नाम दिरहम था, जो पहले से ही मुस्लिम देशों में प्रचलित था। इसका नाम यूनानी द्रम्म से मिलता है अत: डा० डी० आर० भण्डारकर[cclxi] इसे यूनानी सिक्का मानते है।

भोज प्रतिहार के दो द्रम्म - 'आदिवराह' अथवा 'वराहकीय' प्राप्त हुए है। इन पर वराहावतार के साथ सूर्य का चक्र बना है। भोज के पौत्र

विनायकपाल के द्रम्म लखनऊ जिला (उ०प्र०) से प्राप्त हुए है। उनका वजन 62 से 69 ग्रेन तक है।[cclxii]

ठक्कुर फेरू की द्रव्य परीक्षा में वाराही तथा विनाय की दोनो मुद्राओं का उल्लेख है। फेरू द्वारा उल्लिखित गर्जरी मुद्रान्तर्गत प्रतिहारों के सिक्कों का वर्णन है। इसमें भोज की वराह तथा विनायकपाल की विनायकी के अतिरिक्त 'राजपलाहा' मुद्रा का भी उल्लेख है। स्पष्टत: यह सिक्का अन्तिम प्रतिहार शासक राज्यपाल का है। दशरथ शर्मा[cclxiii] द्वारा इस प्रकार के सिक्कों का वर्णन किया गया है। इनके कई और नाम मिलते है जैसे- गविका, पडि़या, वाणामुद्रा और मछवाहा आदि। अनुमान है कि इन पर क्रमश: गाय, पड़िया, बाण तथा मछली के चित्र अंकित होंगे। द्रम्म का चौथाई 'पाद' और 1/20 वॉ भाग विशोंपक कहलाता था।

**रूपक**

रूपक का चलन भी जनता में अधिक था। आहार सारणेश्वर (उदयपुर-राजस्थान) मंदिर अभिलेख[cclxiv] गुहिलवंशी अल्लट (आलू रावल) ने वि० सं० 1010/953 ई० में अंकित कराया था। इस अभिलेख में एक हाथी पर एक 'द्रम्म' तथा घोड़े पर दो 'रूपक' बिक्री कर लगाने को कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि रूपक का मूल्य कम रहा होगा। अत: यह चांदी का सिक्का प्रतीत होता है।

सबसे साधारण और कम मूल्य वाला सिक्का 'कपर्दक' था यह कौड़ी का होता था। बीस कौ़डियों की एक 'काकिणी' अथवा बोडी, चार काकिणी का एक 'पण' और सोलह पण का एक द्रम्म होता था।

पांच कौड़ी - 1 पाविसा

चार पाविसा - 1 बिसा

पांच बिसा - 1 लोहटिक

पांच लोहटिक - 1 रूपा

पांच रूपक - 1 द्रम्म[cclxv]

**पण-**

प्राचीन भारतीय सिक्के की ईकाई पण थी, जो 80 रत्ती और 146 ग्राम भार के बराबर थी। यह तांबे का सिक्का होता था जो विंशोपक का एक भेद माना जाता था। एक पण का मूल्य पांच कौणी (कपर्दक) के बराबर होता था। इसका उपविभाजन आधे, चौथाई, आठ़वे और सोलहवें हिस्से में किया जाता था।

**काकीणी -**

सीयदोणी अभिलेख[cclxvi] में इसका उल्लेख हुआ है। काकीणी नामक सिक्के का संदर्भ प्राचीन काल से ही मिलता है। पतंजली और कौटिल्य ने इसका उल्लेख किया है।

**पारूत्थ**

यह सिक्का चांदी का था और इसकी तौल आठ द्रम्म थी।

**सुवर्ण**

सुवर्ण नामक सिक्के का वजन 80 रत्ती या 144 ग्रेन था। यह गुप्तकालीन सिक्का है। इसका दूसरा नाम 'निष्क' था।

**दीनार**

मूल रूप में यह सिक्का रोमनों में प्रचलित था। इनका वजन पौन तोला था। हरिभद्र सूरि का कथन है कि दीनार गुर्जर-प्रतिहारकाल का सर्वाधिक मूल्य वाला तथा कार्षापण सबसे कम मूल्य का सिक्का था।[cclxvii]

**तौल**

अभिलेखों में मणि, पालिका, पल, ताली, हस्त, कर्ष, आढ़क, द्रोण, कलश आदि शब्द मिलते है। शारंगधर पद्धति का कथन है कि कर्ष छियानबे रत्ती का होता है। यह आजकल के एक तोला के बराबर होता है। चार कर्ष का एक पल होता था। 256 कर्ष का एक आढ़क, चार आढ़क का एक द्रोण, चार

द्रोण की एक द्रोणी होती थी। द्रोणी को 'गोणी' अथवा 'वाह' भी कहते थे। अभिलेख[cclxviii] के अनुसार दक्षिणी राजस्थान का पैमाना इस प्रकार था-

4 पाइला - 1 पाइली

5 पाइली - 1 मण

4 मण - 1 सेई

2 सेई - 1 मन

मणि तौलने का बांट है। पालिका तेल, मक्खन नापने के लिए प्रयोग में लाई जाती थी और महसूल अदा करने के संबंध में उसका उल्लेख् अभिलेखों में आया है।[cclxix]

**नाप**

दानपात्रों में जहाँ गांवो, खेतों, दुकानों का उल्लेख है, वहाँ उनकी लम्बाई और चौड़ाई नहीं बतलाई गई। इसलिए लम्बाई के पैमाने का बोध नहीं होता। ठक्कुर फेरू का दिया हुआ नाप इस प्रकार है-

24 अगुंल - 1 हस्त

4 हस्त - 1 दण्ड

2000 दण्ड - 1 क्रोश

4 क्रोश - 1 योजन

इस पैमाने के माध्यम से नाप पूर्ण किया जाता था और देश के भीतर दूर-दूर की मंडियो में जाकर वस्तु का नाप-तौल किया जाता था।

**गुर्जर-प्रतिहार कालीन अर्थव्यवस्था पर सामन्तवाद का प्रभाव -**

गुर्जर-प्रतिहार शासकों के समय सामंतवाद अपने चरमोत्कर्ष पर था। सामन्ती प्रथा उपयोगी तथा अनुपयोगी दोनो ही थी। प्रदेशों में बड़े-बड़े पद सामन्तों के पास थे। भूमि पर उनका अधिकार पुश्तैनी था और अन्यपद भी उन्हें ही प्राप्त थे। यद्यपि सम्राट तंत्रपालो द्वारा सामन्तो को अधीन रखता था केन्द्रीय सत्ता के निर्बल हो जाने पर प्राय: सामन्त प्रबल हो जाते है। अत: स्थानीय कर केन्द्र तक न पहुंचकर स्थानीय सामंतो के पास ही एकत्र होने लगते है। व्यापार में व्यावसायिक अवरोध उत्पन्न होते है और अन्तर्राज्यीय सम्पर्क समाप्त हो जाते है। उपरि वर्णित कमियां केवल प्रतिहार साम्राज्य की विशेषता न थी, अपितु सभी भारतीय राज्यों के लक्षण में गिना जाना चाहिए।

गुर्जर-प्रतिहार शासको के सामंत गहड़वालों ने अपने प्रभुत्व के केन्द्र उत्तरप्रदेश में सबसे अधिक अनुदान दिये। इन्होंने धार्मिक व धार्मिकेत्तर कई अनुदान प्रदान किये। ये अनुदानभोगी केन्द्रीय सत्ता को किसी प्रकार का कर नही देते थे, और प्रजा तथा राजा के बीच महत्त्वपूर्ण वर्ग का काम करते थे। अन्य सांमतो में चन्देलो का राज्य यमुना से दक्षिण बुंदेलखण्ड में था। इनके अधिकांश अनुदानों में एक-एक गांव ही दान किया गया और चन्देल राजाओं ने गृहस्थ तथा धार्मिक ग्रहिताओं को अलग-अलग कुल मिलाकर 15 गांव

दिये। गुजरात के चौलुक्यों ने बहुत से अनुदान दिये। पुरोहितों, जैन और हिन्दू मंदिरो आदि धार्मिक ग्रहिताओं की ताम्रपत्रों द्वारा जो अनुदान किये गये, यद्यपि कुल मिलाकर ऐसे गांवो की संख्या दर्जन भर से कम नहीं है। सामंतो और राज्याधिकारियों को जागीरों के रूप में बड़े-बड़े क्षेत्र दिये गये थे। गुजरात में ब्राह्मणों की अपेक्षा मंदिरो को अधिक दान दिये गये और वहां ब्राह्मण इन मंदिरों के पुरोहित अथवा न्यासी बन गये।

गुर्जर-प्रतिहारों के सामंत कलचुरि भी अनुदान देने के मामले में पीछे नहीं थे। कलचुरियों की गोरखपुर शाखा के सोढदेव द्वारा 14 ब्राह्मणों को दिये गये एक अनुदान से स्पष्ट होता है कि दान किया गया 20 नातु क्षेत्र 6 गांवों में बिखरा हुआ था। कलचुरियों ने धार्मिक प्रयोजनों में कुल मिलाकर 65 गांव अनुदान में दिये । यह संख्या उतनी बड़ी नही है जितनी संख्या में चंदेलो ने ग्राम अनुदान दिये। इस सन्दर्भ में रामशरण शर्मा[cclxx] का मानना है कि उत्तर भारत में यदि अभिलेखों में उल्लिखित सभी अनुदत्त गांवो का योग निकाल भी ले तो कुल गांवों की तुलना में अनुपात क्या था यह कहना असंभव होगा क्योंकि हमें कुल गांवो की संख्या मालूम नहीं है। फिर भी इस काल के भूमि अनुदान के रूप में गांवों को देने का चलन बहुत व्यापक हो गया था। इस कार्य के निमित्त उत्तर भारत के राजा विशेष कार्याधिकारी रखते थे। इस सबका मतलब यह था कि विभिन्न स्तरों के भूमि धर मध्यवर्ती लोगों की संख्या काफी बढ़ गई थी जो इस काल की अर्थव्यवस्था की विशेषता थी।

ग्रहिताओं को हस्तांतरित किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के साधनों में खनिज और भूगर्भ सम्पदा भी शामिल थी। स्पष्टत: राजा इन पर अपने

स्वामित्व का दावा तो रखता ही होगा, किन्तु अपने अमलों के बल पर उसके लिए इस अधिकार का उपभोग करना मुश्किल पड़ता होगा और वास्तव में इन चीजों का लाभ ग्राम्य समाज ही करता होगा। लेकिन ग्रहिता तो खुद ही जगह पर मौजूद होते थे और इसलिए वे अपने अधिकारों पर गांववालों को हाथ नहीं डालने देते होंगे। अत: अनुदानों के परिणामस्वरूप गांव वालो के सामूहिक अधिकार क्षिणतर होते चले गये। उप सामंतीकरण की प्रवृत्ति इस काल में बहुत बढ़ी। राजवंश के सदस्य, राज्याधिकारी, कभी-कभी राजा की अनुमति लेकर और कभी बिना उसकी अनुमति से अपनी-अपनी जागीरों में पुरोहितों को अथवा मंदिरो को अनुदान कर दिया करते थे। यह सत्य है कि धार्मिक दायित्व नहीं होता था और दाता को केवल उसकी नैतिक शुभेच्छाओं और नैतिक समर्थन की ही अपेक्षा थी किन्तु इन अनुदानों के कारण भूमि भोगियों की कई श्रेणियां कायम हो गई। परिणामस्वरूप ऐसे गांवों में किसानों की दशा बिगड़ती चली जा रही थी। जो क्षेत्र सीधे राजा के नियत्रंण में थे उनमें भी उनकी स्थिति इससे बहुत अच्छी नही थी।

गहड़वाल अनुदान पत्रो[cclxxi] में करों की जो सूची है उससे प्रतीत होता है कि उसके शासन काल में किसानों को जितने कर देने पड़ते थे उतने पहले कभी नहीं देने पड़े थे। इस काल में गतिहीन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के कमजोर होते जाने का लक्षण सामने आता है। अत: यह कहा जा सकता है कि जहाँ गुप्त साम्राज्य के पतन के चार सदियों बाद उद्योग व व्यापार का ह्रास हुआ था वहां इस काल मे पश्चिमी भारत में उसका काफी विकास हुआ। आंतरिक व्यापार की सतत वृद्धि का कारण विदेशी व्यापार का उत्कर्ष था।

रामशरण शर्मा[cclxxii] का मानना है कि 750-1000 ई० के बीच में विदेशी व्यापार बिल्कुल ठप्प नहीं हुआ था। फिर भी 600-900 ई० तक विदेशी व्यापार के जो प्रमाण मिलते है भारत तथा फारस की खाड़ी और अरब के बीच है।

ऐसे वातावरण में एक विशाल साम्राज्य को छिन्न-भिन्न होने से बचा लेने का अर्थ यही है कि सम्राटो ने प्रादेशिक राजाओं तथा सामन्तों का सहयोग प्राप्त किया। शासकीय तंत्र निर्दोष, ठोस और सुदृढ़ था।

# पंचम अध्याय

# गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित धार्मिक व्यवस्था

भारतीय संस्कृति धर्म से ओत-प्रोत है। धर्म द्वारा मनुष्य अपने कर्त्तव्यों और व्यवहारों को संवर्धित करता है, अपनी वांछित कामनाओं की पूर्ति करता है। जिन सिद्धान्तों के अनुसार व्यक्ति अपना दैनिक जीवन व्यतीत करता है, जिसके द्वारा सामाजिक बन्धनों की स्थापना होती है, वही धर्म है, प्राचीन वैदिक धर्म में यज्ञों की प्रधानता थी। यज्ञकुण्ड में अग्नि का आधान कर विविध देवताओं का आह्वाहन किया जाता था और अन्न, घी, समिधा आदि की आहूति देकर इन देवताओं को संतुष्ट किया जाता था परन्तु गुर्जर-प्रतिहार काल में इस परिपाटी में शिथिलता आ गई थी। सर्वसाधारण जनता में यज्ञों का प्रचलन अब नहीं हुआ। यज्ञों का स्थान अब मूर्तिपूजा ने ले लिया था।

गुर्जर-प्रतिहार कालीन जन जीवन भी धर्म से पूर्णत: प्रभावित था और समाज में यत्र तत्र जिस धार्मिक व्यवस्था का रूप परिलक्षित होता  है उसका मुख्य आधार ब्राह्मण धर्म या हिन्दू धर्म था। मूर्तिपूजा का प्रचलन सामान्य था। विशेष अवसरों पर देवपूजन, व्रतों, त्योहारों आदि का पालन किया जाता था। गुर्जर-प्रतिहार शासक धार्मिक रूप से सहिष्णु थे। मिहिरभोज ने भगवती के उपासक होते हुए भी विष्णु का मंदिर बनवाया था और महेन्द्रपाल द्वितीय ने शैव मतानुयायी होते हुए भी वटयक्षिणी देवी के लिए दान किया। उनका दण्डनायक माधव सूर्य देवता को एक ग्राम भेट करता है और जिसके समीप

ही शिव की मूर्ति है। इन मंदिरों का व्यवस्थापक दशपुर निवासी (आधुनिक मन्दसौर) हरि ऋषिवर था जो स्वयं पाशुपत मतानुयायी था। राजा महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख से इसकी पुष्टि होती है।[cclxxiii]

विष्णु, शिव, शक्ति एवं अन्यान्य पौराणिक देव सम्पूर्ण भारत में पूज्य थे। इस धार्मिकता से तत्कालीन सामाजिक वर्गों की आध्यात्मिक क्रियाशीलता का एक संघटित स्वरूप उद्घाटित होता है।

**वैष्णव सम्प्रदाय**

भगवान समय-समय पर अवतार ग्रहण कर मनुष्यों का उद्धार करते हैं यह विचार भारत में बहुत प्राचीन समय से प्रचलित था परन्तु अवतारवाद को वैष्णव धर्म में विशेष रूप से विकसित किया गया और यह इस धर्म का प्रधान अंग बन गया। गुर्जर-प्रतिहार काल की प्रमुख घटना बौद्ध धर्म का पतन और भागवत धर्म का उत्थान था। वैष्णव धर्म राजा और प्रजा में समान रूप से लोकप्रिय था। विष्णु के अवतारों की पूजा होती थी और उनकी मूर्तियां मन्दिरों में प्रतिष्ठित की जाती थी। इस काल में विष्णु भगवान की पूजा अनेक नामों से की जाती थी। जिनका उल्लेख हमें प्रतिहारों के अभिलेख तथा उस समय के साहित्य मे मिलता है। जो इस प्रकार है- गरूणासन[cclxxiv], मुरारि, माधव, विष्णु[cclxxv], त्रिभुवन स्वामी[cclxxvi], विष्णु भट्टारक, नारायण भट्टारक[cclxxvii] त्रैलोक्य मोहन[cclxxviii], नरकद्विष[cclxxix], वामन स्वामिदेव[cclxxx]।

यशोवर्मा चन्देल के खजुराहों अभिलेख में वराह, नृसिंह तथा त्रिविक्रम का उल्लेख है।[cclxxxi] कुरूक्षेत्र में एक त्रिभुज विष्णु की मूर्ति प्राप्त हुई है जिसके अगल बगल के मुख वराह तथा नृसिंह के है। इसी प्रकार हमें इस काल के विभिन्न अभिलेखों में विष्णु मंदिरों को समाज के विभिन्न वर्ग यथा- राजा, व्यापारी, सामंत इत्यादि द्वारा बनवाने के लक्षण मिलते है। जो इस प्रकार है।

| **मंदिर** | **निर्माणकर्त्ता** |
|---|---|
| १-वल्लभभट्टस्वामिन<br>(विष्णु मंदिर) | अल्ल (कोट्टपाल)<br>प्रशासनिक अधिकारी |
| २-श्री नारायण भट्टारक<br>(विष्णु मंदिर) | चान्दुका व्यापारी |
| ३-श्री विष्णु भट्टारक<br>श्री चक्रस्वामी देव<br>(विष्णु मंदिर) | चान्दुका व्यापारी<br>पूरेन्दर |
| ४-मुरारि (विष्णु मंदिर) | दामोदर, व्यापारी |
| ५-विष्णु मंदिर, कन्नौज | गुहादिव्य कदम्बादित्य |
| ६-गरूणासना मंदिर<br>(विष्णु मंदिर) | भुवका |

| | |
|---|---|
| भोजपुर (कन्नौज) | |
| ७-यज्ञवराह मंदिर (विष्णु मंदिर) पृथुदका | भुवका |
| ८-नरकद्विष मंदिर (विष्णु) | राजा मिहिरभोज |
| ९-परमेश्वर मूर्ति (बुचकला स्थित राज्यधइकड गावं में स्थित) | वत्सराज |

1 से 7 मंदिर[cclxxxii] 8 मंदिर [cclxxxiii] 9 मंदिर[cclxxxiv] में उल्लिखित है।

इन उल्लेखो से हमें प्रतिहारकालीन विष्णु मंदिरों और विष्णु के विभिन्न नामों से वैष्णव सम्प्रदाय की व्याख्या का पता चलता है। बाउक के जोधपुर अभिलेख[cclxxxv] में भगवान विष्णु को ऋषिकेश के नाम से संबोधित किया गया है, जिसके अन्दर सारे पदार्थ समाहित है, सर्वज्ञ है तथा जो सृष्टि का निर्माणकर्त्ता व सरंक्षक है अर्थात् निर्गुण व सगुण दोनों है।

इस काल में विष्णु के पौराणिक व क्षेत्रीय दोनों रूप आम जनता में प्रसिद्ध व आदर स्वरूप थे। लगभग 9वीं श०ई० का वराह मंदिर (कन्नौज) प्रतिहार कालीन वराह अवतार का अप्रतिम उदाहरण है। इसमें गर्वान्वित भाव से वीर रस की मुद्रा में पृथ्वी को देख रहें हैं, शीर्ष पर केशों की त्रिवली है, वे हार रूप में वैजयंती माला धारण किये है। दाहिना हाथ सहज भाव से

कमर पर रखे हुए है तथा बांये हाथ से पृथ्वी को उठाये हुये है। भयभीत पृथ्वी वराह का दांत पकड़े हुए है। पृथ्वी के उद्धार के इसी रूप के कारण प्रतिहार राजा मिहिरभोज ने वराह की उपाधि धारण की थी अर्थात् पृथ्वी रूपी प्रजा का उद्धार करने वाला के रूप में उसने स्वयं को प्रतिष्ठित किया। राजा मिहिरभोज की ग्वालियर प्रशस्ति में शेषनाग को विष्णु की शैय्या कहा गया है।[cclxxxvi] बुचकला अभिलेख[cclxxxvii] में विष्णु के चतुर्भुज स्वरूप का वर्णन मिलता है जिसमें प्रतिमा का विस्तृत उल्लेख मिलता है। विष्णु के चार मुख है तथा उनके हाथों में गदा, चक्र, शंख व पुष्प सुशोभित है। प्रतिहार अभिलेखों जैसे- जोधपुर अभिलेख, ग्वालियर प्रशस्ति की शुरूआत विष्णु को नमस्कार अर्थात् 'ओम नमो वैष्णव' से हुई है जो सृष्टि के रचयिता व मार्गदर्शक है।

गुर्जर-प्रतिहारकालीन विष्णु मंदिरों की अवस्थिति देखें तो हम पाते हैं कि वैष्णव धर्म पूरे प्रतिहार साम्राज्य रामगया से पेहोवा तक प्रभावशाली रूप से अपनी जड़े जमा चुका था। पेहोवा उत्तर-पश्चिम में, विन्ध्य पर्वत दक्षिण में ग्वालियर, दशपुर, सियदोणी, आहार मध्य में तथा प्रतापगढ़ (राजस्थान) तक वैष्णव धर्म का प्रसार था।[cclxxxviii]

यद्यपि रामावतार संबंधी मूर्तियाँ इस काल में प्राप्त नही हुई लेकिन प्रतिहार काल में राम को अवतार मान लिया गया था। महेन्द्रपाल प्रथम के दरबारी कवि राजशेखर द्वारा रचित बालरामायण से रामावतार की उपासना का पता चलता है। ग्वालियर प्रशस्ति में प्रतिहार वंश को राम के भाई लक्ष्मण का वंशज कहा गया है।[cclxxxix]

मंदिरों का निर्माण कभी-कभी चंदे से भी किया जाता था और वे पूरे समाज की जिम्मेदारी पर चलाये जाते थे। इसीलिए व्यापारिक श्रेणियां मंदिरो के खर्च के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध कराती थी। मंदिरो की व्यवस्था के लिए समितियाँ बना ली जाती थी। वैष्णव धर्म में अहिंसा पर बल दिया जाता था।

## शैव सम्प्रदाय

गुर्जर-प्रतिहार काल में वैष्णव सम्प्रदाय के अतिरिक्त शैव सम्प्रदाय के भी लोकप्रिय होने का उल्लेख मिलता है। विष्णु भक्तों की तरह शिव के उपासकों द्वारा भी धार्मिक भावना के प्रतीक स्वरूप दान व भेंट तथा चढ़ावा देने का वर्णन मिलता है। गुर्जर प्रतिहार वंश के शासक वैष्णव तो थे ही, साथ ही शिव के प्रति भी उनकी आस्था थी। राजा बाउक के जोधपुर अभिलेख में उसके द्वारा निर्मित सिद्धेश्वर महादेव के तुंग मंदिर का उल्लेख है। यह विशेष वर्ग तक ही सीमित नही था अपितु इसको मानने वाले साधारण लोग भी थे।

कन्नौज के सम्राट वत्सराज, महेन्द्रपाल द्वितीय और त्रिलोचन पाल शिव के उपासक थे। मण्डोर के शिलुक प्रतिहार ने सिद्धेश्वर महादेव का विशाल मंदिर त्रेता नामक तीर्थ पर बनवाया था।[ccxc] शिव की पूजा लिंग तथा मूर्ति दोनों रूपों में की जाती थी और दोनों की स्थापना मंदिरों में की जाती थी। उज्जैन में महाकाल शिव का प्रसिद्ध मंदिर था।

विष्णु के समान शंकर की भी पूजा अनेक नामों से होती थी जिसका पता हमें प्रतिहार शासकों के विभिन्न अभिलेखों के माध्यम से होती है जो इस

प्रकार है- उमामहेश्वर[ccxci], लच्छुकेश्वर महादेव[ccxcii], त्रिलोचन[ccxciii], योगस्वामिन[ccxciv], सिद्धेश्वर महादेव[ccxcv], महाकाल[ccxcvi] इत्यादि। शिव के ये नाम पूजनार्थ उपयोग में लाये जाते थे।

महेन्द्र पाल प्रथम के सियदोणी अभिलेख[ccxcvii] से शिव के उमामहेश्वर रूप की व्याख्यामिलती है जिसमे पान के पत्ते के व्यापारी द्वारा एक बरामदा उमा-महेश्वर को दान में दिया गया है। प्रतिहार कालीन उमा-महेश्वर की प्रतिमाओं में युग और समाज का प्रतिबिम्ब है। इसमें देवता के गुणों से अधिक लौकिक भावों का समावेश है। भगवान शिव के बायीं तरफ पार्वती का स्थान, भगवान के अर्द्धनारीश्वर रूप को दिखाया गया है।

गुर्जर-प्रतिहार राजाओं के जागीरदारों द्वारा शिव की पूजा की सूचनाएं मिलती है। राजा महीपाल देव के महासामन्ताधिपति धरणिवराह के हंसोट अभिलेख[ccxcviii] से सूचना मिलती है कि उसने शिव के एक पुजारी को अध्ययन हेतु एक ग्राम दान में दिया था। शैव आचार्य विभिन्न रूपों में शिव की पूजा करते थे। शैव आचार्यो का धार्मिक जीवन में विशेष महत्त्व था जो विभिन्न मंदिरो की देखभाल, पूजा-पाठ करते थे। संसार का कोई भी कार्य परमात्मा शिव के बिना नही चल सकता और न ही कोई वस्तु प्रवृत्त हो सकती है। शिव की पत्नी पार्वती को शक्ति रूप माना गया है। जिस प्रकार शिव के दो रूप है- उग्र व सौम्य । उसी प्रकार उमा के भी दो रूप है एक तो सौम्य रूप, जिसे महादेवी, शिवा आदि के नामों से जाना जाता है, दूसरा भयावह या उग्र रूप

जिसे महाकाली, दुर्गा आदि नामों से संबोधित किया जाता है इसीलिए उमा-माहेश्वर को साथ-साथ पूजा जाता है।

**शाक्त सम्प्रदाय**

शक्ति के रूप में यह देवी प्राय: सभी देवों के साथ सबद्ध है। इसके अन्य नाम दुर्गा, भवानी, ईश्वरी, चण्डिका, अम्बिका, काली और कौशिकी है। प्रारम्भ में शक्ति शिव की पत्नी उमा और विष्णु की पत्नीलक्ष्मी के रूप में ही पूजनीय थी किन्तु धीरे-धीरे दार्शनिक व तांत्रिक दर्शन के विकास के फलस्वरूप शक्ति का रूप विकसित हुआ। जिसके अनुसार देवता, देवी के साथ मिलकर ही ब्रह्माण्ड की रचना, पालन करना व संहार करते थे। उन्हें (देवी-देव को) पृथक नहीं किया जा सकता।[ccxcix]

गुर्जर-प्रतिहार काल में शक्ति की उपासना का आम जनता में प्रसार हो रहा था। शैव और वैष्णव ने अपने-अपने सम्प्रदायों को जनप्रिय बनाने के प्रयास में शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया। गौरी व पार्वती दोनों ही एक देवी के दो नाम है जिनकी उत्पत्ति विश्व के कल्याणार्थ हुई है। बहुत से मंदिरो का निर्माण गुर्ज़र प्रतिहार काल में हुआ था जिसका पता हमें उनके अभिलेखों के माध्यम से चलता है। ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख[ccc] में अल्ल (कोट्टपाल) द्वारा नवदुर्गा मंदिर का निर्माण वृच्छिकला नदी के किनारे, जो ग्वालियर में अवस्थित है, कराया गया था। दुर्गा के जनजाति स्वरूप का भी पता हमें चलता है। वटयक्षिणी देवी का मंदिर जो घोटावर्णिका गांव में स्थित है उसका

उल्लेख महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख[ccci] में हुआ है जो कि हरिऋषिश्वर के मठ से जुड़ा हुआ है जिसे एक गांव दान में दिया गया है।

प्रतिहार शासको में नागभट्ट द्वितीय, मिहिरभोज तथा महेन्द्रपाल प्रथम अपने को भगवती भक्त कहते थे। दुर्गा पूजा सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित थी। शाक्त सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र अर्बुद पर्वत था।

## सूर्य की पूजा

गुर्जर-प्रतिहार काल में सूर्य की उपासना अत्यन्त लोकप्रिय था। प्रतिहार शासक रामभद्र सूर्य का उपासक था। सूर्य की आराधना से उसे पुत्र प्राप्त हुआ था इसीलिए उसका नाम मिहिरभोज रखा गया था, इसे ही भोज प्रथम भी कहते है। विनायकपाल भी सूर्योपासक था। महेन्द्रपाल द्वितीय के सामन्त इन्द्रराज चाहमान ने अपने नाम पर इन्द्रादित्य का मंदिर बनवाया और उज्जैन के तंत्रपाल श्री माधव ने उस मंदिर के लिए एक ग्राम का दानपत्र प्राप्त किया था। विदिशा नगर सूर्यपूजा का प्रमुख केन्द्र था।[cccii] राजस्थान में भिनमाल, ओसिया, मण्डोर, हर्षनाथ, आमेर, पुष्कर, चित्तौड़ इत्यादि में सूर्य प्रतिमाएं प्राप्त हुई है। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा का कथन है कि राजस्थान में आठ सौ वर्षो तक सिरोही राज्य के अन्तर्गत कोई ऐसा गांव नहीं था जहां सूर्य की प्रतिमा न रहे।[ccciii] महेन्द्रपाल प्रथम के समय के दो ताम्रपत्र[ccciv] ऊणा (जूनागढ़) से प्राप्त हुआ है जिसमें तरूणादित्य नाम के एक सूर्य मंदिर को दो गांव जयपुर व अम्बुलका चालुक्य सामंत बलवर्मन तथा अवनिवर्मन द्वारा दान में देने का वर्णन है।

अलमसूदी[cccv] ने लिखा है कि जब प्रतिहार शासक मुल्तान पर अधिकार करने का इच्छा करते थे तब वहाँ का अश्व माण्डलिक सदैव सूर्य मंदिर की मण्डप में चला जाता था जिससे प्रतिहार बिना आक्रमण लौट जाते थे। इस कथन से प्रकट होता है कि प्रतिहारकालीन राजस्थान में सूर्य की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

भारतीय कला में सूर्य का प्रदर्शन चक्र, वर्तुल, स्वर्णपाल तथा कमलपुष्प आदि प्रतीकों के माध्यम से होता है। बाद में यह पुरूष विग्रह के रूप में दर्शाये जाने लगे जो मुकुट, कुण्डल, अत्यंग तथा उपानह् धारण किये हुए सात घोड़ों के रथ पर आरूढ़ है।

## अन्य देवी -देवता

गुर्जर-प्रतिहार काल में गणेश व कार्तिकेय की भी पूजा के उद्धरण हमें तत्कालीन अभिलेखों में प्राप्त होते हैं। मण्डोर के प्रतिहारों के घटियाला अभिलेख[cccvi] में भगवान गणेश की स्तुति 'ओम विनायक' के नाम से की गई है। गणेश की चतुर्मुखी प्रतिमाओं के अतिरिक्त नृत्य गणेश की भी मूर्तियां मिलती है। ग्वालियर प्रशस्ति [cccvii] में कार्तिकेय को कुमार नाम से वर्णित किया गया है।

## बौद्ध सम्प्रदाय

गुर्जर-प्रतिहार कालीन उत्तर भारत में बौद्ध धर्म का प्रभाव समाप्त प्राय था। महेन्द्रपाल प्रथम के इत्खोरी अभिलेख[cccviii] बौद्ध देवी तारा के आधार स्तम्भ पर पाया गया है। तारा देवी का बौद्ध धर्म में वही स्थान है जो ब्राह्मण

धर्म में दुर्गा का। राजशेखर ने काव्यमीमांसा[cccix] में बौद्ध दर्शन के मुख्य सिद्धान्त को भी उद्धृत किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार वक्ता जिस इच्छा से शब्द का प्रयोग करता है वही शब्द का मुख्य अर्थ होता है। गुप्त काल में ब्राह्मण मतावालम्बियों ने बौद्ध धर्म के अधिकांश सिद्धान्त अपना कर बुद्ध को विष्णु का अवतार मान लिया । अत: इससे बौद्धधर्म प्रभावहीन हो गया।

**जैन सम्प्रदाय -**

बौद्धधर्म की अपेक्षा जैन धर्म अधिक लोकप्रिय था बड़े राजनीतिक उथल-पुथल के बाद भी जैन धर्म अपने मूल प्रदेश बिहार में अन्य सम्प्रदायों के साथ विद्यमान था। मध्य प्रदेश अनेक विख्यात जैन आचार्यो का कार्यक्षेत्र रहा है और गुर्जर-प्रतिहार काल में जैन धर्म जेजाकमुक्ति (बुन्देलखण्ड) और ग्वालियर क्षेत्र तक ही सीमित रह गया था लेकिन पश्चिमी भारत के राजस्थान, गुजरात, मालवा, सौराष्ट्र जैनधर्म के विख्यात केन्द्र थे।

घटियाला अभिलेख[cccx] में महान कक्कुक द्वारा जैनमंदिर बनवाने का उल्लेख है। ओसिया अभिलेख[cccxi] एक जैनमंदिर के बरामदा में उत्खनित था जो गुर्जर प्रतिहार काल का माना जाता है। देवगढ़ स्तम्भ अभिलेख[cccxii] जैन मंदिर के स्तंभ पर प्राप्त हुआ है। नागभट्ट प्रथम, वत्सराज और नागभट्ट द्वितीय के शासन काल में भी जैन धर्म को राज्याश्रम प्राप्त था।

इसके अतिरिक्त तंत्र धर्म के अन्तर्गत कापालिक और कौल का भी अस्तित्व परिलक्षित होता है और जोर पकड़ चुका था। तांत्रिको का कथन था कि हम जो कुछ भी करते वह पूर्ण ज्ञान तथा जन कल्याण के लिए करते है

किन्तु तांत्रिक सिद्धान्तों के पालन से भारतीय नैतिक स्तर निम्नतम बिन्दु तक पहुंच गया था।[cccxiii]

इस तरह से इस काल में सभी धर्मों को समाज में समान आदर व सम्मान प्राप्त था।

## गुर्जर-प्रतिहार शासकों के व्यक्तिगत धर्म

गुर्जर-प्रतिहार शासकों के व्यक्तिगत धर्म के विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस एक ही वंश के राजा अलग-अलग देवताओं की भक्ति करते हुए पाये जाते है। प्रतिहार राजाओं द्वारा विभिन्न देवताओं की भक्ति का सन्दर्भ हमें उनके अभिलेखों से प्राप्त होता है। नागभट्ट प्रथम को स्वयं सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने में सामर्थ्यवान (विष्णु) का अवतार माना गया है। जिसने अपनी भुजाओं से म्लेच्छो की समुद्ररूपी सेना को मथ डाला[cccxiv] वत्सराज को परम माहेश्वर कहा गया है। प्रतापगढ़ अभिलेख[cccxv] में महेन्द्रपाल द्वितीय शिव का भक्त कहा गया है। वत्सराज के शासनकाल में बनी एक ड्योढ़ी का स्वरूप जैनमंदिर जैसा है जो जैनियों का विश्राम गृह प्रतीत होता है।[cccxvi]

नागभट्ट द्वितीय भगवती का भक्त था।[cccxvii] महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख में रामभद्र को आदित्य (सूर्य) का भक्त कहा गया है।[cccxviii] इसी अभिलेख से यह भी सूचना मिलती है कि राजा भोज भगवती का उपासक था साथ ही शिव मंदिर की देखभाल के लिए एक शैव आचार्य की नियुक्ति की थी जिसे राज्य की ओर से वेतन भी मिलता था। यहीं पर महेन्द्रपाल प्रथम को भगवती, विनायकपाल को सूर्य तथा महेन्द्रपाल द्वितीय

को महेश्वर भक्त कहा गया है। इस अभिलेख का प्रारंभ दुर्गा की स्तुति से हुआ है। प्रतिहार राजा त्रिलोचनपाल शिवभक्त था एक अभिलेख में यह उद्धृत है कि उसने दक्षिणायन संक्रान्ति के लिए गंगा में स्नान करके तथा शिव की उपासना करके लम्भुदका गांव जो असुरभका विषय के अन्तर्गत आता था, उसे ब्राह्मणों को दान में दिया।[cccxix]

## इस्लाम धर्म व प्रतिहार शासकों की उनके प्रति नीति

इस्लाम के प्रति प्रतिहार राजाओं के व्यवहारों तथा प्रभावों की जानकारी का प्रमुख स्रोत अभिलेख और तत्कालीन यात्रियों के विवरण है। विदेशी यात्रियों में सुलेमान, अबुजैद, अलमसूदी, अलगर्दीजी, इत्यादि प्रतिहारों के साहसिक व्यवहारों की महत्वपूर्ण सूचनाएं देते है।[cccxx] ये अरब इतिहासकार प्रतिहार शासको को मुस्लिमों का सबसे बड़ा शत्रु मानते थे। सुलेमान ने मिहिरभोज के बारे में लिखा है कि इस राजा के पास बहुत बड़ी सेना है भारतवर्ष के राजाओं में इससे बढ़कर इस्लाम धर्म का कोई शत्रु नहीं है।[cccxxi] अरब इतिहासकार अलमसूदी (912-26 ई०) कन्नौज के प्रतिहार राजाओं की महान शक्ति और साधनों का उल्लेख करता है। अलमसूदी कहता है कि जुर्ज (गुर्जर) का राजा इस्लाम का सबसे बड़ा शत्रु है। वह मुल्तान के बारे में जानकारी देते हुए कहता है कि मुसलमानों के लिए यह सर्वाधिक सुरक्षित स्थान है। यहां एक सूर्य मंदिर है जिससे मुल्तान के राजा को बहुत बड़ी आमदनी होती है। वह कहता है कि जब काफिर लोग मुल्तान पर आक्रमण करते है तो मुसलमान उस मंदिर के मण्डप में घुस जाते है और प्रतिहार शासक सूर्य मंदिर में शस्त्र आदि युद्ध निमित्त नहीं ले जाते थे तथा

पीछे हट जाते थे। भोज के ग्वालियर प्रशस्ति[cccxxii] से इस बात की पुष्टि होती थी कि मुस्लिम आक्रान्ताओं से देश की रक्षा करने के लिए नागभट्ट प्रथम, नागभट्ट द्वितीय और मिहिरभोज भगवान नारायण के समान उपाधियां धारण करते थे।

इस प्रकार यह परिलक्षित होता है कि प्रतिहार शासक मुस्लिम आक्रान्ताओं के प्रति कठोर नीति का अनुसरण किये किन्तु वे धार्मिक रूप से असहिष्णु नहीं थे।

## धार्मिक व्रत और त्योहार

धार्मिक पर्व व व्रत का इस काल में विशेष महत्व था, लोगों द्वारा अपनी धार्मिक प्रसिद्धि के लिए व्रत को अत्यधिक महत्त्व दिया जाने लगा। अल्बरूनी[cccxxiii] ने बहुत से व्रतों का उल्लेख किया है जो प्रत्येक माह के अनुसार अलग-अलग रूप से फलदायी होते है। इसके अतिरिक्त वह कहता है कि सभी महीने के शुक्ल पक्ष की आठवीं व ग्यारहवीं तारीख व्रत का दिन होता था लेकिन सामान्यतया यह सभी महीनों पर एक समान लागू नहीं होता था।

इस काल में विभिन्न व्रतों के साथ ही त्योंहारों का भी प्रचलन था जिसे लोगों द्वारा अत्यन्त ही हर्षोल्लास से मनाया जाता था।

**चैत्र पर्व -** चैत्र मास में अनेक प्रकार के उत्सवों का प्रचलन था जिसमें नवरात्र, श्री पंचमी, गौरी पूजन विशेष रूप से प्रचलित था।[cccxxiv]

**वट सावित्री पर्व -** यह त्योहार स्त्रियों द्वारा ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन व्रत रखकर मनाया जाता था। देवी सावित्री के नाम पर इस त्योहार का नाम वट सावित्री पर्व नाम पड़ा। यह चार दिन का पर्व था। समापन के दिन स्त्रियाँ वट वृक्ष के नीचे विशेष प्रकार का नृत्य करती थी जिसे चर्चरी कहा जाता था। इस अवसर पर पानी में स्नान करने का विधान था।

**महानवमी -** सम्भवत: महानवमी से तात्पर्य दुर्गाजी से है। राजशेखर ने इस धार्मिक पर्व को शरद् ऋतु का महान पर्व बताया है। इस त्योहार के दिन राजा द्वारा सम्पूर्ण अस्त्र व शस्त्र की पूजा की जाती थी।[cccxxv] ऐसी मान्यता है कि इसी दिन दुर्गा ने राक्षसों का संहार किया था।

**दीपावली -** यह कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की अमावस्या को मनाया जाता था।[cccxxvi] इस दिन घर-घर दीप जलाने की प्रथा थी।

**पितृ विसर्जन -** ऐसा समाज में विश्वास है कि पिण्डदान करने से व्यक्ति पितृ ऋण से मुक्ति पा जाता है जो 15 दिनों का होता है जो पितृपक्ष में चलता है और अन्त में पितृ विसर्जन होता था।

इन मुख्य पर्वो के अलावा इस काल में जागरण, नामकरण, उपनयन, जातकर्म, दक्षिणायन, उत्तरायणसंक्रान्ति जैसे पर्वो को मनाने का प्रावधान था। इन पर्वो पर ब्राह्मणों, मंदिरो को दान-दक्षिणा देना पुण्य कर्म समझा जाता था।

गुर्जर-प्रतिहार शासकों के अभिलेखों से भी विभिन्न वर्गो द्वारा दान देने की पुष्टि होती है जिसमें राजा से लेकर जन साधारण तक सभी वर्गो द्वारा अपने सामर्थ्य के अनुसार दान दिया जाता था।

दान का समय -

गुर्जर-प्रतिहार कालीन अभिलेखों से मालूम होता है कि दान उचित समय एवं अनुकूल नक्षत्रों में दिया जाता था। गुर्जर-प्रतिहार कालीन अभिलेखों में बहुत से पावन पर्वो के समय दान देने का विवरण आया है जैसे सूर्य ग्रहण, चन्द्रग्रहण, पूर्णमासी, अमावस्या, कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष आदि। चन्द्रग्रहण व सूर्यग्रहण के समय नदी, संगम एवं तीर्थ-जल से स्नान करके ब्राह्मणों को भूमिदान अथवा ग्रामदान देते थे। इसी क्रम में पितरों को तर्पण भी किया जाता था। गुर्जर-प्रतिहार कालीन अभिलेखों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि इस काल में दान के लिए अमावस्या से अधिक महत्व पूर्णिमा का था। क्योंकि दान पत्रों में अमावस्या[cccxxvii] का उल्लेख 3 बार जबकि पूर्णिमा[cccxxviii] उल्लेख 5 बार आया है। तिथियों का भी उल्लेख हुआ है जैसे-चौदहवीं[cccxxix], पहली[cccxxx] तिथि महत्वपूर्ण थी। इस प्रकार यह पता चलता है कि कृष्णपक्ष की प्रथम व शुक्ल पक्ष की आठवीं व चौदहवीं तिथि दान के लिए महत्वपूर्ण थी तथा इन दिनों दान देना शुभ माना जाता था।

गुर्जर-प्रतिहारकालीन अभिलेखों एवं दानपत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि भिन्न-भिन्न महीनों का भी अपना महत्व था क्योंकि इन महीनों में दान देने का विवरण मिलता है। बारह महीनों में से अभिलेखों में आठ

महीनों का उल्लेख है जिसमें दान दिया गया । निम्नतालिका से महीने का महत्व और भी स्पष्ट हो जायेगा कि किस महीने का उल्लेख दान हेतु अभिलेखों में कितनी बार आया है-

| | |
|---|---|
| चैत्र[cccxxxi] | तीन बार |
| बैशाख[cccxxxii] | दो बार |
| ज्येष्ठ[cccxxxiii] | दो बार |
| आषाढ़ | -- |
| श्रावण[cccxxxiv] | दो बार |
| भाद्रपद[cccxxxv] | दो बार |
| अश्विन[cccxxxvi] | एक बार |
| कार्तिक[cccxxxvii] | एक बार |
| मार्गशीर्ष | -- |
| पौष | -- |
| माघ | -- |
| फाल्गुन[cccxxxviii] | दो बार |

इन महीनों में गुर्जर-प्रतिहार कालीन प्रशस्तियाँ व दानपत्र आषाढ़, मार्गशीर्ष (अगहन), पौष, माघ महीनों का उल्लेख नहीं करते । सबसे अधिक बार

नामोल्लेख चैत्र मास का है ऐसा प्रतीत होता है की जिस महीने का नामोल्लेख दानपत्रों में नहीं हुआ उन महीनों में कोई शुभकार्य सम्पन्न नहीं होता था। बाकी शेष महीनों में ही शुभ कार्य सम्पन्न होते थे।

गुर्जर-प्रतिहार कालीन अभिलेखों में दिनों का भी विवरण मिलता है जिनमें दान आदि दिया जाता था। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक दिन होता था। निम्न तालिका से दिनों का महत्व सूचित होता है-

| | |
|---|---|
| रविवार[cccxxxix] | नौ बार |
| सोमवार [cccxl] | दो बार |
| मंगलवार[cccxli] | तीन बार |
| बुधवार[cccxlii] | दो बार |
| बृहस्पतिवार[cccxliii] | तीन बार |
| शुक्रवार[cccxliv] | एक बार |
| शनिवार[cccxlv] | एक बार |

इस तालिका से ऐसा प्रतीत होता है कि इन दिनों में दान हेतु रविवार का विशेष महत्व था  क्योंकि इसका उल्लेख दानपत्रों में नौ बार आया है। शुक्रवार, शनिवार के दिन कम महत्व के थे क्योंकि दानपत्रों में इनका उल्लेख एक-एक बार आया है।

**दान दाता**

दान देने वालों में सर्वप्रथम राजन् वर्ग का उल्लेख किया जा सकता है जिसके स्वयं के द्वारा या उनके अधिकारियों के द्वारा उसकी तरफ से दान दिया जाता था। महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख[cccxlvi] में वटयक्षिणी मंदिर जिसका शासन प्रबंध हरि ऋषिश्वेर मठाधीश द्वारा देखा जाता था। इन्हें शासक द्वारा एक गांव (सन् 946 ई०) दान में दिया गया । हड्डाला ताम्रपत्र में महाराज महीपाल के सामन्त द्वारा उनकी आज्ञा से धरणिवराह नामक उनका सामन्त द्वारा वर्द्धमान जिले में अवस्थित विम्कला गांव महेश्वराचार्य नामक ब्राह्मण विद्यार्थी को सभी करों से मुक्त एक गांव दान में दिया।[cccxlvii] सियदोणी अभिलेख में समाज के विभिन्न वर्गो यथा- महासामन्ताधिपति, व्यापारीवर्ग, तांबुल बेचने वाले, तेलमिल मालिक, शक्कर बनाने वाले, सुत्रधार, पत्थर काटने वाले आदि द्वारा विष्णु मंदिर, शंकर जी का मंदिर को दान देने का उल्लेख मिलता है।[cccxlviii]

**दान प्राप्त कर्त्ता**

गुर्जर-प्रतिहार काल में धार्मिक कार्य के प्रयोजन से अधिकतर दान ब्राह्मण वर्ग, ब्राह्मण विद्यार्थी तथा मंदिरों को दिया जाता था। महेन्द्रपाल प्रथम के ऊणा अभिलेख[cccxlix] में अवनिवर्मन द्वितीय जो महेन्द्रपाल प्रथम का महासामन्त था, उसके द्वारा तरूणादित्य नामक सूर्य मंदिर को अम्बुलका नामक जमीन दान में देने की चर्चा है। सियदोणी अभिलेख[cccl] में विष्णु मंदिरो के अलावा घोड़े के व्यापार से प्राप्त होने वाली आय का एक भाग

मंदिर के पुजारी को, एक भाग बलि देने वाले स्थान को तथा एक भाग पृथुदक नामक पवित्र तीर्थ स्थान को विभिन्न गांवो के व्यापारियों, राजा इत्यादि की तरफ से दान देने का उल्लेख मिलता है।

**दान में दी जाने वाली वस्तुएँ**

गुर्जर-प्रतिहार काल में लोगों द्वारा अपने सामर्थ्य तथा शक्ति के अनुसार दान दिया जाता था जैसे- राजा, सामन्तों जो कि शक्तिशाली तथा अधिकारयुक्त थे, उनके द्वारा अधिकतर गांव, भूमि का टुकड़ा इत्यादि दान में देने का उद्धरण मिलता है। सियदोणी अभिलेख[cccli] में व्यापरियों द्वारा दान में दी गई वस्तु, जो निम्नलिखित है-अबसानिका (घर), विधि (दुकान) जो कि भगवान विष्णु के मंदिर से संबंधित था। भूमि का टुकड़ा, एक कूपा मदिरा, 1350 आदि वराह, द्रम्म, दैनिक भत्ता, विभिन्न सिक्कों का 1/4, 1/3, 1/2 भाग प्रतिमाह। एक पालिका पान के पत्ते, एक पालिका तेल का, दुकान के किराये का 1/4 भाग दान  के रूप में देने का उल्लेख है। महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख में व्यापारिक समुदाय द्वारा चैत्र के महीने में वटयक्षिणी देवी के मंदिर को 100 फूलों की मालाएं, दो पान , केसर, पेड़ के पत्तों का गुच्छा व मेवा अर्पित करने का उल्लेख मिलता है।[ccclii]

**दान के साक्षी (गवाह)**

गुर्जर-प्रतिहार काल के अभिलेखों में दान देने के साक्षी का भी उद्धरण मिलता है। जो उस समय के दान को अत्यधिक मान्य बनाते है तथा जो कानूनी रूप से महत्त्वपूर्ण थे। हंसोट अभिलेख[ccclii] में राष्ट्रपति, ग्रामपति, भोगिक, महत्तर, कुटुंबिक, पांचकुलिक, दण्डपाशिक, मध्यस्थ आदि के संज्ञान में एक गांव विम्कला महेश्वराचार्य पुत्र शिवदेवाचार्य नामक ब्राह्मण को दान में दिया गया। आहार प्रस्तर अभिलेख में 99 साल की कानूनी मान्यता पर सुवर्णिका महाजन द्वारा एक घर को खरीदा गया, जो कि कचंनश्री मंदिर से संबंधित था।[cccliv] धार्मिक उन्नति के लिए दिये गये दानों को कानूनी आधार मजबूती से प्रदान करता है।

## देवपूजन की विधि

हिन्दुओं में बहुदेवोपासना और मूर्तिपूजा का प्रचलन था। मूर्ति पूजा के अनेक विधि-विधान था। तत्कालीन समाज में देवी-देवताओं के पूजन में मुख्य रूप से दो विधियों का प्रयोग किया जाता था प्रथम सार्वजनिक पूजन, जो देवालयों तथा मंदिरो में सम्पन्न होता था तथा द्वितीय व्यक्तिगत पूजन, जो घरो में होता था। देवालयों में पूजन करने वाले पूजारियों को आचार्य कहा जाता था। पूजन में पुरोहित की भूमिका प्रमुख थी ये सर्वविद्या पारंगत होते थे। पूजन कार्य के साथ-साथ ये लोग विवाह जैसे धार्मिक कृत्य भी कराते थे।

## देव पूजन सामग्री

प्रतिहार काल में देवी-देवताओं के पूजन में सर्वप्रथम घर को गोबर से लीपकर आंगन में चौक बनाया जाता था। जिस देवता की पूजा करनी होती, उसकी मूर्ति के साथ कुश, आभूषण, माला, फूल, धूप, अग्नि, लाल या पीला वस्त्र इत्यादि सामग्री का प्रयोग किया जाता था। साथ ही प्रसाद तथा पंचगव्य (दही, दूध, गोबर, गोमूत्र, गंगा जल) भी सम्मिलित कर लिया जाता था। महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख[ccclv] में केसर, फूलों की माला, पत्तों के गुच्छे, पान के पत्ते, मेवा आदि पूजन सामग्री वटयक्षिणी देवी को अर्पित करने का उल्लेख है।

**तीर्थस्थान और तीर्थ यात्रा**

पवित्र स्थानों या तीर्थो के दर्शन से विचार पवित्र होते है, कर्मों के बंधन से मुक्ति मिलती है, आध्यात्मिक लोगों से सम्पर्क होता है, पुण्य की प्राप्ति होती है और स्वर्ग मिलता है। शंकराचार्य जैसे महान धार्मिक नेताओं की यात्रा से लोगों में भावनात्मक व धार्मिक समन्वय की स्थापना हुई । तीर्थो में धन का दान करने से समाज का आर्थिक सन्तुलन बनता था। यात्रा के समय संयम से रहना नैतिक अनुशासन का साधन था। तत्कालीन साहित्य में दस प्रमुख तीर्थों का वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है- गया, वाराणसी, हरिद्वार, पुष्कर, प्रभास, नैमिषक्षेत्र, केदार, कुरूक्षेत्र, उज्जयिनी तथा प्रयाग है। नदियों को प्राकृतिक या दैवतीर्थ होने के कारण अत्यन्त पवित्र माना गया है। गंगा को सभी नदियों में सर्वाधिक पवित्र मानने के कारण त्रिदैवत्यतीर्थ की संज्ञा दी

गई है। वाराणसी और उज्जयिनी शिव की तथा मुल्तान सूर्य की उपासना के लिए प्रसिद्ध था। पुराणों में भी हृदय की पवित्रता और इन्द्रिय विग्रह के बिना तीर्थयात्रा को व्यर्थ बताया गया है।[ccclvi]इस काल में अनेक प्रकार के अंधविश्वास भी प्रचलन में थे।

उपर्युक्त विवरणों की व्याख्या को देखते हुए तत्कालीन धार्मिक स्वरूप के निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है।-

गुर्जर-प्रतिहार काल में जो एक महत्वपूर्ण बात हमें दिखाई देती है वह है देवी का महत्त्व, जो सम्पूर्ण जनमानस में व्याप्त था किन्तु उनका दायरा लोक संस्कृति अर्थात् गांव, विषय (जिला) इत्यादि की रक्षा प्रदायी देवी के रूप में था या यह भी कह सकते है कि आम जनता की संरक्षण व भरण-पोषण करने वाली देवी के रूप में वह ज्यादा लोकप्रिय थी इसीलिये हमें प्रतिहार अभिलेखो में  वर्णित देवियों के क्षेत्रीय नाम प्रचलित दिखाई पड़ते है किन्तु जब हम राजदरबार की धार्मिक संस्कृति की ओर देखते है तो वहां अधिकतर पुरूष देवता में ही आस्था दिखाई देता है। यद्यपि ये शासक सहिष्णु थे।

वैष्णव धर्म में भी हमें प्रतिहार काल में दो तरह की आस्थाएं दिखती है। एक कृष्ण भक्ति व दूसरी रामभक्ति (विष्णु भक्ति) ओंसिया (जोधपुर) के मंदिरो से हमें कृष्ण की भक्ति का पता चलता है जिसमें उनके बालरूप की क्रीड़ाओं का कथात्मक अंकन हुआ है। ये अंकन मुख्यत: प्रारम्भिक मंदिरो पर (8वीं -9वीं श० ई०) ही उत्कीर्ण है।    इस काल में राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए जनता का समर्थन होना तथा विभिन्न धर्मो व देवी-देवताओं में आस्था रखने वालों की स्वीकृति होना अत्यन्त आवश्यक थी। जिसके कारण

राजाओं द्वारा विभिन्न धार्मिक वर्गो को मान्यता दी गई होगी। जिसमें से एक कृष्ण की भक्ति करने वालो की भी थी, जो कि पशुचारक समाज से जुड़े हुए होंगे तथा वह समाज में शक्तिशाली व सम्मानीय स्थान रखते होंगे। इस समय पशुचारण वर्ग विशेषकर अहीर वर्ग प्रमुख धार्मिक संगठन के रूप में रहे होंगे तथा राजस्थान व सौराष्ट्र उनका प्रमुख गढ़, इसीलिये सम्भवत: हमें कृष्णभक्ति का प्रसार-प्रचार उसी तरफ (ओसियां) ज्यादा मिलता है। जो उस वर्ग के द्वारा राजा के समर्थन के लिए अत्यन्त आवश्यक रहा होगा।

शैव व वैष्णव दोनो सम्प्रदाय एक ही सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) के दो प्रमुख अंग माने जाते थे। एक ही नगर या परिवार में रहने वाले लोग शिव या विष्णु को समान श्रद्धा से देखते थे। प्रतिहार शासक वत्सराज शिवभक्त था तो नागभट्ट द्वितीय विष्णु भक्त, उसी प्रकार प्राय: मंदिरो में विष्णु प्रतिमा के साथ ही शिव की भी पूजा की जाती थी। शैवाचार्य शैव मंदिरो के साथ-साथ वैष्णव मंदिरो की भी देखभाल करते थे। प्राय: दोनो सम्प्रदाय समान रूप से जन मानस के आदरणीय थे किन्तु जब हम तथ्यों का आकलन करते है तो जनमानस में वैष्णव सम्प्रदाय के प्रति आस्था ज्यादा दिखती है। जैसे- विष्णु के कई नाम मिलते है उसी तरह 13 विष्णुमंदिरो के बारे में हमें प्रतिहार अभिलेखों से पता चलता है जब कि शिव के विष्णु से कम नाम प्रचलित थे तथा शिव मंदिर का उल्लेख हमें अभिलेखों में भी कम मिलता है। यद्यपि मंदिर के रखरखाव के लिए शैवाचार्य नियुक्त होते थे। जो वैष्णव मंदिरों की भी देखभाल करते थे किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शिव एक मूर्ति के रूप में ही श्रद्धेय थे। जिनका स्थापना वैष्णव व दुर्गा मंदिरो में होती थी। सम्भवत:

तत्कालीन जनमानस की वैष्णव भक्ति के प्रति अधिक लगाव ही गुर्जर-प्रतिहार राजाओं के द्वारा आदिवराह (मिहिरभोज) विष्णुअवतार (नागभट्ट प्रथम) जैसे उपाधियां धारण करना तथा राजशेखर द्वारा महेन्द्रपाल प्रथम को 'रघुकुलतिलक' कहना इत्यादि उनका प्रजा में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए एक प्रयास था जिसका माध्यम धर्म बना।

गुर्जर-प्रतिहार शासको के राज्य में पूर्ण रूप से धार्मिक सहिष्णुता विद्यमान था। वैष्णवों और शैवों के संबंध परस्पर अच्छे थे। सामान्यत: मंदिरों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा सभी की मूर्तियां स्थापित की जाती थी। प्रतिहार राजाओं द्वारा अलग-अलग धर्म को मानते हुए भी वह सभी धर्मो के प्रति उदार नीति अपनाये हुए थे। प्रतिहार राजाओं ने प्रजाहित को ही सबसे बड़ा धर्म माना था जो उनके वराह तथा वामन अवतारों के विरूद् तथा प्रतिमा के उल्लेख से पता चलता है जिसके अनुसार विष्णु ने पृथ्वी का उद्धार किया था वैसे ही उन्होंने पृथ्वीरूपी प्रजा के उद्धार के लिये स्वयं को समर्पित किया तथा उसे प्रमुख कर्त्तव्य व धर्म माना।

**षष्टम् अध्याय**

# गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित कला एवं शिक्षा-साहित्य

सांस्कृतिक चेतना सदैव आदर्शों और मूल्यों से प्रारंभ होती है जो प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त होती है। इस तथ्य की प्रामाणिकता गुर्जर-प्रतिहार कालीन निर्माणों से भी सिद्ध होती है।

गुर्जर- प्रतिहार कला के अवशेष हरियाणा और मध्य भारत के एक विशाल क्षेत्र में, जिसमें सम्पूर्ण उ० प्र० तथा मध्यप्रदेश और राजस्थान के आंशिक भूभाग सम्मिलित है, उपलब्ध है। प्रतिहारों द्वारा निर्मित मंदिर स्थापत्य और कला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी अलंकरण शैली है, जिसमें सज्जा और निर्माण शैली का पूर्ण समन्वय प्रदर्शित हुआ है। अनेक मंदिरों और मूर्तियों का पता चलना प्रतिहारों की सांस्कृतिक अभिरूचि को दर्शाता है। मानव शरीर भक्ति का माध्यम है इसलिए हिंदू मंदिरों की बनावट मानव शरीर के अंगों के समान ही रची गई है जैसे- पाद, जंघा, ग्रीवा, नासुका, शिखर इत्यादि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में आत्मा का वास होता है उसी प्रकार मंदिरो के गर्भगृह में भगवान की मूर्ति रखकर मंदिरो को एक जीवित आस्था का केन्द्र माना जाता है।[ccclvii]गुर्जर-प्रतिहारों के मंदिर भी इस भावना से अलग न थे।

अपने पूर्ण निर्धारित रूप में प्रतिहार मंदिरों में मुखमण्डप, अन्तराल और गर्भगृह के अतिरिक्त अत्यधिक अलंकृत अधिष्ठान, जंघा और शिखर होते है। विभिन्न स्थलो से प्राप्त  गुर्जर-प्रतिहार कालीन मंदिर इस प्रकार है-

**देवगढ़ (मंदिर संख्या 12)**

देवगढ़ उ०प्र० के ललितपुर जिले में स्थित है। यह स्थान गुप्तकालीन दशावतार मंदिर के उत्कृष्ट कला और स्थापत्य के लिए विख्यात है। यह इस क्षेत्र में पर्वत अधीलिका पर निर्मित है। निर्माण योजना में यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है। इसमें अर्द्धमण्डप, अन्तराल तथा गर्भगृह है। वेदी वध में खुर, लतापत्र तथा ताड़पत्र से अलंकृत कुंभ तथा चैत्य से अलंकृत कलश बंधनों का समावेश है वर्तमान में यह पंचायतन शैली का अच्छा प्रासाद है।[ccclviii] यहां हिन्दू और जैन दोनों प्रकार के मंदिरों का निर्माण किया गया है। यहां पर प्राप्त अभिलेखिक साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि यहां कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों का शासन था और उन्होंने यहां के मंदिर निर्माण में उत्कृष्ट सहयोग दिया था। भोज के ग्वालियर अभिलेख में इसे लुअच्छगिरि कहा गया है।[ccclix] यहां का शान्तिनाथ मंदिर और कुरैयावीर का मंदिर प्रतिहार काल में निर्मित हुआ।

**देवगढ़ (मंदिर क्रमांक 15)**

मंदिर में उत्कीर्ण अलंकरण के अभिप्रायों से प्रतीत होता है कि यह मंदिर देवगढ़ स्थित मंदिरो में सर्वश्रेष्ठ है। मंडप में 4 स्तम्भ और 12 स्तम्भिकाएं है। प्रदक्षिणा पथ होने के कारण यह सांधार प्रासाद है। गर्भगृह की सज्जा तथा उसमें स्थित मूर्तियां अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अन्तर्विन्यास में यह दशावतार मंदिर (देवगढ़) से साम्य रखता है।

**जराईमठ मंदिर (बरूआ सागर)**

यह मंदिर उ० प्र० के झांसी जिला मुख्यालय से 22 कि०मी० उत्तर में झांसी -मऊरानीपुर मार्ग पर स्थित है। बरूआ सागर नगर से इसकी दूरी 3 कि०मी है। स्थानीय लोग इसे जराईमाता अथवा जराइमठ कहते है। वास्तुकला के आधार पर इसका निर्माण काल 950 ई० निर्धारित होता है। पंचनिर्माण योजना में निर्मित पूर्वाभिमुख देवालय का शिखर नष्ट प्राय है। मंदिर का गर्भगृह आयताकार है जिसका वितान तीन भागों में विभक्त है तथा यह विभिन्न अलंकरणो से अलंकृत है।

**रामेश्वर मंदिर (आमरौल)**

आमरौल ग्राम ग्वालियर से 30 किमी० दक्षिण में स्थित है। यह स्थान प्रतिहार कालीन मंदिरो और उनके अवशेषों के लिए प्रसिद्ध है-पंचरथ निर्माण योजना में निर्मित इस देवालय में गर्भगृह तथा अतंराल है। शिखर शक्वाकार है। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार व सादा है। गर्भगृह का वितान पुष्प निर्मित वर्तुल के मध्य कमल पुष्प उत्कीर्ण कर बनाया गया है। कृष्णदेव[ccclx] के

मतानुसार यह मंदिर तेली के मंदिर का पूर्ववर्ती है तथा इसके निर्माण की संभावित तिथि 8वीं श०ई० हो सकती है।

**मालादेवी मंदिर (ग्यारसपुर)**

यह स्थान विदिशा के 85 किमी० उत्तर पूर्व में स्थित है। यहां ग्राम के चारो ओर बिखरें पुरावशेषों से इसकी प्राचीनता का बोध होता है। इन अवशेषों में मालादेवी का मंदिर सबसे बड़ा है जो एक रमणीय पहाड़ी के ढलान पर है। निर्माण योजना में गर्भगृह त्रिरथ तथा शिखर पंचरथयुक्त है यह सांधार प्रासाद है।[ccclxi] गर्भगृह में तीन जिन प्रतिमाएं है किन्तु कोई भी प्रतिमा मूलनायक की नही है। इसी प्रकार ललाटबिम्ब में भी किसी प्रतिमा का अभाव है। अत: यह मंदिर किसी तीर्थंकर को समर्पित था, निर्धारित करना कठिन है। मालादेवी मंदिर, योजना में पूर्ण विकसित है इसमें 'मुख्य मण्डप, मण्डप, अन्तराल, गर्भगृह और आन्तरिक प्रदक्षिणा पथ है।' इसका निर्माण काल 900 ई० निर्धारित किया गया है।

**उमरी सूर्य मंदिर (टीकमगढ़)**

यह स्थान म० प्र० के टीकमगढ़ जिला मुख्यालय से 40 किमी० दक्षिण-पूर्व-दक्षिण में है। यह प्रतिहार काल का एक उम्दा मंदिर है। ऊंची जगती पर निर्मित पंचरथ मंदिर के निर्माण योजना में मंडप, अन्तराल और गर्भगृह है। इनमें सूर्य, नवग्रह, गणेश, नृसिंह, यम, वायु, इन्द्रादि आदि देवी-देवताओं का प्रदर्शन है। मंडप में मिश्रक वर्ग के चार स्तम्भ है तथा दक्षिणी दीवार पर

अभिलेख है। मंदिर की वस्तुकला के आधार पर इसका निर्माण काल 9वीं श० ई० का निर्धारित किया गया है। इस मंदिर का सबसे उल्लेखनीय पक्ष यह है कि इस मंदिर योजना का उत्तरी भाग पूरा शिला के सतह पर व इसे कुछ काट कर बनाया गया है। मेसटर माइकल का कहना है कि यह अभियांत्रिकी दक्षता का अप्रतिम उदाहरण है। यह गुर्जर-प्रतिहार मंदिर चरण के अंतिम चरण में 9वीं शताब्दी में बनवाया गया था।

## सूर्य मंदिर (मड़खेरा)

यह स्थान टिकमगढ़ जिला मुख्यालय से 18 किमी० उत्तर में स्थित है। मड़खेरा का अर्थ है मंदिर का ग्राम। इस मंदिर का निर्माण 9वीं शताब्दी ई० में हुआ है। वेदिबंध में लट, कुंभ का समावेश है। जघां दो भाग में विभाजित है- ऊपरी और नीचला हिस्सा, ऊपरी हिस्सा चौड़ा है। यहां स्तंभ अलंकृत है। वितान जो मण्डप पर बने है स्तम्भों पर टिके हुए है।

## ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर

यह एकाश्म चट्टान को काटकर बना हुआ मंदिर ग्वालियर दुर्ग के पूर्वी भाग में स्थित है। इसका निर्माण प्रतिहार राजा भोज के समय ग्वालियर दुर्ग के कोट्टपाल अल्ल द्वारा करवाया गया था।[ccclxii] यह विष्णुमंदिर है। इसमें मंदिर स्थापत्य के प्राय: सभी अंगो का समायोजन है इस प्रकार शैलोत्कीर्ण मंदिर होते हुए भी यह पहाड़ी से बिल्कुल अलग है। इसमें शिखर तथा अलंकरण की पूरी व्यवस्था की गई है। वितान में पूर्ण विकसित कमल का फूल उत्कीर्ण है जिस पर स्थानक विष्णु की प्रतिमा स्थापित है। गर्भगृह की दाहिनी

दीवार में प्रतिहार राजा भोज के समय के दो अभिलेख उत्कीर्ण है, अभिलेख में मंदिर के निर्माण की तिथि 850 ई०उत्कीर्ण है।[cclxiii]

**तेली का मंदिर (ग्वालियर)**

तेली का मंदिर ग्वालियर दुर्ग में पूर्वाभिमुख स्थित है। गुर्जर-प्रतिहार शैली का भव्य मंदिर होने के साथ ही स्वरूप में यह अपवादात्मक है।[ccclxiv] ऊँची जगती पर स्थित देवालय में आयताकार गर्भगृह, मंडप और अतंराल है। एक सादे किन्तु वृहद बंधन के ऊपर मंदिर का वेदिबंध आधारित है। जंघा में प्रत्येक दिशा में दीर्घीकृत चैत्य से युक्त तीन-तीन देवकोष्ठ है। शिखर भाग द्वितल है। मंदिर निर्माण नागर शैली का है। इसका निर्माण काल 850 ई० प्रतीत होता है। आयताकार पंथरथ मंदिर में गर्भगृह अन्तराल और एक विशाल प्रवेशद्वार है। ललाटबिम्ब पर उड़ते हुए गरूड़ का अंकन है किन्तु मंदिर की भित्तियों पर शैव परिवार के देवी-देवताओं की प्रमुखता है। मंडप चार स्तम्भों पर आधारित है। मंडप के ऊपर की धरणी में कृष्णलीला व नीचे की धरणी में कपिशीर्षक अलंकरण से अलंकृत है।

**दाने बाबा का मंदिर, रजऊआ (ग्वालियर)**

अमरौल ग्राम के पूर्व दिशा में स्थित रजऊआ ग्राम के पश्चिम में यह मंदिर पश्चिमाभिमुख बनाया गया है। इसके वेदिबंध में खुर, कुंभ तथा कलश बधंनो का समावेश है। शिखर नष्ट हो गया है। इस मंदिर की निर्माण की संभावित तिथि 9वीं श० ई० हो सकती है।

## शिवदेवालय (तेरही)

यह स्थान शिवपुरी के रनोद नगर से 10 कि०मी० दक्षिण पूर्व में है। पंचरथ निर्माण योजना में निर्मित इस मदिर में मडंप, अतंराल, गर्भगृह है। खोखई नामक शैवमठ में अंकित अभिलेख है। इसका नाम तेरम्बि बताया गया है।[ccclxv] इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि तेरही, रनोद (प्राचीन रणिपद) और कदम्बगुहा शैवमत के गढ़ थे जिनके अवशेष आज भी विद्यमान है। तेरही का शिवमंदिर शैवमठ के निकट है और स्थानीय जनों में गढ़ी के नाम से विख्यात है।

## नरेसर

नरेसर समूह के गुर्जर-प्रतिहार कालीन मंदिर म० प्र० के ग्वालियर जिला मुख्यालय से 25 किमी० उत्तर पूर्व में नरेसर घाटी में स्थित है। अभिलेखों में इसका प्राचीन नाम नलेश्वर था[ccclxvi] यहां के सरोवर के निकट एक मंदिर समूह है इस मंदिरो की निम्नांकित विशेषताएं है-

1- सभी मंदिर पंचरथ प्रकार के है। इनमें गर्भगृह और प्रवेश द्वार के मध्य अन्तराल की व्यवस्था की गई है।

2- इसके साधारण अधिष्ठान में खुर, कुंभ, कलश, कपोतिका का निर्माण किया गया है।

3- जंघा के ऊपरी भाग पर चारो ओर घण्टमाला अभिप्राय है।

4- वरण्डिका में दोहरी कपोतिका है।

5- मंदिरो के शिखर स्थूल है, जो तीन या चार भूमियों में विभक्त है।

6- प्रवेश द्वार में प्राय: चार शाखाएं है।

7- किसी भी मंदिर में मुख मण्डप नही है।

**गडरमल मंदिर (बड़ोह- पठारी, विदिशा)**

बड़ोह और पठारी दो अलग-अलग ग्राम है किन्तु दोनों ग्रामों की निकटता के कारण उन्हें बड़ोह-पठारी के सयुंक्त नाम से पुकारा जाता है। यहां के मंदिर वास्तुकला की कतिपय विशेषताओं के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इनमें गुर्जर-प्रतिहार काल तक की कला और स्थापत्य का विकास परिलक्षित होता है। पठारी में भीमगजा के समीप एक शिव मंदिर है किन्तु ललाट बिम्ब पर अंकित विष्णु की प्रतिमा से यह वैष्णव मंदिर प्रतीत होता है।

बड़ोह विदिशा जिले में स्थित है। यहां तालाब के किनारे एक मंदिर स्थित है जिसे गडरमल का मंदिर कहते है। अत्यधिक ऊँचाई के कारण यह मंदिर दूर से ही दिखाई देने लगता है। ललाटबिम्ब पर शक्ति के अकंन से शाक्त मंदिर प्रतीत होता है। इस मंदिर की आयोजना जराईमठ, बरूआसागर तथा तेली मंदिर, ग्वालियर के समान है। इसकी जगती पर सात लघु मंदिरो के अवशेष प्राप्त होते है। इस मंदिर में नृत्तगणेश की एक सुन्दर प्रतिमा है।

**बटेश्वर महादेव देवालय (मुरैना)**

पचंरथ निर्माण योजना में निर्मित इस देवालय में अंतराल और गर्भगृह है। वेदिबंध में खुर, कुंभ तथा कलश बंधनों का समावेश है। जघां अन्य

देवालयों की अपेक्षा अधिक ऊँचा है। पंचात्मक शिखर के मध्य में चैत्य अलंकरण है। चौकोर शिलाखण्ड के ऊपर स्थित आमलसार पर कलश स्थापित है। नंदिनी द्वार के लतापत्र, खल्व, पुष्प, घटपल्लव तथा लतापत्र युक्त शाखांए है। यही गंगा, यमुना, नाग-नागी सहित प्रदर्शित है। ललाट बिम्ब में आकाशचारी गरूण है। चन्द्रशिला में कमलपुष्प सहित दो सिंह उत्कीर्ण है।

**अन्तर्विन्यास**

आयताकार अतंराल में चार स्तम्भ है। द्वार से संलग्न स्तम्भ सादे है तथा गर्भगृह से संलग्न स्तम्भों में पूजकों तथा वादकों का मोहक अंकन है। वर्गाकार गर्भगृह की दीवारें अलंकरणहीन है। धरणी और समतल वितान, कमल रत्न, पुष्पलता तथा व्याल से अलंकृत है। देवालय में उत्कीर्ण लिपि के अध्ययन से प्रतीत होता है कि यह संभवत: 8वीं श० ई० में निर्मित किया गया होगा।

इस समूह का एक अन्य देवालय भी पंचरथ निर्माण योजना में निर्मित है। त्रिअण्डक शिखरयुक्त देवालय में अतंराल और गर्भगृह है। जघां अपेक्षाकृत कम ऊँची है। इसमें चैत्य उश्रृगों से आच्छादित देवकोष्ठो में हिन्दू देवी-देवता प्रदर्शित है। ललाटबिम्ब में गरूणासीन विष्णु के दाएं पार्श्व में सप्तमातृकाएं तथा वाम पार्श्व में विष्णु के अवतार प्रदर्शित है।

**नचनाकुठार**

यह स्थान पन्ना जिले से 55 किमी० दक्षिण पूर्व में स्थित है। यहाँ गुप्तकालीन पार्वती का एक प्रसिद्ध मंदिर है। इसी पार्वती मंदिर के समीप एक अन्य देवालय है जिसे चौमुखनाथ का मंदिर कहते है।[ccclxvii] यह मंदिर गुर्जर-प्रतिहारकाल में निर्मित बताया जाता है। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार है जिसमें चतुर्भुज महादेव का एक उत्कृष्ट शिवलिंग प्रतिष्ठित है। गर्भगृह के सामने एक अर्वाचीन बरामदा है। मण्डप और गर्भगृह  के बीच में अन्तराल है। मंदिर की वाह्य दीवारों पर अनेक रथिकाएं है। जिसमें गणेश, यम, कुबेर, सूर्य, महिषासुरमर्दिनी, कामदेव, वृषभारूढ़ तथा नृत्ययुक्त शिव की प्रतिमांए थी। अब इन रथिकाओं की प्रतिमाएं लुप्त हो चुकी है। यह मंदिर 9वीं श० ई० के तृतीय चरण में निर्मित हुआ।

**छोटा शिव मंदिर (महुआ)**

ऊँची जगती पर निर्मित इस देवालय में गर्भगृह और मडंप है। वास्तु पुरूष मंडल में वर्णित मडंल निर्माण के नियमों का पालन करते हुए इस मंदिर के वेदिबंध में खुर, तुलापीठयुक्त कुंभ तथा कलश बंधन समाविष्ट है। यहां पर चामुण्डा देवी के मंदिर के अतिरिक्त दो अन्य शिव मंदिर भी है। इनमें से पहला शिव मंदिर शिखर विहीन है और अभिलेख में इसे शिव मण्डपिका कहा गया है। इसकी निर्माण तिथि 7वीं श० ई० है। दूसरा मंदिर शिखर युक्त है और संभवत: 8वीं श० ई० में बनाया गया । चामुण्डा देवी को समर्पित मंदिर को स्थानीय जन खेटा पति का मंदिर कहते है।

**ओसियां मंदिर**[ccclxviii]

कथात्मक अंकन के अन्तर्गत ओसिया का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है यहां कृष्ण की लीलाओं से संबंधित अनेक दृश्य मिलते है जिनका विस्तृत अंकन हुआ है। ओसिया में मुख्यत: 8-9वीं श० ई० के मंदिरों पर इनका उत्कीर्णन हुआ है। जो अन्य समकालीन केन्द्रों की तुलना में नि:सन्देहअधिक विस्तृत, सुनियोजित, परम्परानिर्दिष्ट और महत्वपूर्ण है। ओसियां में सामान्यत: मूर्तिकला में निर्मित कृष्ण के बाल लीलाओं को ही दर्शाया गया है-

**कृष्ण जन्म एवं गोकुल गमन -** हरिहर मंदिर के उत्तरी कण्ठ पर प्रथम दृश्य में बन्दीगृह के अधखुले कपाट के दूसरी ओर प्रसूति गृह का दृश्याकंन है। ओसिया में कृष्ण जन्म के कुल 6 उदाहरण है और सभी दृश्यों में एक जैसा अंकन है।

**माखन चोरी-** बालकृष्ण के द्वारा माखन की चोरी या यशोदा के दधिमंथन का दृश्यांकन है। दृश्य में एक आसन पर प्रसन्नचित्त नन्द की आकृति आसीन है। बालरूप श्री कृष्ण को पात्र से मक्खन निकालते निरूपित किया गया है। कृष्ण की चंचलता दृष्टव्य है।

**योगमाया वध -** इस मंदिर में योगमाया के वध का दृश्यांकन है। इसमें कंस को गतिशील मुद्रा में योगमाया का वध करने के उद्देश्य से बालिका को पकड़े और शिला पर पटकने की मुद्रा में आकारित किया गया है।

**पूतना वध -** हरिहर मंदिर -1 में योगमाया के पश्चात् पूतना वध का अंकन हुआ है जिसमें भयंकर स्वरूप वाली पूतना एक मंचिका पर अर्धपर्यकासंनी प्रदर्शित है।

**गोवर्धन धारण -** सूर्य मंदिर-3 के दक्षिणी कर्ण भाग और अन्य मंदिरों की अनुपंक्ति में कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण का दृश्य उत्कीर्ण है। हरिहर मंदिर-1 में सामान्य रूप से कृष्ण अपने बाएं हाथ पर पर्वत उठाएं दिखाए गये है।

**कालिया दमन -** कृष्ण लीला दृश्यों में कालिया दमन का विस्तार के साथ अंकन हुआ है। कथानक में कदम्ब वृक्ष से कृष्ण कूदकर कालिया नाग का दमन करते और कलिया के विनाश से भयभीत उसकी पत्नियों तथा स्वयं कालिया द्वारा क्षमा याचना  का अंकन हुआ है।

इस प्रकार ओसिया में कृष्ण के जन्म से लेकर कंस की रंगशाला तक के दृश्यों का विस्तार से अंकन हुआ है। जबकि अन्य प्रतिहार कालीन कला के केन्द्रो पर कृष्ण लीला का इतना विस्तृत अंकन नहीं मिलता है।

## गर्गज महादेव मंदिर (गुना)

यह मंदिर मध्यप्रदेश के गुना जिले के इन्दौर नामक ग्राम में ऐशगढ़ - कदवाहा रोड पर स्थित है।[ccclxix] इस मंदिर योजना में अतंराल और गर्भगृह दोनो ऊँचे चबूतरे पर निर्मित है। मंदिर व्रतास्थानक शैली में बना है जिसमें द्वादशभद्रा है।[ccclxx] प्रत्येक भद्रा एक - एक स्थान छोड़कर जघां से जुडा हुआ है। यही योजना शिख्र तक विस्तारित है। नंदिनी द्वार को पांच  चौखटों  से सजाया गया है जो पत्र, नागबंध, गंधर्व, खल्वसखा और गंगा- यमुना की मूर्तियां है। उदुंबरा मुड़े हुए शेरों की आकृति से सजाये गये है केन्द्र में कमल का फूल है। उतंग पांच प्रकोष्ठों से सुसज्जित है साथ में चैत्य - उद्गम भी है।

आन्तरिक रूप में अतंराल स्तंभो पर आधारित है। ये सब पुष्प और लताओं से सुसज्जित है जो प्रतिहार काल की अपने आप में अनोखा फैशन प्रारूप है। स्तम्भ जो गर्भगृह के एक कोने पर है, इसी योजना से सजाया गया है। धरणी को भी पुष्प और लताओं से अच्छे प्रकार से सजाया गया है। समतल वितान भी इसी योजना से सजाया गया है लेकिन इसके केन्द्र में पूरी तरह से खिला हुआ कमल बनाया गया है।

## कुरैयाबीर मंदिर (ललितपुर)[ccclxxi]

मंदिर उ० प्र० के ललितपुर जिले में कुछदावं गांव के घने जंगल के पास स्थित है। इसकी जगती ऊँची है जिसका व्यास 30 x14 इंच ल० चौ० है। मडंप, अंतराल, गर्भगृह सभी संगत योजना से बनाये गये है और त्रियांग योजना पर मंदिर निर्मित है।

अधिष्ठान पर खुर, कुंभ और मुड़ा हुआ कलश है। जघां तीन बंधो से अलकृंत है। नीचले बंध पर घटपल्लव अन्य दो बंधो से चौड़ा है। ब्राह्मण धर्म से संबंधित मूर्तियां रखी गयी है। कर्णरथ घटपल्लव से सुसज्जित है और चमकदार पालिश से अलंकृत है। मंचिका के ऊपर मंदिर का दूसरा तल है। जो आगे की ओर द्वितल विमान के रूप में दिखाई देता है। मूल प्रासाद में वातायन जो ग्रिल्ड रूप में है। इन वातायनो से प्रकाश गर्भगृह में आता रहता है दोनों तलों पर।[ccclxxii]

ऊपरी तल सादा है और चारो तरफ साधारण स्तम्भ है। ये स्तम्भ भद्ररथ जिसके साथ चैत्य उद्गम है, जो समर्थित करते है। मंदिर में प्रवेश पूर्व की ओर से होता है जो सोपान है। द्वार पर गंगा-यमुना के साथ खल्व, रूप, व्याल भी उपस्थित है। ललाट बिंब पर गरूण का अंकन है। गर्भगृह के कोने के प्रत्येक स्तंभ जो वितान से जुड़े है, सादे है। दीवारे सादी है और अर्घ्यपट्ट आन्तरिक स्थान का शिवलिंग से सुशोभित है। मंदिर संभवत: द्वितीय चरण के 8वीं शदी ई० का निर्मित हुआ है।[ccclxxiii]

**वैष्णव मंदिर -वराह वली-**

मंदिर मध्यप्रदेश के ग्वालियर भिंड मार्ग पर रीथोरकलां रेलवे स्टेशन से 3 किमी० दूरी पर स्थित है। यह बटेश्वर समूह के मंदिर से पीछे की ओर है। सम्भवत: इसमें महामंडप बाद में जोड़ा गया है। मंदिर के पूर्व में संगत रूप से मंडप, अन्तराल, गर्भगृह है। यहां गणेश, पार्वती, कार्तिकेयइत्यादि की मूर्तियां प्राप्त हुई है। वर्गाकार ग्रीवा और उस पर आमलक स्थापित है। अमलसार कलश के बिना ही सुरक्षित किया गया है। अतंराल त्रिकोणाकार है। प्रकोष्ठ में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मूर्तियां भी है। वर्गाकार गर्भगृह, समतलवितानजिसके केन्द्र में पूरी तरह से खिला कमल है। यह वास्तु, पुरूषा- मण्डली सिद्धान्त पर बनाया गया है। वास्तविक मंदिर अंतिम चरण में 9वीं श० ई० का निर्मित है।

**बडोह स्थित मठ-**

रामगढ़ (बडोह) पर मंदिर भग्नावशेषों पर इसका निर्माण हुआ है। इसका निर्माण वर्गाकार हाता के रूप में है तथा उत्तर और दक्षिण की ओर बारामदा है। दोनों छोर पर जो बरामदा है क्षतिग्रस्त है। वर्तमान में मठ की पुन: पूरी निर्माण योजना करना कठिन है। परन्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है पूर्व में जो मंदिर (हिन्दू) जिस योजना से बनाये गये थे उससे मिलते-जुलते है जैसे- चंदेरी (सीधी) आधार पर ऊँचा चबूतरा बनाया गया जो चौकोर है। यह स्तंभो से घिरा हुआ है। कलाविदों के अनुसार यह 9वीं श० ई० का निर्मित है।

**भैंसवाहा मंदिर (सागर) -**

यह मंदिर मध्य प्रदेश के सागर जिले में रेलवे स्टेशन के उत्तर में 25 किमी० जाने पर भैसंवाहा नामक गांव में स्थित है। जगती बादामी रंग के बलुआ पत्थर से बना हुआ है और इसकी योजना पंचाग है। वेदिबंध में खुरो का समावेश है, कुंभ भी ढाला गया है। देवकुलिक वास्तविक रूप से बढ़ते हुए चैता उद्गम के रूप में दिखाई दे रहा है। मध्यबंध की तरह यहां का अलंकरण देवगढ़ के 12 संख्या मंदिर के समान और चतुर्भुज महादेव मंदिर के समान है। गर्भगृह वर्गाकार है, समतल वितान है। किर्ति के० शाह के अनुसार मंदिर का निर्माण अंतिम चरण के 9वीं श० ई० में हुआ है।[ccclxxiv]

**शिव मंदिर (खेरात) -**

भिण्ड जिले में खेरात नामक ग्राम में स्थित है जिसके पास से चम्बल नदी गुजरती है। मंदिर का द्वार बलुआ पत्थर से निर्मित है जिस पर गंगा

यमुना और नवग्रहों की मूर्तियाँ स्थापित है। तीन प्रकार के ढलाई किये गये खुरो में वेदिबंध समावेशित है। जघां दो भाग में विभाजित है। ऊपरी हिस्से में चैत्य उद्गम है जिस पर भद्ररथ पांच  अण्डक से सुसज्जित किया गया है। शिखर का कुछ भाग नष्ट हो गया है। अतरांल दो सादे स्तंभों पर विभाजित है गर्भगृह भी सुसज्जित किया गया है। गुर्जर-प्रतिहार शासको द्वारा इसका निर्माण 10 वीं श० ई० में निर्मित किया गया है।

## सर्वतोभद्रा मंदिर (इन्दौर)

यहां जैन तीर्थंकर की पद्मासन मुद्रा में मूर्ति प्राप्त होती है। दरवाजे के चौखट पर दूसरे तीर्थकर जो कि कायोत्सर्ग मुद्रा में है, का चित्र प्राप्त होता है। इसके उत्तर और दक्षिण कोने पर अम्बिका का चित्र मिलता है। इस मंदिर का दूसरा हिस्सा क्षतिग्रस्त है फिर भी कुछ हिस्से में ऋषभनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा, कमल मुद्रा में हाथ आदि मिलते है। यहाँ आधिकाधिक स्थापत्य के तत्व है किन्तु यह विनष्ट हो चुके है। दोनो मंदिर समूह 10वीं श० ई० के बताये जाते है।

## शैव मंदिर-लवान

यह द्वितल शिव मंदिर का पुरातात्विक अवशेष मध्यप्रदेश के भिण्ड जिले के सीताराम की लवान नामक गांव में है। यह वास्तविक मण्डप स्वरूप का उदाहरण हो सकता है जो सोपानों की श्रृंखला से जुड़ा हुआ है। कुछ दूसरे सोपानों की श्रृखंला प्रथम तल को भी जोड़े हुए है। ऊपरी तल के गर्भगृह में शिवलिंग प्रतिष्ठापित है। आमतौर पर चौखट नंदिद्वार के रूप में अलंकृत है।

जबकि ललाट बिम्ब पर विष्णु की प्रतिमा अंकित है। संभवत: ऊपरी तल भगवान शिव के लिए व निचला तल भगवान विष्णु के लिए समर्पित रहा होगा।[ccclxxv]

**मंदिर का पूर्वी समूह (संख्या 2)**

यह पंचाग योजना से निर्मित  है जिसमें मंडप, अन्तराल, गर्भगृह जुड़े हुए है। ऊपरी ढलाई पर वेदिबंध के साथ खुर, कुम्भ, कलशस्थापित है। जघां की योजना सादा है। ब्राह्मण धर्म की मूर्तियों का समूह जैसे- शैव, इन्द्र, वायु आदि प्राप्त हुए है। शिखर पर आमलसार और कलश गायब है। चौखट नंदिद्वार के रूप में अलंकृत है। ललाटबिंब पर गरूण उड़ते हुए है। देवी रूप की मूर्तियां भी दिखाई देती है। गंगा और यमुना अपने आराध्य के साथ आदर रूप में उपस्थित है। आयताकार अतंराल, गर्भगृह सादा, धारणी, समतल वितान से अलकृंत है। मंदिर में तीर्थंकर धर्मनाथ की मूर्ति भी प्रतिष्ठापित है। यह मंदिर द्वार लगभग 9वीं श० में निर्मित हुआ था।

**मंदिर (संख्या 9)**

यह पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर 10-11 ई० शताब्दी में निर्मित हुआ था। यह मंदिर समूह जैन तीर्थकंर को समर्पित प्रतीत होता है। प्रकोष्ठो में जैन तीर्थंकर के साथ-साथ ब्रह्मा और विष्णु के भी मूर्तियां मिलती है। यहां द्वार पर गंगा, यमुना के साथ द्वारपाल और लीली के गुच्छो से अलकृंत

नंदिद्वार प्राप्त हुए है। मंदिर योजना सादा है। शिखर पर आमलक और आमलसार प्राप्त होते थे।

**प्रमुख वास्तुगत विशेषताए -**

- मंदिरों की निर्माण योजना में भूविन्यास के विविध रूप अपनाएं गए है। यथा वर्गाकार, आयताकार गर्भगृह वाले मंदिरजिसमें छोटा अंतराल है। इसके अतिरिक्त महुआ, तेरही, ऊमरी, ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर आदि का निर्माण योजना में अतंराल के साथ मडंप का भी समावेश है।
- मंदिर तीन, पांच, सात रथ युक्त है।
- मंदिरो के वेदिबंध में खुर, कुंभ, कलश तथा कपोत बंधन है। ये भूमि तथा जगती पर निर्मित है।
- प्रथम चरण में निर्मित मंदिरो में जघां (मंदिर के सामने की दिवाल) की ऊँचाई कम है परन्तु पश्चातवर्ती मंदिरों में इसे शिल्पी द्वारा दूर करने का प्रयास किया गया है।
- पूर्वकालिक प्रतिहार मंदिरो में जंघा स्थित (मंदिर की दीवार) देवकोष्ठों के अलंकरण अभिप्राय अधिक विशद् है, इनमें अलंकरण के निमित्त शार्दूल छज्जा और अलंकृत स्तम्भिकाओं का समावेश किया गया है।
- प्रतिहार कला के प्रथम चरण में निर्मित मंदिरों के भद्ररथ शिखर की बराबरी तक जाकर समाप्त हो गया परन्तु मध्य तथा अंतिम चरण में

निर्मित मंदिरों के भद्ररथ शिखर के ऊपर तक जाकर शिखर के सौंदर्य में वृद्धि करते है।

- प्रारम्भिक मंदिरों में ग्रीवा कम ऊँची है परन्तु उमरी तथा गढ़खेरा आदि मंदिरों में बहुविध अलंकृत ग्रीवा अपेक्षाकृत अधिक ऊँची है।
- मंदिरों का मंडप चार स्तम्भो पर आश्रित है। पूर्वकालिक प्रतिहार मंदिरों के वाह्य अलंकरण का अभाव है। परन्तु मढ़खेरा तथा ग्यारसपुर के मंदिरो में मंडप की वाह्य सज्जा उच्च कोटि की है।
- ललाटबिंब में सामान्यत: आकाशचारी गरूड़, सूर्य या नटराज प्रदर्शित है।
- पूर्व तथा पश्चात्यवर्ती सभी मंदिरो के अतंराल तथा गर्भगृह की भित्तियां अलंकरणहीन है।
- पूर्ववर्ती प्रतिहार मंदिरो के गर्भगृह तथा अंतराल में स्तम्भो का अभाव है। परन्तु मध्य तथा अन्तिम चरण में निर्मित मंदिर के गर्भगृह तथा अंतराल में स्तम्भ है।
- एक तल मंदिर के साथ-साथ प्रतिहार कला में द्वितल मंदिर भी बनाने का प्रयास किया गया है। बड़ोह स्थित जैन मंदिर समूह के पार्श्वनाथ मंदिर में यह दृष्टिगोचर होता है।

गुर्जर-प्रतिहार कालीन निर्मित मंदिरो में विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाएं स्थापित है जिसमें शैव और वैष्णव सम्प्रदाय से संबंधित प्रतिमांए स्थापित है। इसके साथ ही जैन प्रतिमाएं भी मिलती है और सूर्य, शाक्त आदि देवी-देवताओं की प्रतिमाएं मिलती है।

**वैष्ण प्रतिमाएं -**

- विष्णु गरूणासन[ccclxxvi]
- नरकद्विष[ccclxxvii]
- त्रैलोक्य मोहन[ccclxxviii]
- मुरारि, वामन, विष्णु, माधव[ccclxxix]

**शैव प्रतिमाएं -**

- उमामहेश्वर[ccclxxx]
- त्रिलोचन[ccclxxxi]
- लच्छुकेश्वर महादेव[ccclxxxii]
- शम्भू[ccclxxxiii]
- सिद्धेश्वर महादेव[ccclxxxiv]
- महाकाल[ccclxxxv]
- गणपति[ccclxxxvi]

**ब्रह्मा की प्रतिमा[ccclxxxvii]**

**शाक्त प्रतिमाएं-**

- शिवशक्ति[ccclxxxviii]
- दुर्गा[ccclxxxix]
- वटयक्षिणी देवी[cccxc]
- सर्वमंगला देवी[cccxci]

**सूर्य की प्रतिमाएं[cccxcii]**

**जैन संबंधी प्रतिमाएं**[cccxciii]

**बौद्ध सम्प्रदाय की प्रतिमाएं**[cccxciv]

**शिक्षा तथा साहित्य**

**शिक्षा -**

शिक्षा का प्रारंभ उपनयन संस्कार से होता था। उपनयन के पश्चात् बालक को उपहार सहित भेजा जाता था। ब्राह्मण बालक को चौदह विद्याओं के साथ कर्मकाण्ड का अध्ययन कराया जाता था। क्षत्रिय बालक को 72 कलाएं सिखाई जाती थी।[cccxcv] किन्तु उसे अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुणता प्राप्त करना आवश्यक था। गुरूकुल में रहकर विद्या प्राप्ति की जाती थी और समाप्ति पर ज्ञान की परीक्षा ली जाती थी।

मठों का उल्लेख मिलता है यहां पर विद्यार्थी निवास करते है। अधिकांश अध्ययन-अध्यापन मौखिक था। विभिन्न विषयों पर आचार्य लोग व्याख्यान देते थे। विश्वविद्यालयों में देश के कोने-कोने से विद्यार्थी आकर एकत्र होते थे। इससे सांस्कृतिक एकता को बल मिलता था। जैन विद्याओं का भी उल्लेख मिलता है।

यदि शास्त्रार्थ का अवसर उपस्थित होता था तब राजा की ओर से विजेता को जयपत्र प्रदान किया जाता था। जुलूस निकालकर उसका सम्मान किया जाता था। इसके अतिरिक्त विद्वान लोग गोष्ठियों में एकत्र होकर साहित्यिक चर्चा करते थे। गुर्जर-प्रतिहार काल में कान्यकुब्ज (कन्नौज) विद्या का सबसे बड़ा केन्द्र था राजशेखर ने कन्नौज की गोष्ठियों का वर्णन किया है,

इन्होंने शिक्षा पद्धति का वर्णन तो नहीं किया, फिर भी 'काव्य विद्यास्नातक' के अध्ययन विषय, पठन पद्धति परीक्षा और आवश्यक सामग्री का उल्लेख किया है।[cccxcvi] इस काल में शिक्षा के दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला वह उच्च वर्ग (ब्राम्हण) जिन्हें मठो, अग्रहारों में वेद, व्याकरण इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी। दूसरा वह कामगार वर्ण जैसे वैश्य व शूद्र अपने व्यावसायिक कार्यों की शिक्षा अपने परिवार व श्रेणी संगठनों में ही लेते थे। इस काल में भी शिक्षा जो कि मठों, मंदिरों के माध्यम से ही दी जाती थी उसमें निम्न वर्ण का प्रवेश वर्जित था।

गुर्जर-प्रतिहार कालीन अभिलेखों में हमें बहुत से ब्राम्हण विद्यार्थियों का उल्लेख मिलता है। जैसे मिहिर भोज के दौलतपुर अभिलेख[cccxcvii] में हमें ऋग्वेदिक ब्राम्हण विद्यार्थियों का उल्लेख मिलता है। जिन्हें शिव नामक गाँव अग्रहार के रूप में दिया गया। इसी प्रकार ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख में[cccxcviii] हमें राजा भोज के प्रशासनिक अधिकारी मर्यादाधुर्य वेल्लभट्ट (ब्राम्हण जाति) को सभी कलाओं में निपुण तथा व्याकरण का माता कहा गया है। प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल द्वितीय के समय के प्रतापगढ़ अभिलेख में हरिरिषिश्वर नामक मठाधीश का उल्लेख मिलता है जिसे चारों वेदों का ज्ञाता कहा गया है।[cccxcix]

समकालीन समाज में प्रारम्भिक शिक्षा देने सम्बन्धी दो प्रकार के उल्लेख मिलते है। प्रथमतः माता-पिता द्वारा बालक को गुरू या आचार्य को

समर्पित करना, तथा द्वितीय रूप में गुरू द्वारा स्वयं बालक के घर जाकर शिक्षा देना।

राजशेखर ने चार प्रकार के शिक्षकों का वर्णन किया है। 1. आचार्य, 2. उपाध्याय, 3. कुलगुरू, 4. प्रशस्ता या पथ प्रदर्शक

राजशेखर ने स्वयं को प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल प्रथम का कुलगुरू कहा है। कवि ने इस शब्द को गुर्जर प्रतिहार राजवंश के राजाओं को शिक्षा प्रदान करने के अर्थ में प्रयुक्त किया है। विद्धशालभंजिका के एक प्रसंग से ज्ञात होता है कि राजशेखर ने महेन्द्रपाल को 18लिपियों का ज्ञान कराया था।[cd] राजशेखर ने अपने ग्रन्थों कर्पूरमंजरी, बालरामायण, काव्यमीमांसा की रचना प्रतिहार काल में ही की थी। इससे यह पता चलता है कि उस समय शिक्षा का स्तर काफी ऊँचा था तथा संभवतः कन्नौज एक शिक्षा का केन्द्र भी रहा होगा।

गुर्जर-प्रतिहार कालीन अभिलेख दो प्रकार के है- राजकीय और व्यक्तिगत जो प्रस्तर और ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण किये गये है। राजकीय लेखों में राजकीय परिवार के सदस्यों तथा उनके अधीनस्थ शासको के नाम मिलते हैं। जबकि व्यक्तिगत लेखों में राजा के शासन काल के उल्लेख के साथ-साथ किसी सामान्य व्यक्ति द्वारा दिये गये दान की चर्चा है। इन सभी लेखों की भाषा संस्कृत तथा लिपि नागरी है जिसका प्रचलन राजस्थान, उ०प्र०, म०प्र०में विशेष रूप से था। ये सभी लेख 730-1019 ई० के मध्य प्राप्त होते है। इन लेखों में राजा के राज्यवर्ष, संवत्, दान देने की तिथि, पक्ष, नक्षत्र, दिन, महीना,

तथा पर्व आदि का उल्लेख मिलता है। जिससे अभिलेख की निश्चित तिथि निर्धारित करने में सहायता मिलती है। लेख ऊँ,स्वस्ति, श्री आदि मंगल सूचक शब्दों से प्रारंभ होते है। इसमें राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक आदि विषयों से संबंधित प्रचुर सामग्री मिलती है। प्रतिहार कालीन अभिलेखों को प्रकाश में लाने का श्रेय कीलहार्न, दयाराम साहनी, गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, डी०सी० सरकार, आर०सी० मजूमदार, स्टैनकेनो आदि इतिहासकारों को है। राजशेखर ने स्नातकों के तीन प्रकारों का वर्णन किया है। सभी विषयों का ज्ञाता होना तो कठिन था तथापि वर्णन मिलता है कि मण्डोर का शासक कक्क छन्द, व्याकरण, तर्क, ज्योतिष आदि का ज्ञाता था। यह सभी भाषाओं की कविता में भी निष्णात था।[cdi] लिपिकला पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। राजशेखर ने लेखनी तथा मासीपिण्ड का भी उल्लेख किया है।

राजशेखर ने ब्रह्मसभा की चर्चा की है। ऐसी सभाएं उज्जैन तथा पाटलिपुत्र में हुआ करती थी। प्रतिहार शासक स्वयं भी विद्वान थे और वे विद्वानों को राज्याश्रय भी प्रदान करते थे।[cdii]

## साहित्य

साहित्य के क्षेत्र में भिल्लमाल एक बड़ा केन्द्र था। यहां अनेक महान साहित्यकार पैदा हुए। इनमें से अग्रणी नाम 'शिशुपालवध' के रचयिता 'माघ'

का है। माघ के वंश में सौ वर्षो तक कविता होती रही और संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में ग्रंथ रचे गये।

जैन हरिभद्रसूरि, माघ के समकालीन था। इनका 'धूर्तापाख्यान' ग्रंथ हिन्दू धर्म की कड़ी आलोचना करता है। सबसे प्रसिद्ध प्राकृत ग्रन्थ 'समराइच्चकहा'[cdiii]है। हरिभद्रसुरि के शिष्य उद्योतन सूरि ने जालोर में प्राकृत ग्रंथ 'कुबलयमाला' की रचना 778 ई० में की । यह ग्रन्थ प्रतिहार कालीन सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी के लिए आवश्यक है। भिल्लमाल के जैन सिद्धार्थी सूरि ने 'उपमितिभवप्रपंचकथा' नामक ग्रंथ लिखा जो एक दार्शनिक काव्य ग्रन्थ है।

जोधपुर अभिलेख में मण्डोर के बाउक को बड़ा विद्वान बताया गया है।[cdiv] प्रथम गुर्जर-प्रतिहार सम्राट नागभट्ट प्रथम क्षमाश्रमण का आश्रयदाता बताया जाता है। भोज प्रथम के दरबार में भट्टधन्नेक का पुत्र बालादित्य रहता था ग्वालियर प्रशस्ति का प्रसिद्ध लेखक यही है। कवियों में राजशेखर की प्रसिद्धि सर्वाधिक है। यह सम्राट महेन्द्रपाल का गुरू था । राजशेखर का प्राकृत नाटक 'कर्पुरमंजरी'[cdv] और संस्कृत महानाटक 'बालरामायण' महेन्द्रपाल के शासनकाल में अभिनीत किये गये थे। इसके अतिरिक्त बालभारत, काव्यमीमांसा, विद्धशालभंजिका आदि रचनाएं सर्वप्रसिद्ध है। राजशेखर की प्रशस्तियों में उनके आश्रयदाताओं का उल्लेख मिलता है।

प्रतिहार युग में संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों भाषाओं में साहित्य की रचना हुई किन्तु प्राकृत का चलन दिनोंदिन कम हो रहा था और अपभ्रंश उसका स्थान ले रही थी।

# उपसंहार

पूर्वमध्यकालीन इतिहास में सातवीं-आठवीं श० ई० में गुर्जर-प्रतिहारो के उदय के साथ ही नये युग का आरम्भ हुआ। इस राजवंश में कई महत्वपूर्ण शासक हुए जिन्होंने अपने कार्यो से अपनी महत्ता स्थापित की है। इस काल में सांस्कृतिक क्षेत्र से अपनी महत्ता स्थापिक की है। इस काल में सांस्कृतिक क्षेत्र के सभी आश्रमों जैसे-समाज, अर्थ, धर्म, शिक्षा-साहित्य व कला का उत्कर्ष हुआ और राजशेखर जैसे विद्वान राज्य द्वारा संरक्षण प्राप्त थे। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक उत्तर भारत की राजनीति में उथल-पुथल विद्यमान था, साथ ही अरब आक्रांताओं के आक्रमण ने भी सामाजिक जीवन को अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया किन्तु गुर्जर-प्रतिहारों के उदय ने समस्त उत्तर-भारत में दो शताब्दी तक स्थिरता प्रदान की और पश्चिम भारत की सीमा पर प्रहरी के रूप में कार्य किये।

गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। बाउक ने जोधपुर अभिलेखों से वंशावली प्राप्त होती है जिसमें प्रथम शासक हरिश्चन्द्र को बताया गया है और इसे विद्वान ब्राह्मण मानते है किन्तु ऐसा कहा जा सकता है कि यह आगे चलकर क्षात्र धर्म का पालन करने हेतु खुद को क्षत्रिय मानने लगे होंगे। फिर भी ब्राह्मणों के प्रति अत्यधिक सम्मान था और इनके प्रति प्रगाढ़ निष्ठा का कारण संभवत: उनके व्यक्तिगत जीवन में प्रदर्शित ज्ञान, पवित्रता, त्याग एवं तपस्या थी। इस काल के अभिलेखों में उन्नत एवं

उत्कृष्ठ चरित्र वाले तथा वेद शास्त्रों में पारंगत ब्राह्मणों का बहुतायत उल्लेख प्राप्त होता है। समाज के सभी वर्ग के लोग अपने सामर्थ्य के अनुसार दान आदि देते थे। इस कथा के अभिलेखों से पता चलता है कि राजा, सामंत, माण्डिलक आदि के द्वारा ब्राह्मणों को दान दिया जाता था। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणों के पश्चात् क्षत्रिय वर्ण का स्थान आता है। मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख से पता चलता है कि यह स्वयं को क्षात्रीय मानते हुए इश्वाकु वंश के राजा राम के छोटे भाई लक्ष्मण का वशंज बताते है। अभिलेखों में 'रघुकुल ग्रामणी, रघुकुल तिलक विरूद्ध भी प्राप्त होता है जिससे यह पुष्ट होता है। क्षत्रिय वर्ण के पश्चात् वैश्यों की तीसरा स्थान था यद्यपि अभिलेखों में वैश्य शब्द का उल्लेख नही मिलता किन्तु अभिलेखों में व्यापार-वाणिज्य व उद्योग-धंधो से जुड़े समूह का पता चलता है जिसे वैश्य वर्ण या वणिक वर्ग से जोड़ा जाता है। वर्ण व्यवस्था में अंतिम स्थान शूद्रों का था जो सेवा से संबधित व निम्न कार्यो में संलग्न थे। इनके विषय में कहा गया है कि ईश्वर की ओर शूद्रों का एक मात्र कर्त्तव्य द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की सेवा और सुश्रुषा करना है। इस काल में वैश्यों द्वारा व्यापार और वणिज्य में अधिक रूचि लेने के कारण इनके द्वारा कृषि कार्य किया जाने लगा। इस काल में कायस्थ नामक एक अन्य जाति जो लेखन विधि से सम्बद्ध थी, के बारे में मालूम होता है। इनका विभाजन भी अनेक उपजातियों में हो गया था जैसे - श्रीवास्तव, माथुर, अस्थाना आदि। संस्कारों के बारें में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु विवाह और उपनयन संस्कार का प्रचलन अवश्य था।

पारिवारिक जीवन में कुल का विशेष महत्व होता था जिसमें पति-पत्नी, सन्तान, माता-पिता, भाई-बहन सभी एक ही संयुक्त परिवार के अंग थे इसके अतिरिक्त समाज में वैश्यावृत्ति, पर्दा प्रथा, बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन भी समाज में था। समाज में विविध प्रकार के पकवान और पेय पदार्थ ग्रहण किये जाते थे । सामान्यत शाकाहारी भोजन ही ग्रहण किया जाता था किन्तु मांसाहार का भी प्रचलन था क्योंकि अभिलेखों में मछली से भरे तालाबों के दान दिये जाने का विवरण मिलता है। पेय पदार्थ में विभिन्न प्रकार के मदिरा के अतिरिक्त दूध, दही, घी, मधु आदि ग्रहण किया जाता था। आभूषण के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अलंकरण प्रचलित थे जिन्हें स्त्री और पुरूष दोनों पहनते थे किन्तु पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियाँ विशेष कलाप्रिय व आभूषण प्रिय थी। मनोरंजन के साधनों में कन्दूक-क्रीड़ा, उद्यान-क्रीड़ा, द्यूतक्रीड़ा, मछली पकड़ना आदि प्रमुख था। आखेट भी मनोरंजन का एक साधन था। इसके अतिरिक्त नाटकों का अभिनय नृत्य गायन आदि भी मनोरंजन के प्रमुख अंग थे।

इस्लाम के कारण भारत के सामाजिक जीवन पर कोई विशेष प्रभाव पड़ा था, यह स्वीकार करना संभव नहीं है। भारत का बहुत बड़ा क्षेत्र मुस्लिम आक्रमणों से अछूता रहा था क्योंकि उत्तर भारत में तुर्क-अफगानों के शासन की नींव तेरहवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षो में ही पड़ी थी किन्तु भारत में इस्लाम के प्रसार का सूत्रपात गुर्जर प्रतिहार काल में ही हो गया था।

गुर्जर-प्रतिहार काल में आय का प्रमुख स्त्रोत कर था जो राज्य के कर्मचारियों के वेतन तथा आवश्यक विकास के कार्यों में व्यय होता था। वसूल किये जाने वाले करों में भाग, भोग, हिरण्य, प्रवणि, विषयदण्ड, तुरूष्कदण्ड, अक्षपटलप्रस्थ, प्रतिहारप्रस्थ, विशतिअठप्रस्त आदि प्रमुख रूप से थे। इस काल में कृषि ही अधिकांश लोगों की आय का मुख्य साधन था और राज्य की आर्थिक व्यवस्था का यही मूल आधार था। गुर्जर प्रतिहार काल के समाज में विभिन्न शिल्पियों के संगठन तथा विभिन्न श्रेणियों के व्यवसायिक संघो का उल्लेख मिलना भी इस बात की पुष्टि करता है कि ये श्रेणियाँ भी राज्य की आधारशिला थी। देशी व विदेशी व्यापार इन श्रेणियों द्वारा किये जाते थे। व्यापारिक वस्तुओं में विभिन्न प्रकार के अन्न, मसाले, बहुमूल्य धातुओं तथा वस्त्रों आदि का निर्देश मिलता है। उद्योगों तथा व्यापारियों दोनों पर विभिन्न प्रकार के कर भी लगाए जाते थे। हर एक वस्तु का मूल्य निश्चित होता था। वस्तुओं को तौलने के लिए माप-तौल की भी व्यवस्था थी। जिसमें पैमानों व गणितीय आकड़ों-पद्धतियों का प्रयोग किया जाता था। यद्यपि राज्य भूमि पर राजा का स्वामित्व था परन्तु राजाओं द्वारा दान में दी गयी भूमि का स्वामी दान ग्रहिता को ही माना जाता था। यह परम्परा पूर्व काल से ही चली आ रही थी। जिससे राज्य में अनेक सामन्त तथा जागीरदार उभर गये थे। स्थानीय शासन प्रणाली का संचालन प्राय: इन्हीं सामन्तों द्वारा किया जाता था। इस प्रकार से राज्य की आर्थिक दशा में इनका योगदान अभूतपूर्व था।

गुर्जर-प्रतिहार काल अभूतपूर्व धार्मिक जागृति का काल था। इस काल के समाज में कई धार्मिक सम्प्रदाय थे जिनमें वैष्णव, शैव, शाक्त, सूर्य, बौद्ध,

जैन प्रमुख थे। गुर्जर प्रतिहार शासक वैष्णव धर्मानुयायी थे जैसा कि उनके अभिलेखों से इसकी पुष्टि होती है। अभिलखों का प्रारम्भ विष्णु नाम से हुआ है और कई शासकों ने विष्णु से सम्बन्धित विरूद का प्रयोग किया है जैसे - मिहिरभोज को 'आदिवराह' और 'प्रभाश' की उपाधि दी गयी थी। किन्तु वैष्णव धर्म की ओर अधिक झुकाव होने के बाद भी इनके अन्दर धार्मिक सहिष्णुता की भावना विद्यमान थी। ये सभी धर्मो का आदर करते थे। अभिलेखों से विष्णु की लोकप्रियता का पता चलता है। मिहिर भोज के ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख 'ओऽम नमो भगवते वासुदेवाय' से प्रारम्भ हुए है। गणपति पूजा की पुष्टि करने वाले अभिलेखों का प्रारम्भ 'ओम विनायक' से हुआ है। विष्णु के साथ शिव पूजा का भी विशेष महत्व था। गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों व प्रशस्तियों में प्रतिहार राजा 'परममाहेश्वर' कहे गये है। सूर्य पूजा के भी साक्ष्य मिलते है जिसकी अभिलेखों से पुष्टि होती है। प्रतिहार शासक रामभद्र सूर्य की उपासना करता था और इसी से प्रेरित होकर अपने पुत्र का नाम मिहिरभोज रखा था। इस समय यद्यपि ब्राह्मण धर्म की प्रधानता थी किन्तु बौद्ध व जैन अनुयायी भी समाज में विद्यमान थे। महेन्द्रपाल प्रथम का इत्खोरी अभिलेख बौद्ध देवी तारा के आधार स्तम्भ पर पाया गया है। तारा देवी का बौद्ध धर्म में वही स्थान है जो ब्राह्मण धर्म में दुर्गा का घटियाला अभिलेख में कक्कुक द्वारा जैन मन्दिर बनवाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

गुर्जर-प्रतिहार काल में देवताओं के साथ कई देवियों की पूजा के संकेत प्राप्त होते है। इस समय देवियों में प्रमुख स्थान लक्ष्मी, पार्वती, दुर्गा का था।

लक्ष्मी धन और सुख समृद्धि की देवी, पार्वती भगवान शंकर की पत्नी और दुर्गा की पूजा शक्ति की देवी के रूप की जाती थी। इसके अतिरिक्त कापालिक और कौल का भी अस्तित्व परिलक्षित होता है जिसका उल्लेख हमें राजशेखर के नाटक कर्पूरमंजरी में मिलता है। भारतीय धर्म में दान का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रतिहारकालीन अभिलेखों में दान सम्बन्धी अनेक विवरण मिलते है। इन अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस काल के राजाओं, सामन्तों और जन साधारण सभी में उदात्त भाव दानशीलता की तथा गहन धर्मनिष्ठा थी। गाय, सुवर्ण, हस्ति, अश्व, भूमि आदि दान में दिया जाता था। ग्राम दान व भूमि दान के अनेकानेक लेख मिलते है। सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण इत्यादि महत्वपूर्ण अवसरों पर दान देने का प्रचलन था। तीर्थो की यात्रा करना, संगम स्नान करके भी पुण्य लाभ हेतु दान दिया जाता था।

गुर्जर-प्रतिहार काल में कला एवं शिक्षा-साहित्य के बारे में भी जानकारी मिलती है। शिक्षा का स्थान गुरूकुल, आश्रम, मठ आदि होते थे। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि वेदों की शिक्षा इस समय प्रमुख रूप से दी जाती थी। वेदों के अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्विद्या, युद्धकला, ज्योतिष, संगीत, नित्य आदि की भी शिक्षाएँ दी जाती थी। शिक्षा के अनेक केन्द्र थे जिनमें वाराणसी, कन्नौज, उज्जैन, भिनमाल आदि प्रमुख थे। विद्यालयों अथवा गुरूकुलों को चलाने के लिए ग्राम दान दिया जाता था जिसे 'अग्रहार' कहते थे। गुर्जर प्रतिहार काल में साहित्य के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। प्रतिहारों की

दानशीलता एवं उदार प्रवृत्ति के कारण लोक भाषाओं की उन्नति के के साथ-साथ संस्कृत में विविध विषयों पर भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। राजशेखर ने काव्यमीमांसा, कर्पूरमंजरी, बालरामायण, बालभारत, भुवनकोष, विद्यशालभंजिका की रचना इसी काल में की। संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत तथा अपभ्रंश का भी प्रचलन था किन्तु दिनों दिन प्राकृत का प्रचलन कम हो रहा था और अपभ्रंश बढ़ती जा रही थी। गुर्जर-प्रतिहार काल में स्थापित मंदिरों, तालाबों, भवनों,दुर्गों इत्यादि के आधार पर हम इस काल की कलात्मक विशेषताओं का अनुमान कर सकते है। वास्तुकला के साथ-साथ् मूर्ति कला में भी उल्लेखनीय प्रसार हुआ। इस काल के मंदिरों व मूर्तियों के स्वरूप, अंग-प्रत्यंग में अलंकरण मिलता है। अत: यह काल राजनीतिक दृष्टि के साथ-साथ सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि का था फिर भी हम कह सकते हैं कि विविध दृष्टिकोणों से यह परिवर्तन का काल था।

[i] वैद्य, सी०वी०, हिस्ट्री आफ हिन्दू मेडिवल इण्डिया, वोल्यूम-I, द ओरियन्टल बुक सप्लाइ एजेंसी, पूना, 1921, पृ० 115-116

[ii] हर्ष का प्रतिद्वन्दी पुलकेशियन II उसे 'सकलउत्तरापथेश्वर' मात्र कहता है। एपिग्राफिया इण्डिका, वोल्यूम-VI, आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, 1990, पृ० 2-3

[iii] रे, एच०सी०, द डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इण्डिया (अर्लि मेडिवल पिरियड), वोल्यूम- I, यूनिवर्सिटी आफ कलकत्ता, 1931-36, पृ० 569-70

[iv] त्रिपाठी, रमाशंकर, हिस्ट्री आफ कन्नौज: टु द मुस्लिम कांक्वेस्ट, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1951, पृ0 189-90

[v] शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशां पंचोत्तरेषूत्तराम् ।
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपते श्रीवल्लभे दक्षिणाम् ।।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृतिनृपे वत्साधिराजे पराम् ।
सौर्याणामधिमण्डले जययुते वीरे वराहेवति।। 6 वां, 63 जिनसेन रचित जैनहरिवंश

[vi] मजूमदार, आर०सी०, द ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि गुर्जर प्रतिहार किंग भोज, एपि० इण्डि० भाग XVIII, पृ० 99-102, सन् 1925

[vii] स्मिथ, ज० रा० ए० सो०, पृ० 57, सन् 1909

[viii] कोनोव, स्टेन, हंसोट प्लेट ऑफ दि चाहमान, भर्तृवढढ, संवत 813, एपि० इण्डि० भाग XII, पृ० 197-202, सन् 1913-14

[ix] जेम्स, टॉड, एनल्स एण्ड एंटिक्वीटीज ऑफ राजस्थान, विलियम क्रुक (संशोधित एवं सम्पादित), लंदन, 1920, भाग- I, पृ० 113

[x] विलियय, क्रुक, एनल्स एण्ड एंटिक्वीटीज ऑफ राजस्थान की भूमिका, पृ० 31

[xi] कैम्पबेल, जे०एम०, गजेटियर्स आफ द बाम्बे प्रेसीडेन्सी, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, बाम्बे, 1896, वोल्यूम-प्, पार्ट- I, परिशिष्ट-3

[xii] स्मिथ, वी०ए०, जर्नल आफ रॉयल ऐशियाटिक सोसायटी, बाम्बे ब्रांच, भाग- XXI, 1909, पृ० 21

[xiii] हार्नेल, ए०एफ०आर०, ए हिस्ट्री आफ इण्डिया, ओडिशा मिशन प्रेस, कटक, 1909, पृ० 69-70

[xiv] कनिंघम, ए०, एनुअल रिपोर्ट आफ द आर्किलॉजी सर्वे आफ इण्डिया, भाग- XXI, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, शिमला, 1871, पृ० 71

[xv] जैक्सन, ए०एम०टी०, एवं जे०एम० कैम्पबेल (सं०), गजेटियर्स आफ द बाम्बे प्रेसीडेन्सी, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस बाम्बे, 1996, वाल्यूम-1, पार्ट-1, परिशिष्ट-3

[xvi] भण्डारकर, डी०आर०, जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, बाम्बे ब्रांच, वोल्यूम- XXI, 1909, पृ० 413

[xvii] पुरी, वैजनाथ, द हिस्ट्री आफ द गुर्जर प्रतिहाराज, यूनिवर्सिटी आफ आक्सफोर्ड, लंदन, 1957, पृ० 3-4

[xviii] कीलहार्न, एपि० इण्डि०, भाग- III, नम्बर-36, 1916, पृ० 115-16

[xix] मजूमदार, आर०सी०, गुर्जर प्रतिहाराज, जर्नल आफ द डिपार्टमेन्ट ऑफ लेटर्स, भाग- III, नं०-36, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1916, पृ० 115-16

[xx] पुरी, वैजनाथ, पूर्वोक्त, पृ० 5-6

[xxi] मजूमदार, आर० सी०, एपि० इण्डि०, भाग- XVIII, भारतीय पुरातत्व विभाग, 1925, पृ० 128-137

[xxii] मिल, डब्लू० एच०, जर्नल आफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग- IV, 1835, पृ० 367-385

[xxiii] शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजेज, पार्ट-1, बीकानेर, 1966, पृ० 474-75

[xxiv] भण्डारकर, डी० आर०, बुचकला अभिलेख, एपि० इण्डि० भाग IX, पृ० 198-200, सन् 1907-08

[xxv] मजूमदार, आर० सी०, एपि० इण्डि०, भाग - XVIII, पृ० 129-30

[xxvi] मजूमदार, आर० सी०, ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक-4, एपि० इण्डि०, भाग - XVIII, पृ० 129-130

[xxvii] इलियट एण्ड डाउसन: हिस्ट्री आफ इण्डिया, ऐज टोल्ड बाई इट्स हिस्टोरियन्स ऑन, भाग-1, लंदन, 1867; पुर्नमुद्रित, किताबमहल, इलाहाबाद, पृ० 126

[xxviii] मजूमदार, आर०सी० एवं ए० डी० पुसालकर, द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1955, पृ० 74-76

[xxix] भण्डारकर, डी० आर०, अमोघवर्ष का संजनताम्रपत्र अभिलेख, एपि० इण्डि०, भाग- XVIII, पृ० 235, श्लोक संख्या-9

हिरण्यगर्भ राजन्यैः उज्जयिन्यां यदासितम्। प्रतिहारी: कृतंयेन गुर्जरेशादिराजकम्।।

[xxx] हुल्तेज, एपि० इण्डि०, भाग- XI, पृ० 211-12

[xxxi] बर्गेस, जेम्स एण्ड भगवानलाल इन्द्रजी, इन्स्क्रिन्प्शन फ्राम द केव टेम्पल्स आफ वेस्टर्न इण्डिया, बाम्बे, 1881, पृ० 92-96

[xxxii] भण्डारकर, डी० आर०, घटियाला अभिलेख, एपि० इण्डि० भाग IX, पृ० 277-279, सन् 1907-08

[xxxiii] मजूमदार, आर० सी०, ग्वालियर अभिलेख, एपि० इण्डि० भाग XVIII, पृ० 100-101, सन् 1892

[xxxiv] वही, पृ० 102

[xxxv] कीलहर्न, कमौली प्लेट ऑफ वत्सराज, एपि० इण्डि० भाग IV, पृ० 103-104, सन् 1896-97

[xxxvi] मजूमदार, आर० सी०, ग्वालियर अभिलेख, एपि० इण्डि० भाग XVIII, पृ० 156-157 सन् 1892

[xxxvii] जैन ग्रन्थ हरिवंश पुराण में (66, 53) इन्द्रायुध और वत्सराज के शासन करने की बात ज्ञात होती हैं।

[xxxviii] फ्लीट, जे० एफ०, वनिदिन्दोरी ताम्रपत्र अभिलेख (808 ई०), इण्डि० ऐण्टी०, भाग- XI, पृ० 156-57

[xxxix] राधनपुर ताम्रपत्र अभिलेख (808 ई०), एपि० इण्डि०, भाग- VI, पृ० 239-41

[xl] 'हेलास्वीकृतगोडराज्यकमलां मत्तं प्रवेश्याचिरात' एपि० इण्डि०, भाग- IV, पृ० 248

[xli] बड़ौदा ताम्रपत्र अभिलेख, इण्डि० ऐण्टी०, भाग- XII, पृ० 156-58

[xlii] मजूमदार, आर०सी०, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग-1, ढ़ाका यूनिवर्सिटी, 1943, पृ० 105

[xliii] 'गौडीयं सरदिन्दुपाधवलं छत्रद्वयं केवलं तस्मानाहृततत्यशोअपि ककुभं प्रांते स्थितं तत्क्षणात।' राधनपुर ताम्रपत्र अभिलेख, श्लोक संख्या-8

[xliv] ह्यूल्टेज, सिवा अभिलेख, एपि० इण्डि० भाग V, पृ० 208, सन् 1898-99

[xlv] मजूमदार, आर० सी०, ग्वालियर अभिलेख, एपि० इण्डि० भाग 18, पृ० 159, सन् 1892

[xlvi] खालिमपुर अभिलेख, एपि० इण्डि०, भाग- IV, पृ० 423

[xlvii] अमोघवर्ष का संजन ताम्रपत्र अभिलेख, एपि० इण्डि०, भाग - XVIII, पृ० 235

xlviii गोविन्द तृतीय का राधनपुर ताम्र अभिलेख, एपि० इण्डि०, भाग - VI, पृ० 239-41, 'गुर्जरो नष्ट: क्वापि भयात् तथा न समरं स्वप्नेअपि पश्येद्यथा'।

xlix सिन्हा, विन्धेश्वरी प्रसाद, द डिक्लाइन आफ द किंगडम ऑफ मगध, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1954, पृ० 353

l 'स्वयमेव उपनतौ च यस्य महतस्तौ धर्मचक्रायुधौ' संजन ताम्रपत्र अभिलेख, एपि० इण्डि०, भाग - XVIII, पृ० 245, श्लोक-23

li 'जित्वा पराश्रयकृतस्फुटनीचभावं चक्रायुधं विनयनम्रवपुर्ण्यराजतृ' ग्वालियर प्रशस्ति, एपि० इण्डि०, भाग - I, पृ० 159

lii पुरी, बैजनाथ, पूर्वोक्त, पृ० 44-45

liii बुचकला अभिलेख, एपि० इण्डि०, भाग - IX, पृ० 199-200

liv ग्वालियर प्रशस्ति, एपि० इण्डि०, भाग - XVIII, पृ० 100-02, श्लोक-10

'दुर्व्वारिवैरिवरवारणवाजिवारयाणौध संघटनद्योरधनानधकारम्।

निर्ज्जित्य वंगपतिभविर्भूदविवास्वान्नुदयन्निव त्रिजगदेकंविकासकोय'।।

lv शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजेज, पूर्वोक्त, पृ० 140

lvi चन्द्रप्रभसूरि, प्रभावक चरित, निर्णय सागर प्रेस, पृ० 177 (वप्पभट्टि प्रबन्ध का 725 वां श्लोक)

[lvii] मजूमदार, आर० सी०, ग्वालियर अभिलेख, एपि० इण्डि० भाग XVIII, पृ० 102-103, सन् 1892

[lviii] वही, पृ० 103, सन् 1892

[lix] लियोनेट, बर्नेट, देवपाल के मूंगेर ब्लेट, एपि० इण्डि० भाग XVIII, पृ० 304, सन् 1892

[lx] कीलहॉर्न, बादल पिलर इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाईम ऑफ नारायणपाल, एपि० इण्डि० भाग II, पृ० 162, सन् 1984

[lxi] ह्यूल्टेज, वैलभट्ट स्वामिन मंदिर अभिलेख, एपि० इण्डि० भाग I, पृ० 154-55, सन् 1892

[lxii] ब्यूह्लर, पेहेवा इन्सक्रीप्सन ऑफ दि टेम्पल ऑफ गरीबनाथ, एपि० इण्डि० भाग I, पृ० 184, सन् 1892

[lxiii] भण्डारकर, देहली क्रैममेण्ट्री इन्सक्रीप्शन, पृ० 101, सूची क्रमांक 1662

[lxiv] मजूमदार, आर० सी०, ग्वालियर इन्सक्रीप्शन, एपि० इण्डि० भाग XVIII, पृ० 102-103, सन् 1892

[lxv] कीलहार्न, बिल्हरी चेदि शिलालेख, एपि० इण्डि० भाग I, पृ० 251-254, सन् 1892

[lxvi] कीलहार्न, देवगढ़ जैन पिलर इन्सक्रीशन, एपि० इण्डि० भाग IV, पृ० 309-310, सन् 1896-97

[lxvii] मजूमदार, आर०सी० (सं०), एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, उपरोक्त, पृ० 29-30

[lxviii] ग्वालियर प्रशस्ति, एपि० इण्डि०, भाग -I, पृ० 162-63

[lxix] सोढ़देव का कहला ताम्रपत्र, एपि० इण्डि०, भाग -VII, पृ० 86

[lxx] अल्तेकर, ए० एस०, राष्ट्रकूट एण्ड देयर टाइम्स, पूना, 1934, पृ० 74

[lxxi] इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री आफ इण्डिया, वोल्यूम-I, पृ० 4, इन विद्वानों ने सम्बद्ध स्थल के राजा का नाम 'बौरा' पढ़ा है किन्तु सही रूप में 'बोजोह' अर्थात भोज पढ़ा जाना चाहिए।

[lxxii] डेयेल, जान, लाइविंग विदाउट सिल्वर, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1999, पृ० 28-29

[lxxiii] ब्यूहलर, पेहेवा इस्क्रीप्शन ऑफ दि टेम्पल ऑफ गरीबनाथ, एपि० इण्डि० भाग I, पृ० 184-185, सन् 1892

[lxxiv] कीलहार्न, ऊणा कॉपर प्लेट, एपि० इण्डि० भाग IX, पृ० 04-05, सन् 1907-08

[lxxv] लियोनेट, बर्नेट, देवपाल के मूंगेर प्लेट, एपि० इण्डि० भाग XVIII, पृ० 305, सन् 1892

[lxxvi] आर०सी० मजूमदार का विश्वास है कि पालों को मूलरूप से भोज ने ही पराजित करके पूर्व की ओर बढ़ाव को प्रारम्भ किया था और इस नीति को महेन्द्रपाल ने 'निर्दय क्रोध' के साथ जारी रखा। हिस्ट्री आफ बंगाल, वोल्यूम-I, पृ० 129

[lxxvii] एनुअल रिपोर्ट आफ द आर्कोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, 1923-24, पृ० 110-112

[lxxviii] जर्नल आफ द बिहार एण्ड ओडिसा रिसर्च सोसायटी, पटना, 1918, पृ० 505

[lxxix] जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग-V, पृ० 64

[lxxx] पुरी, बैजनाथ, गुर्जर प्रतिहाराज, पृ० 69

[lxxxi] त्रिपाठी, आर०एस०, हिस्ट्री आफ कन्नौज, पृ० 251-252

[lxxxii] 'रघुकुलतिलको महेन्द्रपाल: सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः' कूर्पर मंजरी 1/6

[lxxxiii] ब्यूल्हर, हड्डाला इन्सक्रीप्शन, एपि० इण्डि० भाग XII, पृ० 190-195, सन् 1913-14

[lxxxiv] भण्डारकर, करहड प्लेट ऑफ कृष्ण तृतीय एपि० इण्डि भाग XIV, पृ० 279, सन् 1896-97

[lxxxv] अल्तेकर, ए०एस०, राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ० 101

[lxxxvi] गोविन्द चतुर्थ का कैम्बे दानपत्र, एपि० इण्डि०, भाग -VII, पृ० 38

[lxxxvii] यस्माद्विपदन्तघातविषमं कालप्रियप्रांगगडम्। तीर्णा यत्तुरगौरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्द्धिनी।।

येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मूलितम। नाम्नाद्यापि जनैः कुशस्थलमितिख्याति परां नीयते।।

कैम्बे दानपत्र, उन्नीसवा श्लोक

lxxxviii राइस, लुई (सम्पा०), पम्पभारत, बिबिलियोथिका कर्नाटिका, 1918, पृ० 3-4

lxxxix अल्तेकर, ए०एस०, राष्ट्रकूट एण्ड देयर टाइम्स, पृ० 101-102

xc मजूमदार (सम्पा०), एज ऑफ इम्पीरियल, कन्नौज, पृ० 13

xci इलियट एण्ड डाउसन, पूर्वोक्त, वोल्यूम-I, पृ० 21-22

xcii पुरी, वैजनाथ, गुर्जर-प्रतिहाराज, पूर्वोक्त, पृ० 115-118

xciii एपिग्राफिया इण्डिका, वोल्यूम-V, पृ० 188-197

xciv एपिग्राफिया इण्डिका, वोल्यूम-IV, पृ० 278-79

xcv 'यस्यपरूषेक्षिताखिलदक्षिणदिग्दुर्गविजयमाकर्ण्य गलितागूर्ज्जर हृदयात्कालंजरचित्रकूटाशा' कर्हाट अभिलेख, श्लोक-30

xcvi राय, हेमचन्द्र डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्थ इण्डिया, पूर्वोक्त, पृ० 588

xcvii मूलराज प्रथम का अभिलेख, इण्डि० ऐण्टी०, भाग-VI, पृ० 191। सारस्वत मण्डल में आधुनिक मेहसाना, राधनपुर और पालनपुर के क्षेत्र आते थे।

xcviii एपिग्राफिया इण्डिका, वोल्यूम-XIV, पृ० 176-177

xcix ओझा, गौरी शंकर हीराचन्द्र, प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन, एपि० इण्डि० भाग XIV, पृ० 176-186, सन् 1917-18

[c] कीलहॉर्न, सियदोणी स्टोन इन्सक्रीप्शन, एपि० इण्डि० भाग I, पृ० 162-163, सन् 1892

[ci] मित्रा, आर० एल०, राजौरगढ़ (अलवर) इन्सक्रीप्शन, एपि० इण्डि० भाग III, पृ० 266, सन् 1894-95

[cii] ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाईम ऑफ महेन्द्रपाल द्वितीय, एपि० इण्डि० भाग XIV, पृ० 180-181, सन् 1917-18

[ciii] सरकार, डी० सी०, भतूरिया इन्सक्रीप्शन ऑफ राज्यपाल, एपि० इण्डि० भाग XXXIII, पृ० 151-52, सन् 1959

[civ] कीलहॉर्न, झूसी इन्सक्रीप्शन, एपि० इण्डि० भाग XVIII, पृ० 33-35, सन् 1925

[cv] वही, पृ० 34, सन् 1925

[cvi] सरकार, डी० सी०, मलयवर्मन प्लेट (कुरेठा), एपि० इण्डि० भाग XXX, पृ० 144-151, सन् 1953

[cvii] सरकार, डी० सी०, नरवर्मन प्लेट (कुरेठा), एपि० इण्डि० भाग XXX, पृ० 150-151, सन् 1953

[cviii] साहनी, कड़ा (इलाहाबाद) इन्सक्रीप्शन ऑफ यशपाल, जे० आर० ए० एस०, 692, सन् 1927

[cix] मजूमदार, अशोक कुमार, चौलुक्याज ऑफ गुजरात, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1961, पृ० 29-36

[cx] हरसोला अभिलेख, एपिग्राफिया इण्डिका, वोल्यूम- XIX, पृ० 238-42

[cxi] मित्र, शिशिर कुमार, अर्लि रूलर्स ऑफ खजुराहो, कलकत्ता, 1958, पृ० 48-50

[cxii] हर्ष शिलालेख, एपिग्राफिया इण्डिका, वोल्यूम- II, पृ० 121

[cxiii] मिराशी, वासुदेव विष्णु, कल्चुरी नरेश और उनका काल, भोपाल, 1965, पृ० 105-108

[cxiv] तारीखे फिरिश्ता, (अंग्रेजी अनुवाद) आर०जे० ब्रिग्स, वोल्यूम- I, कलकत्ता, 1911, पृ० 18

[cxv] निजामी, मुहम्मद, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ महमूद ऑफ गजनी, कैम्ब्रिज, 1931, पृ० 94-95

[cxvi] तारीखे फिरिश्ता, पूर्वोक्त, वोल्यूम- I, पृ० 39

[cxvii] त्रिपाठी, आर०एस०, हिस्ट्री आफ कन्नौज, पूर्वोक्त, पृ० 282

[cxviii] राय, हेमचन्द्र, डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इण्डिया, वोल्यूम- I, पृ० 605

[cxix] राय, हेमचन्द्र, प्रथम भोज और प्रथम महीपाल के प्रकरण।

[cxx] इलियट् और डाउसन्, पूर्वनिर्दिष्ट, जिल्द I, पृ० 23-24; डाहिनाइ० प्रथम, पृ० 10-22

[cxxi] मुंशी, क०मा०दि० एज् ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 22

[cxxii] अल्विलादुरी कहता है कि अल्-हकीम-इब्न्-अवान्ह के साथ 'कसह' (काश?) के लोगों को छोड़कर सारे अल् हिन्द के लोग धर्म परिवर्तन स्वीकार करते थे। मुसलमानों के सामने ऐसा कोई स्थान न था, जहाँ वे शरण ले सकें। अतः उसने हिन्द की सीमा पर स्थित झील (समुद्र) के किनारे अल्-महफूज (शत्रुओं के आक्रमण से मुक्त) नगर बसाया, जहाँ वे अपनी रक्षा के लिए बसे तथा उसे अपनी राजधानी बनाया। क०मा० मुँशी द्वारा उद्धत, वहीं, पृ० 12

[cxxiii] कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्द III, पृ० 10

[cxxiv] शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, भूमिका, पृ० 1-2

[cxxv] ग्वालियर अभिलेख, श्लोक-4

[cxxvi] एपिग्राफिया इण्डिका, वोल्यूम- XVIII, पृ० 102-103

[cxxvii] ब्रिग्स, पूर्वनिर्दिष्ट, भाग- I, पृ० 57

[cxxviii] मु० हबीब द्वारा उद्धत, सुल्तान महमूद ऑफ गजनीन, पृ० 38

[cxxix] त्रिपाठी, डा० यमुनाराम 'यमुनेश', काव्यमीमांसा (राजशेखर), शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1996

[cxxx] ब्युहलर, पेहेवा इन्सक्रीप्शन फ्रॉम दि टेम्पल ऑफ गरीबनाथ, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 184-186

[cxxxi] कीलहॉर्न, कमौलीप्लेट ऑफ वत्सराज, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 1896-97, पृ० 103-104

[cxxxii] आचार्य, जी० वी०, ए ग्राण्ट ऑफ दि गुर्जर किंग जयभट्ट तृतीय, एपि० इण्डि० भाग 23, सन् 1936, पृ० 147-150

[cxxxiii]कीलहार्न, टू कॉपर प्लेट इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम आफ महेन्द्रपाल ऑफ कन्नौज (ऊणा), एपि॰ इण्डि॰ भाग 9, सन् 1907-08, पृ॰ 06-08

[cxxxiv] *मेधातिथि (मनुस्मृति पर भाष्य), कुल्लूक भट्ट की टीका सहित,*बंबई, 1946,पृ॰ 6/89

[cxxxv]मजूमदार, आर॰ सी॰, ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि गुर्जर- प्रतिहार किंग भोज, एपि॰ इण्डि॰ भाग 18, सन् 1925, पृ॰ 100-102

[cxxxvi]सरकार, डी॰ सी॰, कुरेठा से प्राप्तप्रतिहार ग्राण्ट, एपि॰ इण्डि॰ भाग 30, सन् 1953, पृ॰ 144-148

[cxxxvii]ब्युहलर, पेहेवा इन्सक्रीप्शन फ्रॉम दि टेम्पल ऑफ गरीबनाथ, एपि॰ इण्डि॰ भाग 1, सन् 1892, पृ॰ 185

[cxxxviii]भण्डारकर, डी॰ आर॰, घटियाला इन्सक्रीप्शन ऑफ कक्कुक , एपि॰ इण्डि॰ भाग 9, सन् 1907-08, पृ॰ 277-280

[cxxxix]त्रिपाठी, डॉ॰ यमुनाराम 'यमुनेश चातक', *काव्यमीमांसा (राजशेखर),*शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1996,पृ॰ 18-217

[cxl]भण्डारकर, डी॰ आर॰,*घटियाला इन्सक्रीप्शन ऑफ कक्कुक*, संवत् 918,एपि॰ इण्डि॰ भाग 9, सन् 1907-08,पृ॰ 280

[cxli]व्यूहलर,जी॰,*बांसखेड़ा ताम्रपत्र*, एपि॰ इण्डि॰ भाग 4,सन् 1896-97,पृ॰ 210

[cxlii]राय, गंगासागर, हिन्दी अनुवाद, *काव्यमीमांसा (राजशेखर),*चौखम्भाप्रकाशन, वाराणसी, सन् 1984,पृ॰ 1-38

[cxliii]वही, पृ॰ 1,40

[cxliv]वही, पृ॰ 6, 69

[cxlv]आचार्य,रामकुमार, हिन्दी अनुवाद, *कर्पूरमंजरी (राजशेखर),*चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1924,पृ० 1/8

[cxlvi]बसाक, राधा गोविन्द, सिलिमपुर स्टोन इन्सक्रीप्शन ऑफ दी टाइम ऑफ जयपाल देव, एपि० इण्डि० भाग 13, सन् 1915-16, पृ० 283-286

[cxlvii]स्टोन, एम० ए०, अंग्रेजी अनुवाद, *राजतरंगिणी (कल्हण),*भाग दो, वेस्मिन्स्टर, सन् 1900,पृ० 4/68

[cxlviii]शर्मा, केदारनाथ, अनुवाद, *कथासरित्सागर (सोमदेव),*बिहार राष्ट्रभाषापरिषद् पटना, सन् 1926,पृ० 3/210

[cxlix]ब्यूहलर, जी०,*दि पेहेवा इन्सक्रीप्शन फ्रॉम दि टेम्पल ऑफ गरीबनाथ,* एपि० इण्डि० भाग1, सन् 1892, पृ० 208-213

[cl]वहीं, पृ० 184-190

[cli]साहनी, दयाराम,*आहाड़ स्टोन इन्सक्रीप्शन,*एपि० इण्डि० भाग 19,सन् 1927,पृ० 52-62

[clii]ब्यूहलर, एन अनडेटेड प्रशस्ति फ्रॉम दि राईन ऑफ महेन्द्रपाल ऑफ कन्नौज, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 242-244

[cliii]कीलहार्न, देवगढ़ पिलर इन्सक्रीप्शन ऑफ भोजदेवआफ कन्नौज, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 1896-97, पृ० 309-311

[cliv]ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ किंग महेन्द्रपाल द्वितीय, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 176-178

[clv]कीलहार्न, प्लेट ऑफ विग्रहपाल तृतीय, एपि० इण्डि० भाग 29, सन् 1951-52, पृ० 09-11

[clvi]सरकार, डी०सी०, प्लेट फ्रॉम बेलवा ऑफ मह्ीपाल, एपि० इण्डि० भाग 29, सन् 1951-52, पृ० 01-04

[clvii]ब्यूहलर, जी०, *दि पेहेवा इन्सक्रीप्शन फ्रॉम दि टेम्पल ऑफ गरीबनाथ*, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 154-162

[clviii]वही, पृ० 309-10

[clix]मजूमदार,आर०सी०,*गुर्जर प्रतिहार राजा भोज की ग्वालियरप्रशस्ति,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925,पृ० 96-114

[clx]भण्डारकर, डी० आर०,*घटियाला इन्सक्रीप्शन ऑफ कक्कुक,* संवत् 918, एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08,पृ० 198-200

[clxi]ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, *प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,* संवत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14,सन् 1917-18,पृ० 176-188

[clxii]साहनी, दयाराम,*आहाड़ स्टोन इन्सक्रीप्शन*, एपि० इण्डि० भाग 19,सन् 1927,पृ० 15-19

[clxiii]ओझा, गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,*संवत् 1003,एपि० इण्डि० भाग 14,सन् 1917-18,पृ० 176-190

[clxiv]भण्डारकर, डी० आर०,*बुचकला इन्सक्रीप्शन ऑफ नागभट्ट*, संवत् 872, एपि० इण्डि० भाग 9,सन् 1907-08,पृ० 195-200

[clxv]राय, गंगासागर, हिन्दी अनुवाद, *बालरामायण (राजशेखर),*सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1984,पृ० 1/8/8

[clxvi]मजूमदार, *मिहिरभोज का ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 18,1925, पृ० 99-100

[clxvii]भण्डारकर, डी० आर०, *घटियाला इन्सक्रीप्शन ऑफ कक्कुक,*संवत्, 918, एपि० इण्डि० भाग 9,सन् 1907-08, पृ० 280,ज० रा० ए० सो०,1894, पृ० 6-8

[clxviii]मजूमदार,*मिहिरभोज का ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर अभिलेख*, एपि० इण्डि० भाग 18,सन् 1925, पृ० 99-102,

[clxix]भण्डारकर, डी० आर०, *घटियाला इन्सक्रीप्शन ऑफ कक्कुक,*संवत्, 918, एपि० इण्डि० भाग 9,सन् 1907-08, पृ० 200,विभूति भूषण मिश्र, पृ० 88

[clxx] ब्यूह्लर, जी०,*पेहेवा प्रशस्ति ऑफ भोजदेव*, एपि० इण्डि० भाग 1,1892 पृ० 186

[clxxi] कीलहार्न, प्रो० एफ०,*नोट ऑन दि टू कॉपर प्लेट इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ महेन्द्रपाल ऑफ कन्नौज,* एपि० इण्डि० भाग 9,सन् 1907-08,पृ० 6-10

[clxxii]साहनी, दयाराम,*आहार स्टोन इन्सक्रीप्शन,* एपि० इण्डि० भाग 19, 1927, पृ० 52-62

[clxxiii]त्रिपाठी, डॉ० यमुनाराम 'यमुनेश : चातक', *काव्यमीमांसा (राजशेखर),*शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1996,पृ० 10/59

[clxxiv]आयंगर, के०वी० रगांस्वामी, अंग्रेजी अनुवाद *(कृत्यकल्पतरू- लक्ष्मीधर भट्ट), गृहस्थ काण्ड,*ओरियन्टेल इंस्टीट्यूट, बडौदा, सन् 1950,पृ० 252

[clxxv]बर्नेट, डी०, *राष्ट्रकूटो के कुछ छोटे अभिलेख*, एपि० इण्डि० भाग 16,सन् 1920-22,पृ० 275-77

[clxxvi]कीलहार्न, प्रो० एफ०, *सीयदोणी पत्थर अभिलेख*, एपि० इण्डि० भाग 1,सन् 1892, पृ० 174-79

[clxxvii]वहीं, पृ० 162-79

[clxxviii]कीलहार्न, प्रो० एफ०, *नोट ऑन दि टू कॉपर प्लेट इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ महेन्द्रपाल ऑफ कन्नौज*, एपि० इण्डि० भाग 9,सन् 1907-08, पृ० 6-12

[clxxix]शर्मा, श्री गुरूप्रसाद, हिन्दी अनुवाद *(पराशर स्मृति),*चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सन् 1982, पृ० 129

[clxxx]सचाऊ, ई० सी०, अल्बरूनीस इंडिया, चांद, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1964,पृ० 270 -276

[clxxxi]रामशर्मा, आचार्य, हिन्दी अनुवाद *(विष्णु पुराण)* संस्कृति संस्थान, बरेली, 1969,पृ० 110

[clxxxii]भट्ट, जी० पी० हिन्दी अनुवाद *(स्कन्द पुराण),* दिल्ली, 1996, पृ० 334

[clxxxiii]जर्नल ऑफ न्यूमिस्मेटिक्स सोसाइटी ऑफ इंडिया (ज० न्यू० सो० इ०) भाग17, सन् 1910, पृ० 70- 71

[clxxxiv]विज्ञानेश्वर की व्याख्या *(याज्ञवल्क्य स्मृति),आचार काण्ड,* 5/120, मन्मथ नाथदत्त, अंग्रेजी अनुवाद, नई दिल्ली, परिमल पब्लेशिन, 2005

[clxxxv]नदवी, सुलेमान,*अरब और उत्तर भारत के संबंध (इलियट एण्ड डाउसन, जिल्द 1, पृ० 16)* हिन्दुस्तान एकेडमी, सयुक्त प्राप्त (उ०प्र०), प्रथम सं० 1930

[clxxxvi]वही, पृ० 76

[clxxxvii]जिनेश्वर कृत *कथाकोषप्रकरण,* श्रीमद् बहादुर सिंह जी सिंघी, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्यो भवन, बंबई, 1949, पृ० 115,

[clxxxviii]शर्मा, दशरथ,*राजस्थान थ्रू दि एजेज, खण्ड 1,*बीकानेर, 1966, पृ० 333-34

[clxxxix]वही, पृ० 333-35

[cxc]मजूमदार,*मिहिरभोज का ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर अभिलेख,*एपि० इण्डि० भाग 18, 1925, पृ० 99-102

[cxci]मेधातिथि (मनुस्मृति पर भाष्य), *कुल्लूक भट्ट की टीका सहित*, बंबई, सन् 1946, पृ० 117

[cxcii]ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द,*प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाईम ऑफ (दि प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,*संवत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 182

[cxciii]ह्यूल्टेज, ई०,*दामोदरपुर ताम्रपत्र,*वि०स० 1197, एपि० इण्डि० भाग 11, सन् 1911-12, पृ० 40

[cxciv]जैन, प्रेमसुमन, *कुवलयमाला कथा का सांस्कृतिक अध्ययन*, प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, बिहार, पृ० 40

[cxcv]उपमिति भव प्रपंचकथा, *महोपाध्याय विनयसागर*, राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर, सन् 1985, पृ०सं० 85

[cxcvi]जिनेश्वर कृत कथा कोष प्रकरण , श्रीमद् बहादुर सिंह जी सिंघी*, सिंघी जैन ग्रन्थमाला,* भारतीय विद्यो भवन, बंबई, 1949, पृ० 115

[cxcvii]सत्तराम, बी० ए०,*अल्बरूनी वर्णित भारत, भाग दो*, पब्लिकेशन स्कीम जयपुर, संस्करण 1994, पृ० 205

[cxcviii]शास्त्री, पंडित हरप्रसाद (*वृहद्धर्म पुराण) बिबलोथिका इंडिका*, कलकत्ता, सन् 1988, पृ० 319-35

[cxcix]यादव, डॉ० झिनकू,*समराइच्चकथ एक सांस्कृतिक अध्ययन*, भारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 1977, पृ० 112,

[cc]आचार्य, जी० वी०, ए ग्राण्ट ऑफ दि गुर्जर किंग, जयभट्ट तृतीय, एपि० इण्डि० भाग 23, सन् 1936, पृ० 147-149

[cci]चतुष्पदी हि नि ता ।षा प्रतिष्ठश्रेणी ब्रह्मव्ये :

एतां आरूहा नि श्रेणीम् ब्रह्मलोके महीयते ।। :

महाभारत, शान्तिपर्व 15-242, रामनारायण शास्त्री, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० 2063

[ccii]राय, गंगासागर,*काव्यमीमांसा (राजशेखर)*, हिन्दी अनुवाद, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1982 ,पृ० 17-198

[cciii]वही, पृ० 13-11

[cciv]आचार्य, रामकुमार, हिन्दी अनुवाद, *कर्पूर मंजरी (राजशेखर),*चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1980 , पृ० 1, 16-26

[ccv]वही, पृ० 4.3-1

[ccvi]वही, पृ० 115.10

[ccvii]राय, गंगा सागर, हिन्दी अनुवाद, *बाल रामायण* (*राजशेखर)*, सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1984 , पृ० 100.4,

[ccviii]कोनोव, एस०, हड्डाला अभिलेख, एपि० इण्डि० भाग 12, सन् 14-1913 , पृ० 95-190,

[ccix]यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्त ।:

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा।।:

हरगोविन्द शास्त्री, मनुस्मृति, पृ० 3/77, वाराणसी, 1979

[ccx]मजूमदार,*मिहिर भोज का ग्वालियर मंदिर अभिलेख*, एपि० इ० भाग18, सन् 1925, पृ० 99-104

[ccxi]राय, गंगा सागर हिन्दी अनुवादित, *बाल रामायण (राजशेखर)*, सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1984, पृ० 195.40.6

[ccxii]मजूमदार, आर० सी० *बाउक की जोधपुर प्रशस्ति*, एपि० इण्डि० भाग 18,सन् 1925-26, पृ० 87-99

[ccxiii]पुरी, बी० एन०,*द हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहार,*मुंशी राम मनोहर लाल, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1986, पृ० 139

[ccxiv]राय, गंगासागर हिन्दी अनुवाद, *काव्यमीमांसा (राजशेखर),*चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1982 , पृ० 46.5

[ccxv]शास्त्री, जीवनन्द हिन्दी अनुवाद, *विद्धशालभंजिका (राजशेखर),*वाराणसी, 1965 , पृ० 34.24.1

[ccxvi]साहनी, दयाराम, *आहाड़ स्टोन इन्सक्रीप्शन,*एपि० इण्डि० भाग 19,1927-28, पृ० 62-52

[ccxvii]गंगा, वेश्याश्मने कामुकसागर राय, *काव्यमीमांसा (राजशेखर),*चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1982, पृ० 123.11,

[ccxviii]भण्डारकर, डी० आर०,*घटियाला इन्सक्रीप्शन ऑफ कक्कुक*, संवत् 918,एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08 , पृ० 13-208,

[ccxix]वहीं, पृ० 3/99

[ccxx]आचार्य, रामकुमार हिन्दी अनुवाद, *कर्पूरमंजरी (राजशेखर),*पृ० 1/13,चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1980

[ccxxi]वहीं, पृ० 1/10

[ccxxii]पुरी, बी० एन०,द *हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहार,* मुंशीराम मनोहर लाल लखनऊ, द्वितीय संस्करण 1986 पृ० 125,

[ccxxiii]कीलहार्न, प्रो० एफ०,*टू कॉपर प्लेट इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ महेन्द्रपाल ऑफ कन्नौज (ऊणा),*एपि० इण्डि० भाग, 9,सन् 1907,पृ० 6-10

[ccxxiv]आचार्य, रामकुमार, हिन्दी अनुवाद, *कर्पूरमंजरी(राजशेखर),* चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, पृ० 4/1/165, 1980

[ccxxv] त्रिपाठी, डा० यमुनाराम 'यमुनेश : चातक', *काव्यमीमांसा (राजशेखर),* शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1996

[ccxxvi] कोनोव,एस०, *हड्डाला अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 12, सन् 1913-14, पृ० 197

[ccxxvii] भण्डारकर, डी० आर०, *संजन प्लेट ऑफ अमोघवर्ष प्रथम,* शकसंवत् , 793, एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925-26, पृ० 235

[ccxxviii] त्रिपाठी, डा० यमुनाराम 'यमुनेश : चातक', *काव्यमीमांसा (राजशेखर),* शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1996

[ccxxix] मजूमदार, आर० सी०, *मिहिरभोज का ग्वालियर मंदिर अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 104

ccxxx ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, *प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाईम ऑफ (दि प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय,* ऑफ महोदया, संवत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14, 1917-18, पृ० 182

ccxxxi आचार्य रामकुमार, हिन्दी व्याख्या, *कर्पुरमंजरी (राजशेखर),* 4.23.155, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1980

ccxxxii श्लाध्यस्तयानुजौडसौ मघवमुदमुषोमेघनादस्य संख्ये।
सौमित्रिस्तीव्रदण्ड: प्रतिहरणविधेर्य: प्रतिहार आसीत् ।।
आसरि० 1903-04, आर० सी० मजूमदार, 1924-25, पृ०280, 168

ccxxxiii ओझा, गौ० हीराचंद, *प्रताबगढ़ अभिलेख ऑफ महेन्द्रपाल द्वितीय,* संवत् - 1003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 188

ccxxxiv मजूमदार, आर० सी०, *मिहिरभोज का ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 115

ccxxxv त्रिपाठी, डा० यमुनाराम 'यमुनेश : चातक', *काव्यमीमांसा (राजशेखर),* 18-217, शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1996

ccxxxvi शर्मा, रामेश्वर प्रसाद राजशेखर और उसका युग, पृ० 165

ccxxxvii ब्युहलर, जी०, *पेहोवा प्रशस्ति ऑफ भोज,* एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 187

ccxxxviii मजूमदार,आर० सी०, *दि ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि गुर्जर- प्रतिहार किंग भोज,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 99

ccxxxix कीलहार्न, प्रो॰ एफ॰, *सियदोनी स्टोन इन्सक्रीप्शन,* एपि॰ इण्डि॰ भाग 1, सन् 1892, पृ॰ 162-67

ccxl ओझा, *गौरीशंकर हीराचंद प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाईम ऑफ (दि प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय,* ऑफ महोदया, संवत् 1003, एपि॰ इण्डि॰ भाग 14, 1917-18, पृ॰ 187

ccxli धनपाल, *तिलकमजंरी,* निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1912 तथा कॉवेल और टॉमस् का अंग्रेजी अनुवाद, मोतीलाल बनारसी दास, 1961

ccxlii सुलेमान सैय्यद नदवी, *अरब और भारत के संबंध,* हिन्दुस्तानी एकेडमी, सयुंक्त प्रान्त, प्रथम सं॰ 1930

ccxliii ई॰ ह्यूल्तेज, *द टू इन्सक्रीप्शन ऑफ दि वैल्लभट्टश्वामिन टेम्पल एट ग्वालियर,* एपि॰ इण्डि॰ भाग 1, सन् 1892, पृ॰ 159

ccxliv वही, एपि॰ इण्डि॰ भाग 1, सन् 1892, पृ॰ 154-162

ccxlv मिराशी, प्रो॰ वी॰ वी॰, *खजुराहो इन्सक्रीप्शन,* एपि॰ इण्डि॰ भाग 24, 1937-38, पृ॰ 331

ccxlvi व्यूहलर, जी॰, *दि पेहेवा इन्सक्रीप्शन फ्रॉम दि टेम्पल ऑफ गरीबनाथ,* एपि॰ इण्डि॰ भाग 1, सन् 1892, पृ॰ 184-187

[ccxlvii] अल् बरूनी, *किताबुल हिन्द, ई० सी० सखाऊ का अंग्रेजी अनुवाद*, 2 जिल्दों में, लन्दन, (वी० ए० सत्तराम, अल्बरूनी वर्णित भारत, दो भाग, पब्लिकेशन स्कीम जयपुर, द्वितीय संस्करण, 1990) पृ० 41-46, 1914

[ccxlviii] ह्यूल्तेज, ई०, *बांसवाड़ा प्लेट ऑफ भोजदेव* (वि०स० 1076), एपि० इण्डि० भाग 11, सन् 1911-12, पृ० 181

[ccxlix] जैन, प्रेमसुमन, *कुवलयमाला का सांस्कृतिक अध्ययन*, प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिसां शोध संस्थान, वैशाली, बिहार, पृ० 217

[ccl] नदवी, सुलेमान, *अरब और भारत के संबंध* (इलियट एण्ड डाउसन जिल्द 1, पृ० 4) हिन्दुस्तानी एकेडेमी, सयुंक्त प्रांत, प्रथम सं० 1930

[ccli] ह्यूल्टेज, ई०, *दि टू इन्सक्रीप्शन ऑफ दि वैल्लभट्टस्वामिन टेम्पल एट ग्वालियर,* एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 156

[cclii] भण्डारकर, डी० आर०, *घटियाला इन्सक्रीप्शन्स ऑफ कक्कुक*, संवत् 918, एपि० इण्डि० भाग 9, 1907-08, पृ० 277-79

[ccliii] भण्डारकर, डी० आर० घटियाला इन्सक्रीप्शन, एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08, पृ० 278-289

[ccliv] सरकार,डी० सी० प्लेट फ्रॉम बेलवा ऑफ महीपाल, एपि० इण्डि भाग 29, सन् 1951-52, पृ० 04-05

cclv कीलहार्न, प्रो० एफ०, *टू कॉपर प्लेट इन्सक्रीप्शन् ऑफ दि टाइम ऑफ महेन्द्रपाल ऑफ कन्नौज* (प्लेट ऑफ अवनिवर्मन, वि० सं० 956), (ऊना) जूनागढ़, एपि० इ० भाग 9, 1907-08, पृ० 2-4

cclvi सूरि, हेमचन्द्र, द्वयाश्रय काव्य, 3-18, *अभयतिलक गणि की टीका* सहित, 2 जिल्दों में सं० कठवते, बम्बई 1915

cclvii बर्नेट, एल० डी०, *टू जैन इन्सक्रीप्शन ऑफ निलगुंड एंड लक्ष्मेश्वर* (इगनौडा अभिलेख), एपि० इण्डि० भाग 16, 1921-22, पृ० 55-56

cclviii कीलहार्न, एफ०, *कमौली कॉपर प्लेट ऑफ दि किगं वत्सराज,* वि० सं० 1191, एपि० इण्डि० भाग 4, 1896-97, पृ० 130-33,

cclix ब्यूहलर, जी०, *दि पेहेवा इन्सक्रीप्शन फ्रॉम दि टेम्पल ऑफ गरीबनाथ,* (882 ई०), एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 187

cclx कीलहार्न, प्रो० एफ, *टू कॉपर प्लेट इन्सक्रीप्शन् ऑफ दि टाइम ऑफ महेन्द्रपाल ऑफ कन्नौज* (प्लेट ऑफ अवनिवर्मन, वि० सं० 956), (ऊणा) जूनागढ़, एपि० इण्डि० खण्ड 9, सन् 1907-08, पृ० 2 व आगे

cclxi भण्डारकर, डा० डी० आर०, *कारमाइकेल लेक्चर्स*, पृ० 208, 1921

cclxii भण्डारकर, डी० आर०, जराएसो०, बम्बई शाखा, जिल्द 21, पृ० 413

cclxiii शर्मा, दशरथ, *राजस्थान थ्रू दि एजेज*, जिल्द 1, बिकानेर, 1966, पृ० 498-99,

[cclxiv] साहनी, दयाराम, *आहाड स्टोन इन्सक्रीप्शन*, एपि० इण्डि० खण्ड 19, सन् 1927, पृ० 52

[cclxv] शर्मा, दशरथ, *राजस्थान थ्रू दि एजेज्,* खण्ड 1, बीकानेर, 1966, पृ० 504

[cclxvi] कीलहार्न, प्रो० एफ०, *सीयदोणी स्टोन इन्सक्रीप्शन्* , एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 162-65

[cclxvii] यादव, डा० झिनकू, *समराइच्चकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन,* (हरिभद्र- समराइच्चकहा, बिबलोथिका इण्डिका, कलकत्ता 1926) , भारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 1977

[cclxviii] साहनी, दयाराम, *सहेत महेत प्लेट ऑफ गोविन्द्र चन्द्र* (नदाल स्टोन इन्सक्रीप्शन ऑफ राज्यपाल, वि० सं० 1200), एपि० इण्डि० भाग 11, सन् 1911- 12, पृ० 41

[cclxix] फ्लीट, जे० एफ०, *राजौरगढ़ अभिलेख*, एपि० इण्डि० खण्ड 3, सन् 1894-95, पृ० 168,

[cclxx] शर्मा, रामशरण, *भारतीय सामंतवाद,* राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1990, पृ० 190

[cclxxi] नियोगी, रोमा, *दि हिस्ट्री ऑफ दि गहड़वाल डायनेस्टी*, कलकत्ता, 1959, पृ० 251

[cclxxii] शर्मा, रामशरण, *भारतीय सामंतवाद*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1990, पृ०सं० 209

[cclxxiii]ओझा,रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*महोदया के राजा महेन्द्रपाल द्वितीय का प्रतापगढ़ अभिलेख*, सम्वत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14, 1917-18,पृ० 187

[cclxxiv]कीलहार्न, एफ० *सीयदोणी पत्थर अभिलेख*, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892,पृ० 169-171

[cclxxv]वही, सन् 1892,पृ० 168

[cclxxvi]वही, सन् 1892,पृ० 167-168

[cclxxvii]कीलहार्न, एफ० *सीयदोणी पत्थर अभिलेख*, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 169-171

[cclxxviii]ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, *प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ किंग महेन्द्रपाल द्वितीय,*संवत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14,सन् 1917- 18,पृ० 178

[cclxxix]मजूमदार, आर० सी०,*गुर्जरप्रतिहार राजा भोज की ग्वालियर प्रशस्ति,* एपि० इण्डि० भाग 13,सन् 1925,पृ० 110-13

[cclxxx]डिसालकर, डी० बी०,ए० *फ्रैगमैन्ट्री प्रतिहारइन्सक्रीप्शन*, एपि० इण्डि० भाग 19, सन् 1927,पृ० 174-76

[cclxxxi]शर्मा, दशरथ,*राजस्थान थ्रू दि एजेज*, खण्ड 1,बीकानेर, 1966,पृ 370

[cclxxxii]कीलहार्न, एफ० *सीयदोणी पत्थर अभिलेख*, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 154-162, पृ० 184

[cclxxxiii] मजूमदार, आर० सी०, *गुर्जरप्रतिहार राजा भोज का ग्वालियर प्रशस्ति,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925,पृ० 114

[cclxxxiv] भण्डारकर, डी० आर०,*'परमेश्वरी श्री वत्सराजदेवया' - बुचकला इन्सक्रीप्शन ऑफ नागभट्ट,*संवत् 872, एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08, पृ० 200

[cclxxxv] ओं नमो विष्णवे।

यस्मिन् विशन्ति भूतानि यतस्सर्गस्थितीमते
स वः पायात् ऋषीकेशो निर्गुणस्सगुणश्च यः।।

मजूमदार, आर० सी०,*बाउक का जोधपुर अभिलेख*, वि० संवत् 894, एपि० इण्डि० भाग 18,सन् 1925, पृ० 97-98

[cclxxxvi] ओं नमो विष्णवे ।

शेषाहितल्पध्वलाधार भाग भासि वक्षः स्थल वोल्लसित कौस्तुभकान्ति शोणं श्याम वपुः ।।

मजूमदार, आर० सी० *गुर्जर प्रतिहार राजा भोज की ग्वालियरप्रशस्ति,* एपि० इण्डि० भाग 18,सन् 1925, पृ० 110-14

[cclxxxvii] भण्डारकर, डी० आर०,*बुचकला इन्सक्रीप्शन ऑफ नागभट्ट*, संवत् 872, एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08, पृ० 198-200

[cclxxxviii] पुरी, बैजनाथ,*दि हिस्ट्रीऑफ दि गुर्जर प्रतिहाराज*, बम्बई, 1957,पृ० 210

[cclxxxix]मजूमदार, आर० सी०,*गुर्जरप्रतिहार राजा भोज की ग्वालियर प्रशस्ति,* एपि० इण्डि० भाग 18,सन् 1925,पृ० 99-114

[ccxc]वही, एपि० इण्डि० भाग 18,सन् 1925,पृ० 96

[ccxci]कीलहॉर्न, एफ०, *सियदोणी पत्थर अभिलेख*, एपि० इण्डि० भाग 1,सन् 1892, पृ०162

[ccxcii]कीलहार्न, एफ०,*राजोरगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ मथन देव*, वि० सं० 1016, एपि० इण्डि० भाग 3, सन् 1895,पृ० 263-267

[ccxciii]मजूमदार, आर० सी०,*गुर्जर प्रतिहार राजा भोज की ग्वालियर प्रशस्ति,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925,पृ० 110

[ccxciv]शास्त्री, एच०कृष्णा,*गैरा प्लेट्स ऑफ दि चन्देल त्रैलोक्यवर्मन*, वि० सं०1261, एपि० इण्डि० भाग 16,सन् 1921-22,पृ० 272

[ccxcv]मजूमदार, आर० सी०,*गुर्जर प्रतिहार राजा भोज का ग्वालियर प्रशस्ति,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925,पृ० 96

[ccxcvi]ओझा, रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,*सम्वत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14,सन् 1917-18,पृ० 185-88

[ccxcvii]कीलहार्न, एफ०,*सीयदोणी पत्थर अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 1,सन् 1892,पृ० 162-179

[ccxcviii]कोनोव, स्टेन, हंसोट *प्लेट्स ऑफ दि चाहमान भर्तृवढढ*, सम्वत् 813 एपि० इण्डि० भाग 12, सन् 1913-14,पृ० 197

[ccxcix]दत्तात्रेय, बालकृष्ण, *इन्सक्रिप्शन ऑफ गुजरात,*न्यू० एपि० इण्डि० भाग 1 और 2,पृ० 43

[ccc]कीलहॉर्न, प्रो० एफ०, *सियदोणी पत्थर अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 1,सन् 1892, पृ० 154-162,

[ccci]ओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतावगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,*सम्वत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18,पृ० 176-188

[cccii]वही, सन् 1917-18, पृ० 182

[ccciii]शर्मा, दशरथ,*राजस्थान थ्रू दि एजेज्,* खण्ड 1,बीकानेर, 1966, पृ० 383-87 पर उद्धृत,

[ccciv]कीलहॉर्न, प्रो० एफ०,*नोट ऑन दि टू कॉपर प्लेट इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम आफ महेन्द्रपाल आफ कन्नौज,* एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08,पृ० 130-131

[cccv]इलियट एण्ड डाउसन्, *हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ऐज टोल्ड बाई इट्स ऑन हिस्टॉरियन्स,*खण्ड 1,लन्दन 1867-1877, पुनर्मुद्रित, किताबमहल, इलाहाबाद, पृ० 23

[cccvi]भण्डारकर, डी० आर०, *घटियाला इन्सक्रीप्शन ऑफ कक्कुक,* संवत् 918, एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08, पृ० 278-80

[cccvii]मजूमदार, आर० सी०, *द ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि गुर्जर-प्रतिहार किंग भोज,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 99-114

[cccviii] *एनुअल रिपोर्ट ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,* 1920-21, पृ० 35

[cccix]विवक्षपूर्वा हि शब्दास्तामेव विवक्षां सूचयेयु: ,

राजशेखरकृत काव्यमीमांसा, यमुनाराम त्रिपाठी, 'यमुनेश: चातक' व्याख्याकार, काव्यमीमांसा 8/91, शारदा संस्कृत संस्थान, 1996

[cccx]मुकर्जी, आर० के०, *जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी,* 1895, पृ० 513-21

[cccxi]भण्डारकर, डी० आर०, *बुचकला इन्सक्रीप्शन ऑफ नागभट्ट,* सम्वत् 872, एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08, पृ० 199,

[cccxii]कीलहॉर्न, *देवगढ़ स्तम्भ लेख,* एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 1896-97, पृ० 309-10

[cccxiii]शर्मा, दशरथ, *राजस्थान थ्रू दि एजेज,* खण्ड 1, बीकानेर, 1966, पृ० 426

[cccxiv]मजूमदार, आर० सी०, *द ग्वालियर प्रशस्ति आफ द गुर्जर प्रतिहार किंग भोज,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 99-114

cccxvओझा,राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतابगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,*सम्वत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 182

cccxvi*आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट* 1908-09, पृ० 108

cccxviiओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाहम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,*सम्वत् 2003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 182

cccxviiiवही, एपि० इण्डि० भाग 14, पृ० 187

cccxixकीलहार्न, प्रो० एफ०,*बादल पिलर इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ नारायणपाल,* एपि० इण्डि० भाग 15, सन् 1919-20, पृ० 138-141

cccxxइलियट एण्ड हाउसन, *हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, एज टोल्ड बाई ईट्स ऑन हिस्टारियन्स,*खण्ड 1,पृ० 23-29

लन्दन 1867-1877, पुनर्मुद्रित, किताब महल, इलाहाबाद

cccxxi वहीं, खण्ड 1,पृ० 4

cccxxiiमजूमदार, आर० सी०,*द ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि गुर्जर प्रतिहार किंग भोज,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 99-114

cccxxiiiअल्बरूनी, *किताब उल हिन्द, ई०सी० सखाऊ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद,* खण्ड-2, लंदन, 1914, पृ० 173-174

[cccxxiv]राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, यमुना राम त्रिपाठी 'यमुनेश : चातक' आचार्य, *व्याख्याकार काव्यमीमांसा* 28/264, शारदा संस्कृत संस्थान 1996

[cccxxv]वहीं, काव्यमीमांसा 18/ 257

[cccxxvi]वहीं, काव्यमीमांसा 18/245

[cccxxvii] कीलहॉर्न, राधनपुर प्लेट ऑफ गोविन्द तृतीय, एपि० इण्डि० भाग 6, सन् 1900-01, पृ० 239

भण्डारकर, करहड प्लेट ऑफ कृष्ण तृतीय, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 1896-97, पृ० 270

फ्लीट, नीलगुड इन्स्क्रिप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ अमोघवर्ष, एपि० इण्डि० भाग 6, सन् 1900-01, पृ० 98

[cccxxviii] कीलहॉर्न, देवगढ़ पिलर इन्स्क्रिप्शन ऑफ भोजदेव, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 896-97, पृ० 309

वही, रोहतासगढ़ इन्स्क्रिप्शन ऑफ प्रताप, वही, पृ० 311

वही, देवगढ़ पिलर इन्स्क्रिप्शन ऑफ भोज देव, वहीं पृ० 310

वही, सियदोणी इन्स्क्रिप्शन , एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 173

ह्युल्टेज, टू इन्स्क्रिप्शन ऑफ दि वैलभट्टस्वामि टेम्पल, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 154

[cccxxix] कीलहॉर्न, देवगढ़ पिलर इन्स्क्रिप्शन ऑफ भोजदेव, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 1896-97, पृ० 309

[cccxxx] वही, रोहतासगढ़, इन्स्क्रिप्शन ऑफ प्रताप, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 1896-97, पृ० 311

[cccxxxi] भण्डारकर, घटियाला इन्स्क्रिप्शन , एपि० इण्डि० भाग 9 , सन् 1907-08, पृ० 277

वही, बुचकला, इन्स्क्रिप्शन ऑफ नागभट्ट प्रथम, एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08, पृ० 198

कीलहार्न, रोहतासगढ़ इन्स्क्रिप्शन ऑफ प्रताप, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 1896-97, पृ० 311

cccxxxii सरकार, डी० सी०, बेलवा प्लेट 1, एपि० इण्डि० भाग 29,सन् 1951-52, पृ० 02,

वहीं, बेलवा प्लेट 2 ऑफ विग्रहपाल द्वितीय, वही, पृ० 09

cccxxxiii सरकार,डी० सी०, कुरेठा से प्राप्त दो प्रतिहार ग्राण्ट, एपि० इण्डि० भाग 30, सन् 1953, पृ० 193

वही, पृ० 149

cccxxxiv सरकार, डी० सी०, भतूरिया इन्स्क्रिप्शन ऑफ राज्यपाल, एपि० इण्डि० भाग 33, सन् 1959 पृ० 151

हयुल्टेज, इन्स्क्रिप्शन ऑफ बैलभट्टस्वामी टेम्पल, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 154

cccxxxv कीलहॉर्न, देवगढ़ पिलर इन्स्क्रिप्शन ऑफ भोजदेव, एपि० इण्डि० भाग 4, 1896-97, पृ० 309

cccxxxvi वही, पृ० 310

cccxxxvii ब्युह्लर, पेहोवा इन्स्क्रिप्शन फ्राम द टेम्पल ऑफ गरीबनाथ, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 184

cccxxxviii मजुमदार, ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि किंग ऑफ भोज, एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 102

वही, पृ० 103

cccxxxix कीलहॉर्न, देवगढ़ पिलर इन्स्क्रिप्शन ऑफ भोजदेव, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 896-97, पृ० 309

वही, रोहतासगढ़ इन्स्क्रिप्शन ऑफ प्रताप, वही, पृ० 311

वही, देवगढ़ पिलर इन्स्क्रिप्शन ऑफ भोज देव, वहीं पृ० 310

वही, सियदोणी इन्स्क्रिप्शन, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 173

ह्युल्टेज, टू इन्स्क्रिप्शन ऑफ दि वैलभट्टस्वामि, टेम्पल, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 154

मजुमदार, ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि किंग ऑफ भोज, एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 102

ब्युह्लर, पेहोवा इन्स्क्रिप्शन फ्राम द टेम्पल ऑफ गरीबनाथ, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 184

सरकार,डी० सी०, कुरेठा से प्राप्त दो प्रतिहार ग्राण्ट, एपि० इण्डि० भाग 30, सन् 1953, पृ० 193

वही, पृ० 149

cccxl कीलहॉर्न, अस्सी इन्स्क्रिप्शन ऑफ महीपाल, इण्डि० एण्टि० भाग 16, पृ० 173

वही, दशावतार इन्स्क्रिप्शन, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 1896-97, पृ० 309

cccxli सरकारी,डी० सी०, कुरेठा से प्राप्त दो प्रतिहार ग्राण्ट, एपि० इण्डि० भाग 30, सन् 1953, पृ० 193

वही, पृ० 149

ब्हुह्लर, हड्डाला कॉपर प्लेट, इण्डि० एण्टि० भाग 12, सन् 1913-14, पृ० 190

cccxlii भण्डारकर, करहड प्लेट ऑफ कृष्ण तृतीय, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 1896-97, पृ० 270

व्युहलर, पेहेवा इन्स्क्रिप्शन, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 244

cccxliii कीलहॉर्न, देवगढ़ पिलर इन्स्क्रिप्शन ऑफ भोजदेव, एपि० इण्डि० भाग 4, सन् 896-97, पृ० 309

वही, रोहतासगढ़ इन्सक्रीपशन ऑफ प्रताप, वही, पृ० 311

ह्युल्टेज, टू इन्स्क्रिप्शन ऑफ दि वैलभट्टस्वामी, टेम्पल, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 154

cccxliv कीलहार्न, राजौरगढ़ इन्सक्रीप्शन, एपि० इण्डि० भाग 3, सन् 1894-95 पृ० 263

cccxlv ब्युह्लर, अनडेटेड प्रशस्ति ऑफ महेन्द्रपाल प्रथम, एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 242

cccxlvi ओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद, *प्रताबगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,* सम्वत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 182

cccxlvii कोनोव, स्टेन, *हड्डाला (ईस्टर्न काठियावाड़) कॉपर प्लेट इन्सक्रिप्शन* शक सं० 836, एपि० इण्डि० भाग 12,सन् 1913-14,पृ० 190-95

cccxlviii कीलॅहार्न, प्रो० एफ, *सीयदोणी पत्थर अभिलेख,* एपि० इ० खण्ड 1, सन् 1892, पृ० 162-179

cccxlix कीलहॉर्न, प्रो० एफ०, *टू कॉपर प्लेट इन्सक्रिप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ महेन्द्रपाल ऑफ कन्नौज (ऊणा),* एपि० इण्डि० भाग 9, पृ० 1-6, सन् 1907

cccl कीलहार्न, प्रो० एफ०, *सीयदोणी प्रत्थर अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 184-190

cccli वही, एपि० इण्डि० भाग 2, सन् 1892, पृ० 262-179

[ccclii]ओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,* सम्वत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 182

[cccliii] कोनोव,स्टेन, *हंसोट प्लेट्स ऑफ दि चाहमान भर्तृबढ़ढ,* सम्वत् 813, एपि० इण्डि० भाग 12, सन् 1913-14, पृ० 197-204

[cccliv] साहनी, दयाराम, *अहाड़ स्टोन इन्सक्रीप्शन,* एपि० इण्डि० भाग 19, सन् 1927,पृ० 52-56,

[ccclv]ओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाहम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,* सम्वत् 1003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18,पृ० 182 -187

[ccclvi]शर्मा, दशरथ,*राजस्थान थ्रू दि एजेज,*खण्ड 1, बीकानेर, 1966, पृ० 401-04

ccclviiदेव, कृष्ण, *टेम्पल्स ऑफ इण्डिया,*आर्यन बुक्स इटंरनेशनल, दिल्ली, सन् 1995,पृ० 1-7

ccclviiiअलैक्स्जेंडर कनिंघम, *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एन्युअल रिपोर्ट,* कलकत्ता, सन् 1874-75 और 1876-77,जिल्द 10,पृ० 101

ccclixह्यूल्टेज, ई०,*मिहिरभोज का ग्वालियर अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 18, 1925, पृ० 99-114,

ccclxकृष्णदेव, *टेम्पल्स ऑफ इण्डिया,*आर्यन बुक्स इंटरनेशनल, दिल्लीसन् 1995, पृ० 112

ccclxiवही, पृ० 22

ccclxiiह्यूल्टेज, ई० *मिहिरभोज का ग्वालियर अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 18,सन् 1925,पृ० 112,

ccclxiiiवही, एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 105-107

ccclxivवही, एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 102

ccclxvकीलहॉर्न, एफ०,*मधुबन प्लेट ऑफ हर्ष,* एपि० इण्डि० भाग 7, सन् 1902-03,पृ० 155-157

ccclxviओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतावगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,* सम्वत् 2003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18,पृ० 177-179

ccclxviiत्रिवेदी, आर० डी०,*टेम्पल्स ऑफ दि प्रतिहार पीरियड इन सेन्ट्रल एशिया,* (इडियां) दिल्ली, सन् 1990,पृ० 125

ccclxviiiमजूमदार, आर० सी०,*जोधपुर इन्सक्रीप्शन ऑफ प्रतिहार बाउक,* वि० सं० 894 एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 87-95

ccclxixअली, रहमान,*आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ दि कलचुरि,* नई दिल्ली, 1980, पृ० 27-29

ccclxxदेव, कृष्ण,*टेक्निकल साइंस एण्ड फाइन आर्टस,* Presidential address- All India Oriental Conference, खण्ड 1, 1961, पृ०343

ccclxxiए०एस०आई०, *एनुअल रिपोर्ट*, 1915-16, पृ० 17 और आगे

ccclxxiiProbably it might be the beginning of creating Kuta in the Sikhara of a temple in north India

ccclxxiiiकैम्रिस्क, एस०,*द हिन्दू टेम्पल,*खण्ड 1, कलकत्ता, 1946, पृ० 169 *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,* एनुअल रिपोर्ट, 1915-16, पृ० 17 और आई०ए०आर० 1977-78, पृ० 99

ccclxxivशाह, के० के०,Op. cit., पृ० 177

ccclxxvत्रिवेदी, एस० के०,*मध्य भारत - प्रतिहार युगीन कला,*भोपाल, 1982, पृ० 117

ccclxxviमजूमदार, आर० सी०, *दि ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि गुर्जर प्रतिहार किंग भोज-1,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 99-105

ccclxxviiमजूमदार, आर० सी०,*जोधपुर इन्सक्रीप्शन ऑफ प्रतिहार बाउक,*वि० सं० 894, एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925,पृ० 97-98

ccclxxviiiओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रताबगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाईम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ*

*महोदया,*सम्वत् 2003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 175-182

ccclxxixमजूमदार, आर० सी०,*दि ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि गुर्जर प्रतिहार किंग भोज-1,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925,पृ० 99-114

ccclxxxकीलहॉर्न, एफ०,*सीयदोणी पत्थराभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 162-167

ccclxxxiभण्डारकर, डी० आर०,*नागभट्ट का बुचकला का शिलालेख,*संवत् 872, एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08, पृ० 198-99

ccclxxxiiबैनर्जी, आ० डी०,*द बानगढ़ ग्रांट ऑफ महीपाल प्रथम,* 9वीं वर्ष, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 324

ccclxxxiii ब्यूह्लर, जी०, *उदेपुर प्रशस्ति ऑफ दि किंग ऑफ मालवा,* एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 222

ccclxxxivमजूमदार, आर० सी०,*जोधपुर इन्सक्रीप्शन ऑफ प्रतिहार बाउक,* वि० सं० 894, एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 96

ccclxxxvओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,*सम्वत् 2003, एपि० इण्डि० भाग 14, 1917-18, पृ० 185-88

ccclxxxviकीलहार्न, प्रो० एफ०, *देवगढ़ स्टोन इन्सक्रीप्शन ऑफ महीपाल देव,* एपि० इण्डि० भाग 1, सन् 1892, पृ० 305-07

ccclxxxviiमजूमदार, आर० सी०,*दि ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ दि गुर्जर प्रतिहार किंग भोज-1,* एपि० इण्डि० भाग 18,1925, पृ० 99-114

ccclxxxviiiआचार्य, रामकुमार, हिन्दी व्याख्या, *कर्पूरमंजरी (राजशेखर),*चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1980

ccclxxxixओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,* सम्वत् 2003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 183

cccxcवही, एपि० इण्डि० भाग 14, 1917-18, पृ० 183-188

cccxciकीलहार्न , प्रो० एफ०,*नोट ऑन दि टू कॉपर प्लेट इन्सक्रीप्शन्स ऑफ दि टाइम ऑफ महेन्द्रपाल आफ कन्नौज,* एपि० इण्डि० भाग 9, सन् 1907-08, पृ० 130-31

cccxciiओझा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद,*प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (द प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,* सम्वत् 2003, एपि० इण्डि० भाग 14, सन् 1917-18, पृ० 176-180,

cccxciiiदिसालकर, डी० बी०,*ए फ्रैगमेंट्री प्रतिहार इन्सक्रीप्शन,* एपि० इण्डि० भाग 19, सन् 1927, पृ० 174-75

cccxcivएनुअल रिपोर्ट, *ऑफ आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,*1925-26,पृ० 141

cccxcvजैन, प्रेम सुमन,*कुवलयमाला कथा का सांस्कृतिक अध्ययन, (उद्योतन सूरि) प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान,* वैशाली, बिहार

cccxcvi त्रिपाठी,डॉ० यमुना राम 'यमुनेश : चातक', *काव्यमीमांसा (राजशेखर),*शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1995

cccxcviiह्यूल्टेज, ई०, *मिहिरभोज का दौलतपुर अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 5, पृ० 13-105, सन् 99-1898

cccxcviiiई० ह्यूल्टेज, *मिहिरभोज का ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख,* एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925 , पृ० 154-162

cccxcixओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, *प्रताबगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाईम ऑफ (दि प्रतिहार) किंग महेन्द्रपाल द्वितीय ऑफ महोदया,* संवत् 1003 एपि० इण्डि० भाग 14, 1917-18, पृ० 182

cdजीवनन्द शास्त्री, हिन्दी अनुवाद, *विद्धशाल भंजिका )राजशेखर*(, वाराणसी, 1965, पृ० 29/1,

cdiशास्त्री, हरिदत्त, *बालभारत (राजशेखर)* हिन्दी व्याख्या, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1969

cdiiमजूमदार, आर० सी०,*गुर्जर प्रतिहारज,* कलकत्ता विश्वविद्यालय, जिल्द10 ,पृ० 125-128

cdiiiयादव, डा० झिनकू,*समराइच्चकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन,* भारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 1977, (हरिभद्र सूरि - समराइच्चकहा, बिबलोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1926

cdivमजूमदार, आर० सी०,*जोधपुर इन्सक्रीप्शन ऑफ प्रतिहार बाउक,* वि० स० 894, एपि० इण्डि० भाग 18, सन् 1925, पृ० 87- 89

cdvरामकुमार आचार्य, हिन्दी व्याख्या, *कर्पूरमंजरी(राजशेखर),* चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1980

# xqtZj&izfrgkj jktkvksa dk vfHkys[k ,oa nkui=

| Ø- la- | vfHkys[k | frfFk ¼foØe lor~ esa½ | bZ0 lu~ | L=ksr | i<us okys dk uke |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | **ukxHkê izFke** | | |
| 1. | बुचकला इन्स्क्रिप्”ान | संवत् 872 | सन् 815 | एपि0इण्डि0 खण्ड IX, पृ0 198–200, सन् 1907–08 | डी0आर0 भण्डारकर |
| | | | **dDdqd ¼dDdqLFk½** | | |
| 1. | घटियाला इन्स्क्रिप्”ान | सं0 918 | सन् 861 | एपि0इण्डि0 खण्ड IX, पृ0 277–286, सन् 1907–08 | डी0आर0 भण्डारकर |
| | | | **oRljkt** | | |
| 1. | कमौली कॉपरप्लेट | सं0 1171 | सन् 1114 | एपि0इण्डि0 खण्ड IV, पृ0 103–104, सन् 1896–97 | एफ0कीलहॉर्न |
| 2. | कुरेठा प्रतिहार ग्राण्ट | सं0 1277 | सन् 1220 | एपि0इण्डि0 खण्ड XXX, पृ0 144–150, सन् 1953 | डी0सी0 सरकार |
| 3. | कुरेठा का अन्य प्रतिहार ग्राण्ट | सं0 1304 | सन् 1247 | एपि0इण्डि0 खण्ड XXX, पृ0 150–152, सन् 1953 | डी0सी0 सरकार |
| | | | **ukxHkê f}rh;** | | |
| 1. | सिवा इन्स्क्रिप्”ान | अनि”चत | – | एपि0इण्डि0 खण्ड IV, पृ0 208, सन् 1898–99 | ई0 हयुल्टेज |
| | | | **fefgj Hkkst** | | |
| 1. | दौलतपुर इन्स्क्रिप्”ान | सं0 900 | सन् 843 | एपि0इण्डि0 खण्ड IV, पृ0 211, सन् 1898–99 | डी0आर0 भण्डारकर |
| 2. | कालंजर इन्स्क्रिप्”ान | – | – | अप्रका”ात | |
| 3. | शनीचरी फ्रैगमेण्ट्री इन्स्क्रिप्”ान | – | – | प्राग्धारा, खण्ड II, पृ0 117 तथा आगे | डी0 बी0 डिसालकर |
| 4. | देवगढ़ जैन पिलर इन्स्क्रिप्”ान | सं0 919 | सन् 862 | एपि0इण्डि0 खण्ड IV, पृ0 309–310, सन् 1896–97 | एफ0 कीलहॉर्न |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 5. | द पेहेवा इन्स्क्रि”ान फ्राम द टेम्पल ऑफ गरीब नाथ | सं0 919 | सन् 862 | एपि0इण्डि0 खण्ड XXIII, पृ0 184–186, सन् 1936 | जी0 ब्यूहलर |
| 6. | ग्वालियर इन्स्क्रि”ान | सं0 932 | सन् 875 | एपि0इण्डि0 खण्ड XI, पृ0 100–108, सन् 1925 | आर0सी0 मजुमदार |
| 7. | अहाड़ इन्स्क्रि”ान | सं0 922 | सन् 865 | एपि0इण्डि0 खण्ड XIX, पृ0 52–62, सन् 1927 | दयाराम साहनी |
| 8. | पेहेवा इन्स्क्रि”ान | सं0 939 | सन् 882 | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 184–90, सन् 1892 | जी0 ब्युहलर |
| 9. | सागरताल इन्स्क्रि”ान | No Date | – | एपि0इण्डि0 खण्ड XVIII, पृ0 99–114, सन् 1925 | आर0सी0 मजुमदार |
| 10. | देहली फ्रैगमेन्ट्री इन्स्क्रि”ान | No Date | – | भण्डारकर लिस्ट क्रमांक 1662 | डी0आर0 भण्डारकर |
| 11. | बार्टन म्यूजियम फ्रैगमेन्ट्री इन्स्क्रि”ान | – | – | एपि0इण्डि0 खण्ड XIX, पृ0 174–177, सन् 1927 | दयाराम साहनी |
| 12. | वराह कॉपर प्लेट | सं0 893 | सन् 836 | एपि00इण्डि0 खण्ड XIX, पृ0 15–19, सन् 1927 | डी0आर0 भण्डारकर |
| 13. | ओसियां जैन टेम्पल इन्स्क्रि”ान | – | | भण्डारकर सुची क्रमांक 72 | डी0आर0 भण्डारकर |
| 14. | जीरागौर कापर प्लेट इन्स्क्रि”ान | सं0 919 | सन् 862 | प्राग्धारा, अंक 13 (2002–03) पृ0 169–179, चित्र 74,75,76 | जे0एन0 सिंह, के0एस0 शुक्ल |
| 15. | नोनहा–नरसिंह लेख | – | | संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, 33–34 दिस0 1984, पृ0 77–82 | के0डी0 वाजपेयी |
| 16. | वैलभट्ट स्वामी टेम्पल इन्स्क्रि”ान (No. 1) | सं0 932 | सन् 875 | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 154–159, सन् 1892 | ई0 ह्युल्टेज |
| 17. | वैलभट्ट स्वामी टेम्पल इन्स्क्रि”ान (No. 2) | सं0 932 | सन् 875 | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 159–162, सन् 1892 | ई0 ह्युल्टेज |
| egUn iky iFke | | | | | |
| 1. | ऊणा कॉपर प्लेट | सं0 950 | सन् 893 | एपि0इण्डि0 खण्ड IX, पृ0 4 व आगे, सन् 1907–08 | एफ0 कीलहॉर्न |

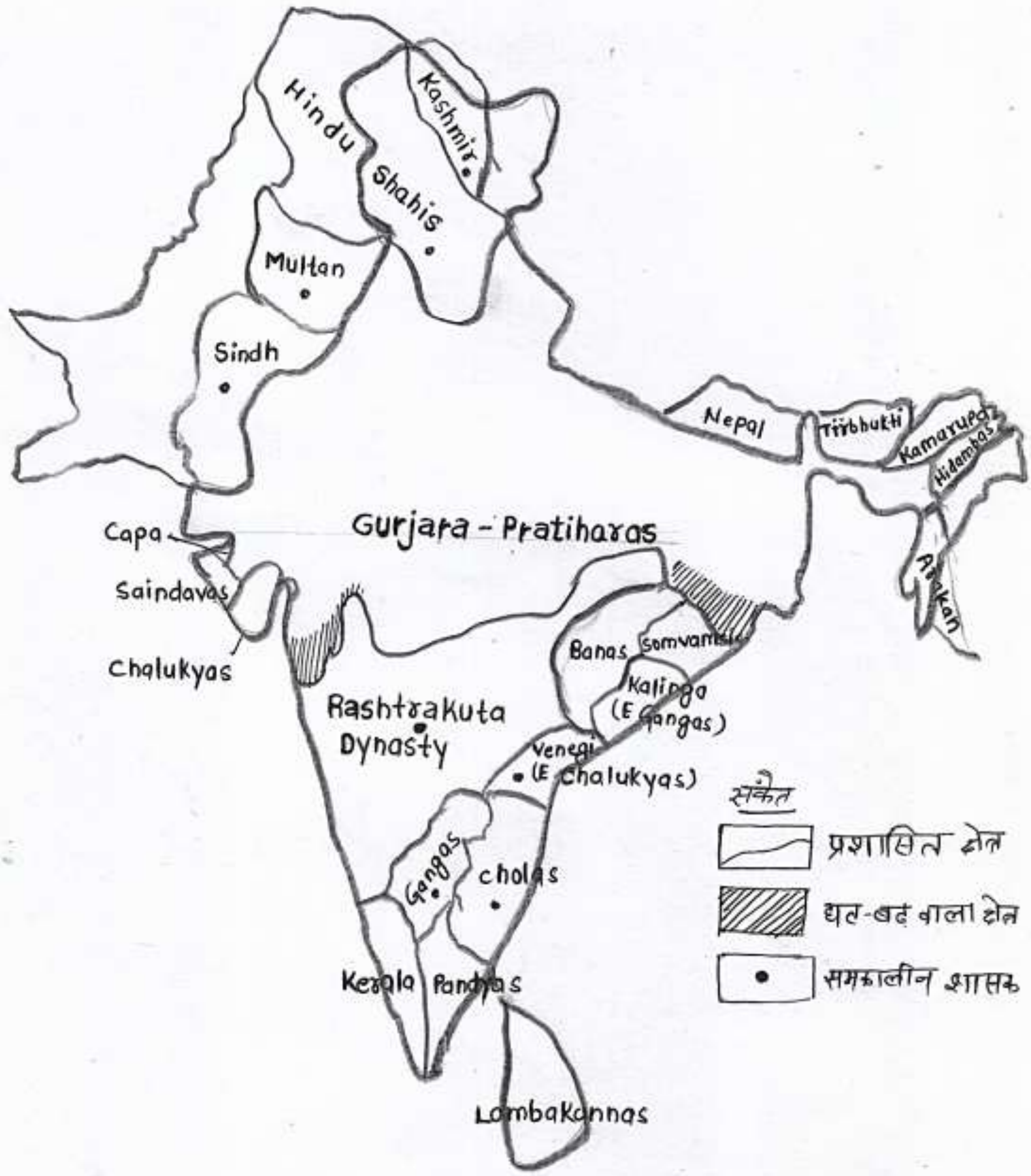
| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 2. | दिघवा–दुबौली कॉपर प्लेट | सं0 955 | सन् 898 | एपि0इण्डि0 खण्ड XV, पृ0 112–115, सन् 1919–20 | जे0एफ0 फ्लीट |
| 3. | ऊना कॉपर प्लेट | सं0 956 | सन् 899 | एपि0इण्डि0 खण्ड IX, पृ0 1–6, सन् 1907–08 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 4. | सीयदोणी इन्स्क्रिप्”ान | सं0 960 | सन् 903 | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 173, सन् 1892 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 5. | पेहोवा इन्स्क्रिप्”ान | No Date | – | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 244–248, सन् 1892 | जी0 ब्युहलर |
| 6. | ब्रिटि”ा म्यूजियम इन्स्क्रिप्”ान | – | – | एम0ए0एस0बी0, खण्ड IV, पृ0 64 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 7. | पहाड़पुर पिलर इन्स्क्रिप्”ान | – | – | आ0स0ई0, एन्यु0रि0, 1925–26 पृ0 141 | डी0आर0 भण्डारकर |
| 8. | बौद्धमूर्ति इन्स्क्रिप्”ान | No Date | – | आ0स0ई0, एन्यु0रि0, 1923–24 पृ0 102 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 9. | इत्खोरी स्टोन इन्स्क्रिप्”ान | No Date | – | आ0स0ई0, एन्यु0रि0, 1920–21 पृ0 35 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 10. | राजौरगढ़ इन्स्क्रिप्”ान | सं0 1016 | सन् 959 | एपि0इण्डि0 खण्ड III, पृ0 263–267 सन् 1894–95 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 11. | अनडेटेड प्र”ास्ति ऑफ महेन्द्र पाल प्रथम | – | – | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 242–250, सन् 1892 | जी0 ब्युहलर |
| eghiky | | | | | |
| 1. | हड्डाला कॉपर प्लेट | सं0 971 | सन् 914 | एपि0इण्डि0 खण्ड XII, पृ0 190–195, सन् 1913–14 | जी0 ब्युहलर |
| 2. | असनी इन्स्क्रिप्”ान | सं0 974 | सन् 917 | एपि0इण्डि0 खण्ड XVI, पृ0 173–175 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 3. | बयाना इन्स्क्रिप्”ान | – | – | भण्डारकर, सुची क्रमांक 71 | डी0आर0 भण्डारकर |
| fouk;d iky | | | | | |
| 1. | बंगाल ए”ियाटिक सोसायटी कॉपर प्लेट | सं0 988 | सन् 931 | एपि0इण्डि0 खण्ड XV, पृ0 138–141 | आर0एल0 मित्र |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 2. | ग्वालियर स्टोन इन्स्क्रि”ान | सं0 999 | सन् 942 | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 159–165, सन् 1892 | आर0सी0 मजुमदार |
| egUn iky f}rh; | | | | | |
| 1. | द”ाावतार इन्स्क्रि”ान | सं0 919 | सन् 862 | एपि00इण्डि0 खण्ड IV, पृ0 309–310, सन् 1896–97 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 2. | गुनेरिया इन्स्क्रि”ान | Regnal Year | – | आ0स0इ0रि0 III,पृ0 124 | आर0डी0 बैनर्जी |
| 3. | प्रतापगढ़ इन्स्क्रि”ान | सं0 1003 | सन् 946 | एपि0इण्डि0 खण्ड XIV, पृ0 176–186, सन् 1917–18 | गौरी”ांकर हिराचंद ओझा |
| noiky | | | | | |
| 1. | सीयदोणी इन्स्क्रि”ान | सं0 1005 | सन् 948 | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 162–179, सन् 1892 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 2. | ए ग्राण्ट ऑफ दि गुर्जर किंग जयभट्ट III | – | – | एपि0इण्डि0 खण्ड XXIII, पृ0 149–152, सन् 1936 | जी0वी0 आचार्य |
| jkT; iky | | | | | |
| 1. | भतूरिया इन्स्क्रि”ान | No Date | – | एपि0इण्डि0 खण्ड XXXIII, पृ0 150–153, सन् 1936 | डी0सी0 सरकार |
| f=ykspu iky | | | | | |
| 1. | झूसी इन्स्क्रि”ान | सं0 1084 | सन् 1027 | एपि0इण्डि0 खण्ड XVIII, पृ0 33–35, सन् 1925 | एफ0 कीलहॉर्न |
| ;'kiky | | | | | |
| 1. | कड़ा इन्स्क्रि”ान | सं0 1093 | सन् 1036 | जे0आर0ए0एस0, पृ0 692–95, सन् 1927 | दयाराम साहनी |
| x|tj&ifrgkj jktoa'k d: ledkyhu 'kkldk d: vfHky[k | | | | | |
| 1. | राधनपुर कॉपर प्लेट ऑफ गोविन्द तृतीय | शक सं0 730 | सन् 808 | एपि0इण्डि0 खण्ड VI, पृ0 239, सन् 1900–01 | एफ0 कीलहॉर्न |

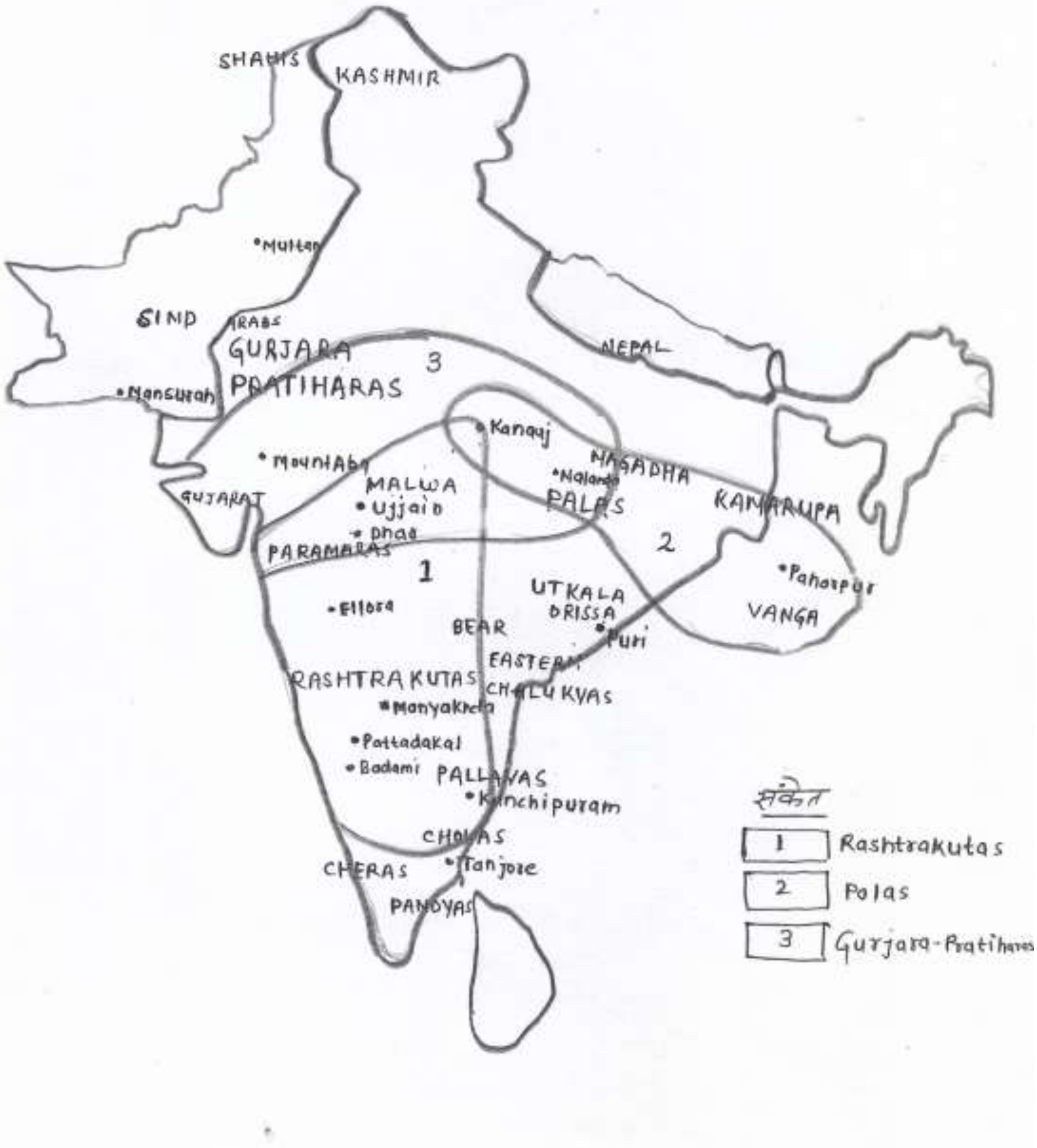
| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 2. | बड़ौदा कॉपर प्लेट इन्स्क्रप्”ान ऑफ कर्कराज | शक सं0 734 | सन् 812 | आई0ए0 खण्ड XII पृ0 156—160 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 3. | नीलगुण्ड इन्स्क्रप्”ान ऑफ अमोघवर्ष | शक सं0 700 | सन् 866 | एपि0इण्डि0 खण्ड VI, पृ0 98, सन् 1900—01 | जे0एफ0 फ्लीट |
| 4. | संजन कॉपर प्लेट ऑफ अमोघवर्ष | शक सं0 793 | सन् 871 | एपि0इण्डि0 खण्ड XVIII, पृ0 235—240, सन् 1925 | डी0आर0 भण्डारकर |
| 5. | कैम्बे कॉपर प्लेट ऑफ कृष्ण तृतीय | शक सं0 852 | सन् 930 | एपि0इण्डि0 खण्ड VII, पृ0 26—33, सन् 1902—03 | डी0आर0 भण्डारकर |
| 6. | करहड कॉपर प्लेट ऑफ कृष्ण तृतीय | शक सं0 880 | सन् 959 | एपि0इण्डि0 खण्ड IV, पृ0 270, सन् 1896—97 | डी0आर0 भण्डारकर |
| 7. | पथरी पिलर इन्स्क्रप्”ान ऑफ प्रबल | शक सं0 917 | सन् 860 | एपि0इण्डि0 खण्ड IX, पृ0 248—254, सन् 1907—08 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 8. | खजुराहो इन्स्क्रप्”ान ऑफ हर्षदेव (No. 1) | No Date | — | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 121—123, सन् 1892 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 9. | खजुराहो इन्स्क्रप्”ान ऑफ धंग (No. 2) | सं0 1011 | सन् 954 | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 122—123, सन् 1892 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 10. | बिल्हरी स्टोन इन्स्क्रप्”ान ऑफ युवराजदेव | No Date | — | एपि0इण्डि0 खण्ड I, पृ0 251—254, सन् 1892 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 11. | बनारस कॉपर प्लेट इन्स्क्रप्”ान ऑफ कर्णदेव | सं0 793 | सन् 1042 | एपि0इण्डि0 खण्ड II, पृ0 297—301, सन् 1893—64 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 12. | जोधपुर इन्स्क्रप्”ान ऑफ रूपा देवी | सं0 1340 | सन् 1283 | एपि0इण्डि0 खण्ड IV, पृ0 312—313, सन् 1896—97 | डी0आर0 भण्डारकर |
| 13. | खालिमपुर कॉपर प्लेट इन्स्क्रप्”ान ऑफ धर्मपाल | सं0 847 | सन् 690 | एपि0इण्डि0 खण्ड IV, पृ0 243—247, सन् 1896—97 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 14. | मुंगेर प्लेट ऑफ देवपाल | Regnal Year 33 | — | एपि0इण्डि0 खण्ड XVIII, पृ0 304—06, सन् 1925 | एल0डी0 बर्नेट |
| 15. | भागलपुर कॉपर प्लेट इन्स्क्रप्”ान ऑफ नारायण पाल | Regnal Year 17 | — | एण्टि0इण्डि0 खण्ड XV, पृ0 304 | एफ0 कीलहॉर्न |
| 16. | बादल पिलर इन्स्क्रप्”ान ऑफ द टाईम ऑफ नारायणपाल | No Date | — | एपि0इण्डि0 खण्ड II, पृ0 160—61, सन् 1893—94 | एफ0 कीलहॉर्न |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 17. | बड़गांव या नालन्दा ईमेज इन्स्क्रिप्शन ऑफ गोपाल II | Regnal Year 1 | — | जे0पी0ए0एस0बी0 1908 एन0एस0, खण्ड IV, पृ0 105 | — |
| 18. | बोधगया इन्स्क्रिप्शन ऑफ गोपाल II | No Date | — | जे0पी0ए0एस0बी0, खण्ड IV, पृ0 106 | — |
| 19. | सिलिमपुर स्टोन इन्स्क्रिप्शन ऑफ दि टाईम ऑफ जयपाल | संवत् 1319 | सन् 1262 | एपि0इण्डि0 खण्ड XIII, पृ0 283—290 सन् 1915—16 | डी0सी0 सरकार |
| 20. | पाल प्लेट फ्राम बेलवा ऑफ महीपाल (No.1) | Regnal Year 5 | — | एपि0इण्डि0 खण्ड XXIV, पृ0 01—05 सन् 1951—52 | डी0सी0 सरकार |
| 21. | पाल प्लेट फ्रॉम बेलवा ऑफ विग्रह पाल तृतीय (No.2) | Regnal Year 11 | — | एपि0इण्डि0 खण्ड XXIV, पृ0 09—11 सन् 1951—52 | डी0सी0 सरकार |

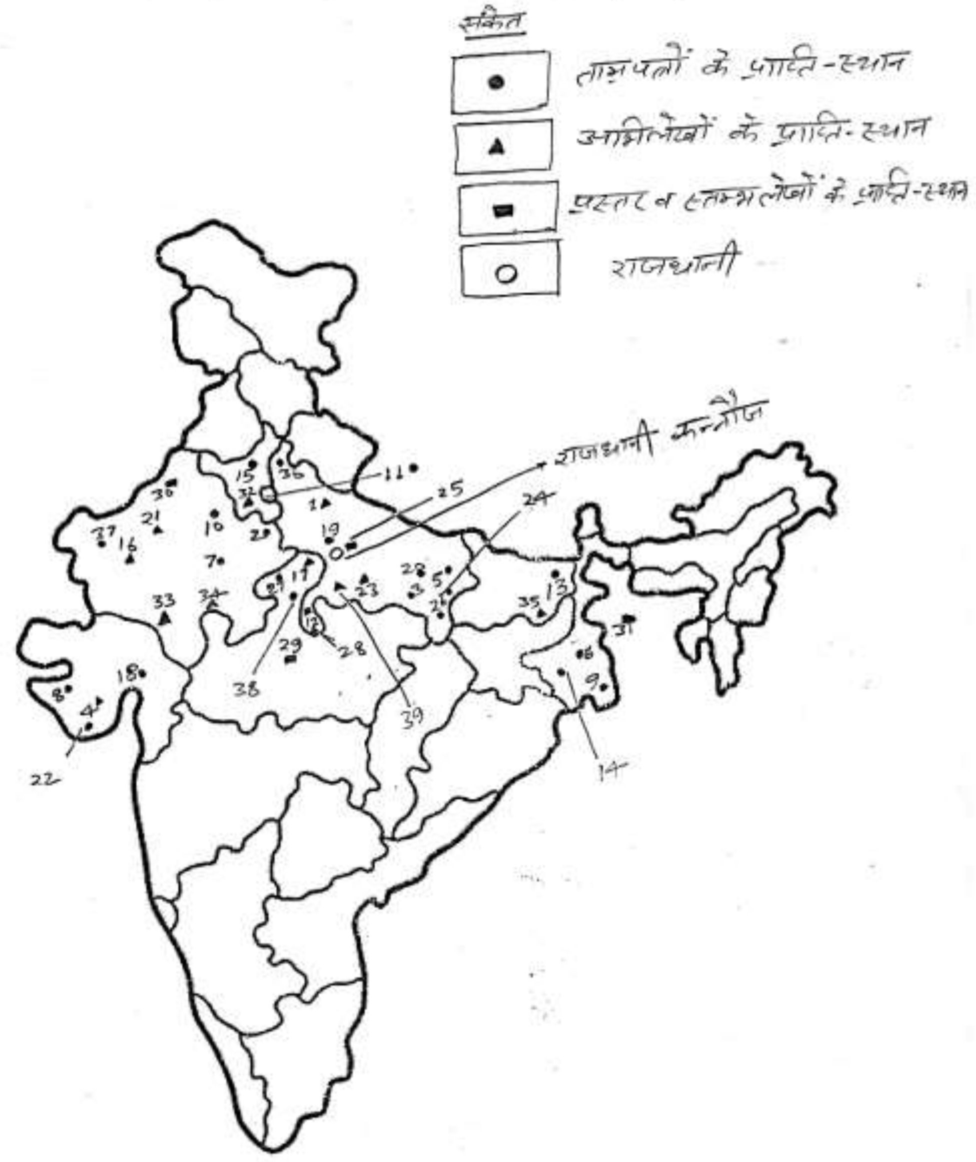
# गुर्जर-प्रतिहार कालीन साम्राज्य



# गुर्जर-प्रतिहार कालीन त्रिकोणात्मक संघर्ष



## गुर्जर-प्रतिहार राजवंश के अभिलेखों का प्राप्ति-स्थान




| | | | |
|---|---|---|---|
| 1 - AHAR | 10 - DAULATPUR | 19 - JEERAGAUR | 30 - OSIA |
| 2 - ALAWAR | 11 - DELHI | 20 - JHUSI | 31 - PAHARPUR |
| 3 - ASANI | 12 - DEVGARH | 21 - JODHPUR | 32 - PEHOA |
| 4 - BADGANV | 13 - DIGHWA-DUBAULI | 22 - JUNAGARH | 33 - PRATAPGARH |
| 5 - BANARAS | 14 - DINAJPUR | 23 - KALINJIR | 34 - RAJAURGARH |
| 6 - BANGARH | 15 - FATEHPUR | 24 - KAMAULI | 35 - RAMGAYA |
| 7 - BAYANA | 16 - GHATIYALA | 25 - KANYAKUBJ | 36 - SAHARANPUR |
| 8 - BHAVNAGAR | 17 - GWALEOR | 26 - KARA | 37 - SEWA |
| 9 - CULCUTTA | 18 - HADDLA | 27 - KURETHA | 38 - SHIVPURI |
| | | 28 - LALITPUR | 39 - SIYADONI |
| | | 29 - NONHA-NARSINGH | |



बटेश्वर का भूतेश्वर महादेव मंदिर



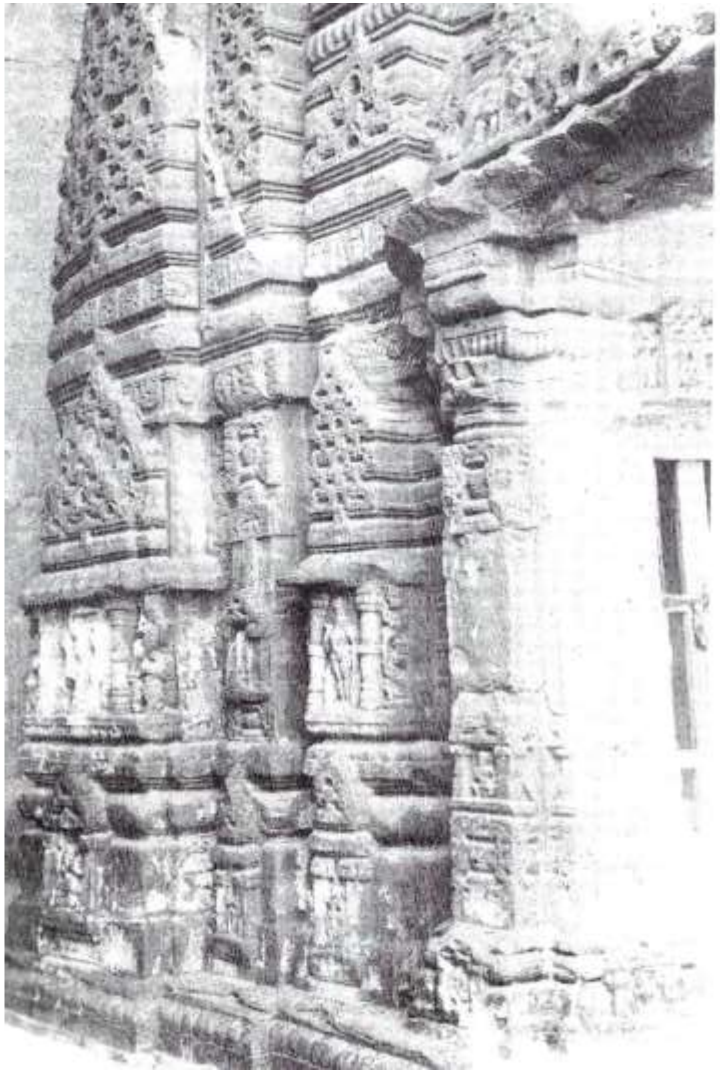
भूतेश्वर महादेव मंदिर में कुबेर



भूतेश्वर महादेव मंदिर में विष्णु



ग्वालियर का तेली का मंदिर



ग्वालियर  चतुर्भुज मंदिर



ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर में वराह

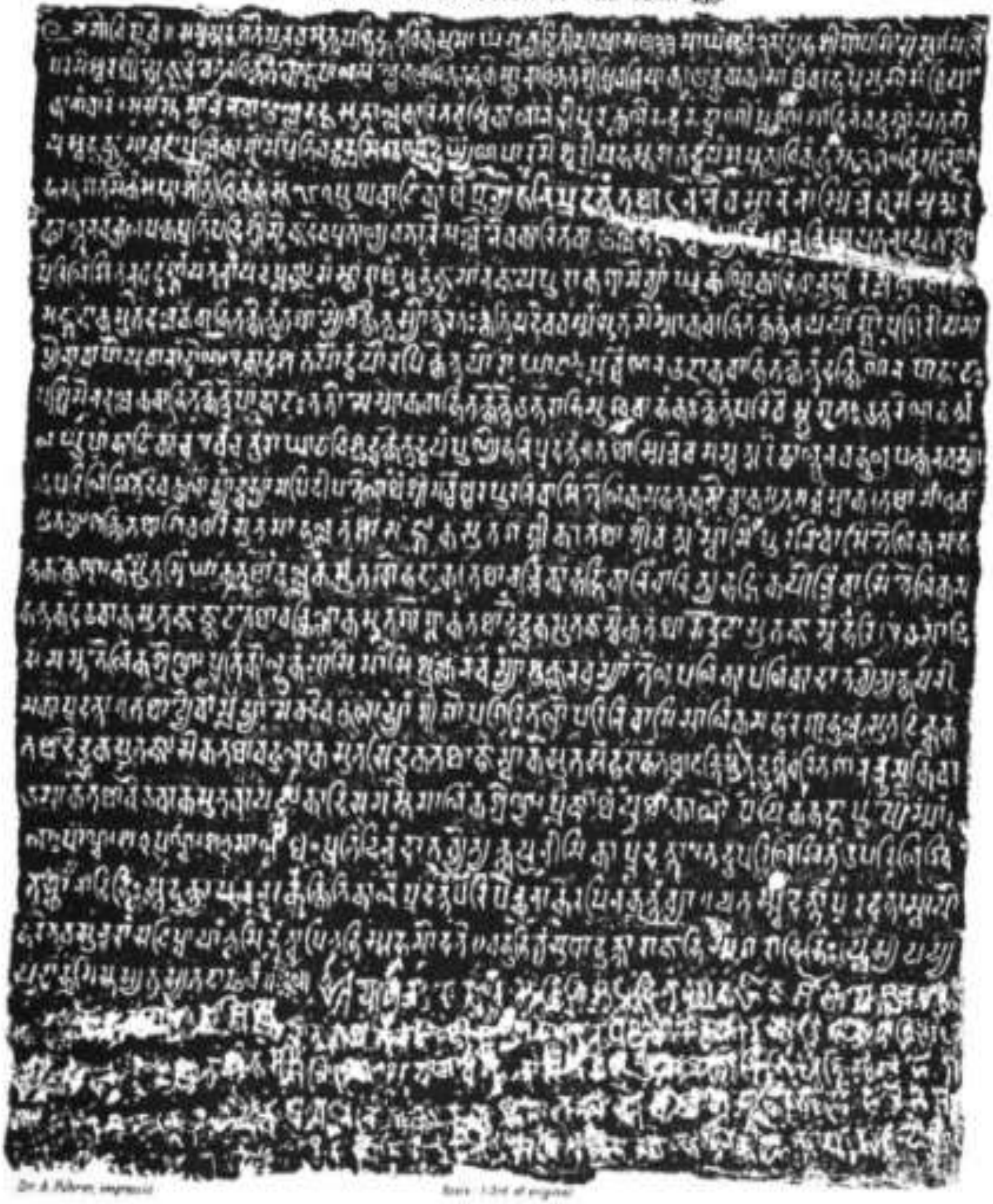
Bangarh Grant of Mahipala I: the 9th year.

*Obverse.*



F. W. THOMAS SCALE ·45 W. GRIGGS & SONS, LTD., PHOTO-LITH.

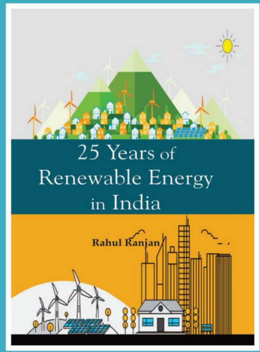
GWALIOR INSCRIPTION OF THE YEAR 933.

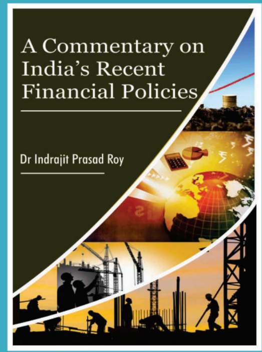


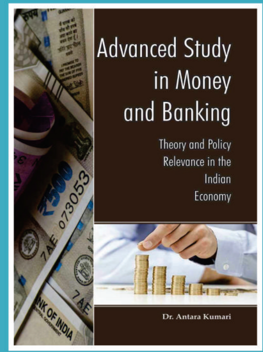
Dr. A. Führer, impressit

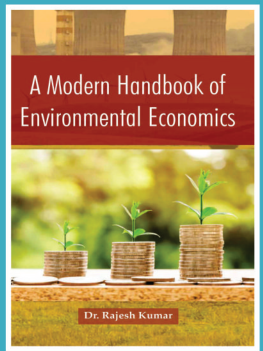
Scale 1/3rd of original

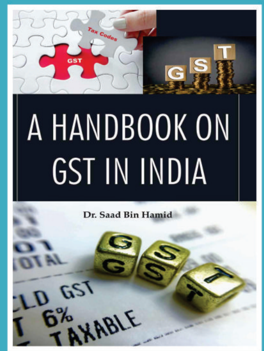
# OUR PUBLICATIONS

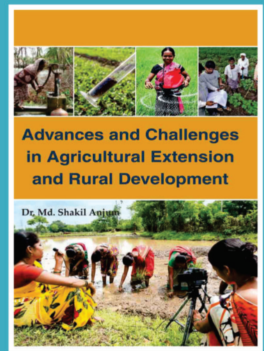


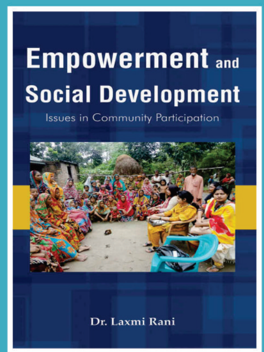



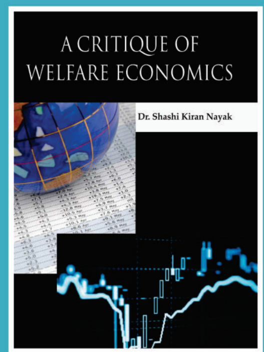











Globus Press

448, Pocket-V, Mayur Vihar, Phase-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-22753916



ISSN 0975-119X

UGC-CARE GROUP I LISTED

वर्ष 13 अंक 1 जनवरी-फरवरी 2021


# दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

India's Leading Referred Hindi Language Journal




IMPACT FACTOR : 5.051

# दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका


प्रधान संपादक

**डॉ. अश्विनी महाजन**

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

**डॉ. प्रसून दत्त सिंह**

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

**डॉ. फूल चन्द**

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली



**दृष्टिकोण प्रकाशन**

वर्ष : 13 अंक : 1 ❑ जनवरी-फरवरी, 2021

# दृष्टिकोण




**संपादकीय सम्पर्क:**

448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091
फोन : 011-22753916, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610
e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
Website : www.ugc-care-drishtikon.com


Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

**ISSN 0975-119X**

# सम्पादकीय

पूरे देश की निगाहें एक फरवरी 2021 को संसद में पेश होने वाले बजट पर लगी हैं। यूं तो बजट के बारे में हर बार ही उत्सुकता होती है, कि वित्तमंत्री के पिटारे में विभिन्न वर्गों के लिए क्या योजनाएं हैं? क्या सरकार आयकर में कोई छूट देगी? कारपोरेट टैक्स के बारे में सरकार का क्या नजरिया रहेगा? देशी और विदेशी निवेशकों पर क्या कर प्रावधान होंगे? बजट का शेयर बाजारों पर क्या असर पड़ेगा? शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, बैंकिंग आदि के बारे में क्या नजरिया होगा? कौन सी नई जनकल्याणकारी योजनाएं होंगी?

लेकिन हमें समझना होगा कि इस बार का बजट एक महामारी के बाद का बजट है। पिछली एक सदी के बाद पहली बार ऐसी महामारी आई, जिसने पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया। हालांकि भारत में इस बाबत हालात (केरल और महाराष्ट्र को छोड़कर) सुधरे हुए दिखाई देते हैं, लेकिन इस महामारी के कारण हुए नुकसानों की भरपाई बहुत जल्द होने वाली नहीं है। पिछले वर्ष हमने देखा कि कैसे महामारी के कारण आवाजाही बाधित हुई, जिसके कारण न केवल मांग बाधित हुई, काम-धंधों पर भी जैसे ब्रेक लग गया। कुछ व्यवसायों में घर से काम (वर्क फ्रॉम होम) थोड़ी-बहुत मात्रा में चला, लेकिन अधिकांश मामलों में आर्थिक गतिविधियां पूरे या अधूरे तौर पर बाधित रही। मजदूरों का बड़े शहरों से पलायन, कामगारों का काम से निष्कासन या उनके वेतन में भारी कटौती, इस महामारी के कालखंड में सामान्य बात बन गई। ऐसे में जीडीपी के प्रभावित होने के साथ-साथ, सरकार का राजस्व भी प्रभावित हुआ।

महामारी से पूर्व भी अर्थव्यवस्था कई कारणों से मंदी की मार झेल रही थी। पूर्व में बैंकों द्वारा दिए गए ऋणों की वापसी नहीं होने के कारण, बैंकों के बढ़ते एनपीए के चलते बैंकों का मनोबल ही नहीं गिरा था, लोगों का बैंकों पर विश्वास भी घटने लगा था। उसके साथ ही साथ आईएलएफएस सरीखे गैरबैंकीय वित्तीय संस्थानों में घोटालों के कारण वित्तीय क्षेत्र के संकट और अधिक बढ़ गए थे। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों पर नकेल कसने के प्रयासों में बैंकों द्वारा कार्य निष्पादन भी प्रभावित हो रहा था और व्यवसाय भी। बैंकों द्वारा ऋण भी कम मात्रा में दिए जा रहे थे। कुल मिलाकर नए निवेश भी घटे और चालू आर्थिक गतिविधियां भी। कठिन परिस्थितियों में जब पिछले साल वित्तमंत्री ने बजट पेश किया था, वर्ष 2019-20 में राजस्व उम्मीद से कम दिखाई दिया था लेकिन यह अपेक्षा जरूर थी कि इसकी भरपाई 2020-21 में हो सकेगी।

लेकिन उसके पश्चात वर्ष 2020-21 में भी महामारी के प्रकोप ने राजस्व में सुधार की सभी अपेक्षाओं पर पानी फेर दिया है। वित्तीय वर्ष 2020-21 के पहले 9 महीनों में जीएसटी से कुल राजस्व 7,79,884 करोड़ रूपए ही प्राप्त हुआ है, जबकि इस कालखंड में अपेक्षा न्यूनतम 10 लाख करोड़ रूपए की थी। जीएसटी में इस कमी का असर हालांकि केन्द्र और राज्य, दोनों के राजस्व पर पड़ा है, लेकिन राज्यों के हिस्से की भरपाई (14 प्रतिशत वृद्धि के साथ) देर-सबेर केन्द्र सरकार को नियमानुसार करनी ही पड़ेगी। इस कारण केन्द्र को इसका नुकसान राज्यों से कहीं ज्यादा होगा। दूसरे इस वर्ष वैयक्तिक आयकर और निगम (कारपोरेट) कर भी उम्मीद से कम रहने वाला है। सरकार के इस वर्ष का विनिवेश का लक्ष्य भी पूरा होने की दूर-दूर तक कोई संभावना दिखाई नहीं देती।

एक तरफ जहां महामारी के चलते सरकारी राजस्व में भारी नुकसान हो रहा था, रोजगार खोने के कारण भारी संकट से गुजर रहे मजदूरों और अन्य प्रभावित वर्गों के जीवनयापन की कठिनाईयों के कारण उन्हें खाद्य सामग्री उपलब्ध कराने हेतु सरकार का दायित्व तो था ही, गांवों में लौट रहे मजदूरों को रोजगार दिलाने का भी दबाव था। 80 करोड़ लोगों को लगभग 9 महीने तक मुफ्त भोजन उपलब्ध कराया गया। महामारी से निपटने हेतु सरकार का स्वास्थ्य पर खर्च भी बढ़ चुका था। महामारी से पार पाने हेतु कोरोना योद्धाओं, शिक्षकों एवं अन्य वर्गों को वैक्सीन उपलब्ध कराने की भी आवश्यकता है।

महामारी के कारण बाधित गतिविधियों को दुबारा शुरू करने की भी जरूरत थी। यह सरकार की मदद के बिना नहीं हो सकता था। पूरी तरह से छिन्न-भिन्न हुई आर्थिक गतिविधियों को पुन: पटरी पर लाना, महामारी की मार झेल रही आम जनता को राहत देना, रोजगार खोने वालों के लिए राहत और रोजगार की व्यवस्था करना, पहले से ही मंदी की मार झेल रही अर्थव्यवस्था को सही रास्ते पर लाना, यह सरकार का दायित्व भी है और प्राथमिकता भी।

दुनिया भर में सरकारों ने इस महामारी से निपटने के लिए राहत पैकेजों की व्यवस्था की है। उसी क्रम में भारत सरकार ने भी अपने सभी राहत उपायों की घोषणा की है। ये सभी राहत उपाय कुल मिलाकर देश की जीडीपी के लगभग 10 प्रतिशत के बराबर बताए जा रहे हैं। इन राहत अथवा प्रोत्साहन पैकेजों में सरकार ने लघु, सूक्ष्म और मध्यम उद्यमों को प्रोत्साहन, प्रवासी मजदूरों एवं किसानों के लिए राहत पैकेज, कृषि विकास, स्वास्थ्य उपायों, व्यवसायों को अतिरिक्त ऋणों की व्यवस्था, ईज ऑफ डूइंग बिजनेस समेत कई उपायों की घोषणा की गई है। सरकार ने हाल ही में रियल ईस्टेट क्षेत्र को राहत एवं प्रोत्साहन देने, इलैक्ट्रॉनिक्स, टेलीकॉम, मोबाईल फोन और एक्टिव फार्मास्यूटिकल उत्पादों के उत्पादन को प्रोत्साहन देने हेतु 'प्रोडक्शन लिंक्ड' प्रोत्साहनों की भी घोषणा की है।

# दृष्टिकोण

पिछले साल का बजट प्रस्तुत करते हुए, वित्तमंत्री ने वर्ष 2020-21 के लिए राजकोषीय घाटे का लक्ष्य जीडीपी को 3.5 प्रतिशत रखा था। लेकिन बदले हालातों में घटे सरकारी राजस्व और बजट अनुमानों से कहीं ज्यादा खर्च के दबाव के चलते इस वर्ष का राजकोषीय घाटा अनुमान से कहीं ज्यादा हो सकता है। माना जा रहा है कि इस महामारी का बड़ा असर राजकोषीय घाटे पर पड़ सकता है। माना जा रहा है कि वर्ष 2020-21 के लिए यह राजकोषीय घाटा जीडीपी के 8 प्रतिशत तक पहुंच सकता है।

महामारी से निपटने हेतु राहत के प्रयासों की अभी शुरूआत भर हुई है। आगामी वर्ष में इन प्रयासों को और आगे बढ़ाने की जरूरत होगी। सरकार द्वारा आत्मनिर्भरता के संकल्प और अर्थव्यवस्था में सुधार हेतु तमाम प्रयासों के चलते अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भी इस वर्ष भारत की जीडीपी में 11.5 प्रतिशत संवृद्धि का अनुमान दिया है। इसके चलते राजस्व में वृद्धि तो होगी, लेकिन सरकार को जीडीपी ग्रोथ की इस गति को बनाए रखने के लिए और अधिक प्रयास करने की जरूरत होगी। ऐसे में केन्द्र सरकार का राजकोषीय घाटा अधिक रहेगा। लेकिन इसके साथ ही साथ केन्द्र सरकार ने कोरोना से उपजी समस्याओं से निपटने हेतु राज्य सरकारों को भी अतिरिक्त ऋण लेने के लिए अनुमति दी है। विशेषज्ञों का मानना है कि इस वर्ष राज्यों के बजट में भी राजकोषीय घाटा जीडीपी के 4 से 5 प्रतिशत के बीच रह सकता है। ऐसे में देश में कुल राजकोषीय घाटा 10 से 11 प्रतिशत तक पहुंच सकता है।

लेकिन समय की मांग है कि अर्थव्यवस्था को गति देने हेतु सभी प्रकार के प्रयास किए जाएं। कुछ समय तक एफआरबीएम एक्ट को स्थगित रखते हुए देश की अर्थव्यवस्था को गति देना जरूरी होगा। वित्तमंत्री इस बात को समझती हैं और आशा की जा सकती है कि जहां महामारी से प्रभावित वर्गों को सरकारी बजट का समर्थन मिलेगा, अर्थव्यवस्था को गति देने हेतु प्रयासों में कोई कंजूसी नहीं की जाएगी। वर्षों से चीन से सस्ते आयातों की मार झेल रही अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भरता और 'वोकल फॉर लोकल' का संकल्प एक नई दिशा और ऊर्जा देगा और यह बजट उस दिशा में मील का पत्थर साबित होगा।

**संपादक**

# इस अंक में


स्वामी विवेकानंद का व्यंजन प्रेम–डॉ. अमरेन्द्र कुमार 1

महात्मा गाँधी के भारत में शरूआती दौर के आन्दोलन (1917-1918)–मोहन लाल 4

अमरकांत का उपन्यास साहित्य : अभिव्यक्ति कौशल संबंधी परम्परागत एवं नवीन प्रयोगों की अवधारणा
–डॉ. यदुवीर सिंह खिरवार; श्रीमती रेणु बाई 8

नई शिक्षानीति में संस्कृत भाषा कि उपादेयता–डॉ० उषा नागर 13

पुलिस प्रशासन-संगठन, समस्या और सुझाव–डॉ० शेषाराम मीणा 18

वैदिक वाङ्मय में अर्थचिन्तन–डॉ0 आशा सिंह रावत 23

नाटककार भवभूति की कृतियों में पर्यावरण चिन्तन–डॉ0 बाबूलाल मीना 30

गाँधी के सर्वोदय दर्शन में विकेन्द्रीकरण की अवधारणा–आशीष कुमार सिंह 36

राजनीतिक सामाजीकरण एवं विकास : एक अध्ययन–कृष्णा बैठा 39

सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में पारिवारिक वातावरण का छात्रों की अध्ययन आदतों के संबंध का अध्ययन–मनु सिंह; डॉ. मंजू शर्मा 44

ग्रामीण महिलाओं की राजनैतिक सहभागिता की समीक्षा–किरण कुमारी; डॉ. संजय बुदेला 48

महिलाओं द्वारा अपने प्रति होने वाले अपराधों के प्रतिकार की स्थिति–श्रीमती श्वेता चतुर्वेदी; डॉ. श्रीमती रीना तिवारी 51

बौद्धिक सम्पदा का अधिकार और इसके संरक्षण के प्रयास–जितेन्द्र भारती 55

वेदों में ज्योतिर्विज्ञान–डॉ० भगवानदास जोशी 58

नई शिक्षा नीति में गृह विज्ञान शिक्षा का भविष्य–डॉ० आभा रानी 63

शैक्षिक नीतिशास्त्र का स्वरूप और विचार–अजय कुमार पटेल 66

अमरकंटक अंचल में पर्यटन की संभावना एवं विकास–निर्मला तिवारी; डॉ० रीता पाण्डेय; प्रो० आभा रूपेंद्र पाल 69

बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास–शशि शेखर द्विवेदी; मनीष कांत 78

मुगलकालीन विदेशी यात्रियों की दृष्टि में भारतीय महिलाओं की स्थिति–आशु त्यागी 84

स्वास्थ्य सुविधाओं के क्रियान्वयन में भौगोलिक परिदृश्य की भूमिका–आशीष कुमार शुक्ल 88

मुक्ति प्राप्ति का भक्ति-मार्ग–डॉ० सुनील कुमार शुक्ल 90

विश्वशान्ति: स्वधर्म एक माध्यम–डॉ० क्षमा तिवारी 93

उ०प्र० में बौद्ध स्थलों पर पर्यटन प्रतिरूप का एक प्रतीक अध्ययन–डॉ० अनूप कुमार सिंह 97

संयुक्त राष्ट्रसंघ और सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था का समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० लवलेश कुमार 101

हिन्दी उपन्यासों में चित्रित जनजातीय जीवन में बंधुआ मजदूरी एवं बेगारी की समस्या–डॉ० उमेश कुमार पाण्डेय 103

प्राथमिक शिक्षक एवं कक्षा-कक्ष : एक चुनौती–डॉ. राकेश कुमार डेविड; डॉ. संजीत कुमार साहू; डॉ. शोभना झा 106

कोरोना वैश्विक महामारी के काल में भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव–अर्चना कुमारी 109

'समकालीन सामाजिक परिदृष्य में प्रत्ययवाद का महत्व'–डॉ० ब्रिजेन्द्र कुमार त्रिपाठी 112

आधुनिक समाज में माता-पिता की महत्वाकांक्षा और बच्चों की मानसिक स्थिति: एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ. रूमा कुमारी सिन्हा 114

लाल शकरकंद : अनाज का विकल्प–डॉ. शिखा चौधरी 116

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री अस्मिता के प्रश्न–डॉ. ज्योति गौतम 119

बौद्ध वाङ्मय और बुद्ध की प्रासंगिकता–अर्चना 122

लोक साहित्य में विरहाभिव्यक्ति–श्रीमती अर्चना वर्मा; श्रीमती लक्ष्मी देवी 125

इतिहास के आइने में स्त्री विमर्श–डॉ० शैलेन्द्र सिंह 129

स्वयंभू रचित पउमचरिउ में स्त्री चेतना–कुमकुम पाण्डेय 132

लोकतंत्र का चौथा स्तंभ और दलितों की भागीदारी–लाल चन्द पाल 135

शोषण मुक्ति हेतु संघर्षरत : स्त्री जीवन (दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में)–आशीष खरे; डॉ. ज्योति गौतम 139

सोनांचल की जनजातीय संस्कृति : समस्याएँ एवं समाधान–अवन्तिका 143

वैदिक भूगोल के आलोक में संसाधन संरक्षण की संकल्पना की विवेचना–डॉ. रत्नेश शुक्ल; रोहणी तिवारी 147

वैज्ञानिक सामाजिक व्यवस्था में सांस्कृतिक संघर्ष–डॉ. शाद अहमद 152

हिन्दी आलोचना में डॉ. देवीशंकर अवस्थी का कथा क्षेत्र में योगदान–पवन कुमार वर्मा 155

प्रेमचन्द की पत्रकारिता और जीवन दृष्टि–डॉ. नलिनी सिंह 158

उदयपुर जिले की देवास परियोजना का जनजातिय जनसंख्या के सन्दर्भ में पारिस्थितिकीय अध्ययन–रणवीर ठौलिया 161

पश्चिमी राजस्थान के आदिमवर्गों के आर्थिक विकास में इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना का योगदान विशेष संदर्भ : भील –डॉ. अश्वनी आर्य; गजेन्द्र शेखावत 166

भारत में बाल मानव अधिकारों का संरक्षण: एक अनुशीलन–सहदेव सिंह चौधरी 171

70 वर्षों में मानव अधिकार की उपलब्धियां एवं चुनौतियां–डॉ. ऋतेष भारद्वाज 176

शिक्षा और समाज का अन्त: सम्बंध–डॉ. निशा वालिया 181

बिहार में सामाजिक आन्दोलन के उभरते लहर (1960-2015) : एक अध्ययन–विजया वैजयंती 184

स्वास्थ्य सुविधाओं के क्रियान्वयन में भौगोलिक परिदृष्य की भूमिका–आशीष कुमार शुक्ल 188

कोविड-19 के दौर में भारत-नेपाल संबंध–आशुतोष कुमार 190

भारत एवं हिन्द महासागर की भू राजनीति–सत्येन्द्र सिंह 194

भारतीय संस्कृति और तुलसीदास–डॉ. संजय कुमार; डॉ. सरिता 198

भवानी प्रसाद मिश्र की प्रतिनिधि कविताओं में गाँधी-दर्शन–डॉ. (श्रीमती) सविता मिश्रा; अंतिमा गुप्ता 201

वर्तमान परिदृष्य में हरियाणा के परम्परागत माध्यमों के प्रति सामाजिक प्रतिक्रिया–डॉ. दिलावर सिंह 205

कोरोना संकट में सेक्स वर्कर्स के मानवाधिकार–डॉ. पिंकी पुनिया 209

रायपुर संभाग में कृषि उपज मंडियों की कार्य प्रणाली का अवलोकन–डॉ. गिरजा शंकर गुप्ता 214

श्रीमद्‌भागवत के अनुसार ऋषियों की कथाओं का अध्ययन–सीमा चिनप्पा; डॉ. वेदप्रकाश मिश्र 217

देश के युवाओं के लिए आई.टी.आई. एवं पॉलिटेक्निक पाठ्यक्रमों का महत्व–शिवानी सिंह 222

नारी शोषण के विविध आयाम: संदर्भ गुनाह बेगुनाह–काजल 225

मध्य प्रदेश की गोड़ जनजाति चित्रकला में सूर्योपासना–डॉ. शेलेन्द्र कुमार 227

कुषाण काल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी–डॉ. प्रदीप कुमार 229

भारतीय लोकतंत्र के लिए खतरा : पेड न्यूज–अनिल कुमार यादव 233

21वीं सदी के नवगीतकारों में सामाजिक चेतना : वीरेन्द्र आस्तिक, रामनारायण रमण एवं रमाकांत के संदर्भ में–डॉ. रामरती; ममता 237

वर्तमान में संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रासंगिकता–मिथिलेश 242

भारत में नगरीय जीवन एवं सांस्कृतिक चुनौतियां : एक भौगोलिक अध्ययन–गोविन्द सिंह 244

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में महानगरीय जीवन–डॉ. निशा जम्वाल 250

पंचायती राज में महिलाओं की सक्रिय सहभागिता एक विमर्श : समस्या, समाधान–अनिता कंवर 252

माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन (मुजफ्फपुर जिले के विशेष संदर्भ में) –प्रतिभा सिंह; डॉ. पी. एन. मिश्र 257

माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन –वैशाली उनियाल; प्रो0 (डॉ.) सुरेश चन्द्र पचौरी 260

राजा राममोहन राय के सामाजिक सुधारों की मानवीय चेतना–अनिकेत पीयुष सिंह 266

औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण प्रदूषण (अलवर जिले के संदर्भ में)–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद 269

पैतृक संपत्ति में उत्तराधिकार पर हिंदू महिलाओं के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन–आभा मिश्रा; डॉ. विजय कुमार वर्मा 272

उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् छात्रों के शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रति दृष्टिकोण पर शिक्षण रूचि के प्रभाव का अध्ययन –ज्योत्सना रमोला; प्रो0 (डॉ.) सुरेश चन्द्र पचौरी 278

बिहार के राजनीतिक इतिहास में सत्येन्द्र नारायण सिंह का योगदान–डॉ. संदीप कुमार 285

अखिलेष कृत 'निर्वासन' उपन्यास में विस्थापन की समस्या–सपना रानी 289

पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियों में अभिव्यक्त सामयिक प्रश्न–चेतन कुमार 291
बाल-मनोविज्ञान और विज्ञापन : व्यावहारिक अंत: संबंध–शुभांगी 293
मंज़ूर एहतेशाम के उपन्यासों में असामाजिक तत्त्व और साम्प्रदायिकता–सुमन देवी 302
कोविड़ 19 के दौरान मोहल्ला क्लास के प्रति प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों का प्रत्यक्षीकरण–डॉ. चन्द्रा चौधरी 305
हिन्दी व्यंग्य और आधुनिक व्यंग्यकार–बिन्दु डनसेना; डॉ. बी एन जागृत 308
गुणात्मक शिक्षा के उन्नयन में शिक्षकों के व्यावसायिक अभिवृत्ति की भूमिका–सुदर्शन सिंह; डॉ. स्वीटी श्रीवास्तव 310
लोक अदालत का गठन एवं कार्यकरण : एक विश्लेषण–वकील शर्मा 314
पुरुषार्थ अर्थ का स्वरूप और महत्त्व–डॉ. योगिता मकवाना 319
अपराध भूगोल के अध्ययन में भौगोलिक सूचना प्रणाली का उपयोग–राजकिरण चौधरी 322
भारतीय लोकतंत्र में दल और दलबदल की राजनीति–डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़; प्रो. अनिल धर 326
सामाजिक उपन्यासकार के रूप में : नागार्जुन–डॉ. रेखा दुबे; ज्योति नरवाल 330
जलियांवाला बाग हत्याकांड के विविध आयाम : एक पुनर्मूल्यांकन–डॉ. कुमारी ज्योति 332
चौरी चौरा जनज्वार का राष्ट्रीय आयाम : एक पुनर्मूल्यांकन–डॉ. सर्वेश चंद्र शुक्ल 335
चौरी चौरा जनक्रांति में स्थानीय जनता तथा स्वयं सेवकों की भूमिका–अभिषेक कुमार तिवारी 339
पर्यावरण दर्शन और नैतिकता–मुकेश कुमार 342
गांधीवादी दृष्टि और आधुनिक राज्य की अवधारणा : एक अनुशीलन–डॉ. अभय कुमार सिंह 346
राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की चुनौतियां–सुनीता जांगिड 350
बुक्सा जनजाति और उनके असंतोष के कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन–अवधेश कुमार 353
किन्नर विमर्श–सनोज पी आर 357
मुगलकाल में कार्यरत महिला शिल्पी वर्ग : कतनी/कत्तिनों के विशेष संदर्भ में–मनीषा मिश्रा; डॉ. अमिता शुक्ला 359
सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना की प्रासंगिकता–ललिता देवी 363
मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में सामाजिक एवं पारिवारिक संस्कारों का मूल्यांकन–आलोक कुमार तिवारी 366
नागार्जुन के रचना संसार में सौंदर्यबोध की प्रासंगिकता–संदीप कुमार 369
मानवता का उद्घोष और छायावादी रचना संसार–संजीव कुमार पाण्डेय 371
रमेशचन्द्र शाह का सबद निरंतर में आलोचनात्मक दृष्टि का मूल्यांकन–कृपा शंकर 374
महिला सशक्तिकरण मे राष्ट्रीय महिला आयोग की भूमिका : एक अध्ययन–डॉ. अजित कुमार पाठक 376
स्त्री विमर्श: अर्थ एवं अर्थव्याप्ति–कुमारी अंजना 379
भारत में मानवाधिकार और लोकतंत्र: एक राजनीतिक विश्लेषण–फरीद आलम 381
संत कवि रैदास की वाणी में मानवतावाद–डॉ. मुकेश कुमार 385
प्रवासी हिंदी साहित्य में स्त्री कथाकारों की मानवीय चेतना–प्रो. रमेश के. पर्वती 389
छत्तीसगढ़ के श्रमिको मे कोविड माहमारी के दौरान पलायन एंव चुनौतियां (रायपुर संभाग के विशेष संदर्भ में)
–संजय कुमार जांगडे; श्रीमति डॉ. रीना तिवारी 391
राम की शक्ति-पूजा : निराला व राम के संघर्ष की गाथा–प्रो. मन्जुनाथ एन. अंविग 397
कोरोना काल में उत्पन्न तनाव को दूर करने में योग करने की भूमिका–तिलकराज गौड़; डॉ. शालीनी यादव 400
भारत एक कल्याणकारी राज्य के रूप में : एक अनुशीलन–मो. जाहिद शरीफ 405
भारतीय समाज में वृद्ध लोगों की दशा–घनश्याम 408
पर्यावरण संरक्षण एवं भारतीय दर्शन–मयंक भारती 411
दक्षेस : महत्वपूर्ण पड़ाव व वर्तमान प्रासंगिकता–संजय कुमार 414
प्राणायाम : सर्वांगीण विकास का आधार–सुशील कुमार 418
ओटीटी प्लेटफॉर्म का युवाओं पर प्रभाव (एक अध्ययन दिल्ली के विशेष संदर्भ में)–हर्षवर्धन 422
भूमण्डलीकरण के दौर में लोकधर्मी कविता का संघर्ष–रंजना कुमारी गुप्ता 426
समाज सुधार की दृष्टि से तंज कसती भारतेंदु युगीन व्यंग्य–काजल कुमारी सिंह 431

संस्कृतसाहित्ये व्यक्तिविवेकस्य स्थानम्–डॉ. सुमन कुमारी; डॉ. रामजी मेहता 434
आज का पूँजीवाद और उसका उत्तर आधुनिकतावाद–मन्नु कुमार शर्मा 437
पुरुष एवं महिला बी.एड. प्रशिक्षुओं के आत्मसम्प्रत्यय का तुलनात्मक अध्ययन–अभिषेक दुबे; डॉ. (श्रीमती) स्मिता मिश्रा 441
भारत की संसद और राष्ट्रपति मिलकर क्या धारा 370 और आर्टिकल 35। को हटाने की शक्ति रखते हैं?–डॉ. रीता कुमारी 444
काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा का अध्ययन–डॉ. हेमन्त सिंह कंवर 448
लोक व मिथकीय संरचना में गिरीश करनाड का नाटक हयवदन–सुनील कुमार 451
छत्तीसगढ़ी लोकगाथा की परम्परा में वीरांगना बिलासा केंवटिन–श्री मिथलेश सिंह राजपूत; डॉ० स्नेहलता निर्मलकर 455
सामाजिक न्याय : अवधारणा एवं सिद्धान्त–डॉ. पूरण मल बैरवा; महेन्द्र प्रताप बाँयला 460
प्राचीन भारत में स्त्री-शिक्षा (प्रारम्भ से बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक)–सीमा जांगिड़ 468
माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत लोकप्रिय एवं एकाकी विद्यार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन–प्रमोद कुमार वर्मा; डॉ. मृदुला भदौरिया 476
हास्य एवं व्यंग्य का प्रतिरूप सिरमौरी लोक गायन शैली शिटणा–प्रो० पी०एन० बंसल; विनोद कुमार 482
भारत में आत्मनिर्भरता से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उन्नयन–डॉ. सौरभ मालवीय 487
वैश्वीकरण एवं बदलते सामाजिक सांस्कृतिक प्रतिमान (एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)–डॉ. मंजु नावरिया 491
सिद्धरामेश्वर : वीरशैव आंदोलन के प्रभावी शिवशरण–डॉ. अंबादास केत 496
हिन्दी कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन–डॉ. रमेश एस. जगताप 500
बाल श्रम-एक विश्लेषण–सतीश कुमार 503
भूमण्डीलकरण और जल, जंगल, जमीन का प्रश्न–डॉ० विनोद मीना 512
ओटीटी प्लेटफार्म्स का युवाओं पर प्रभाव (एक अध्ययन दिल्ली के विशेष संदर्भ में)–हर्षवर्धन 516
एम.एन. राय का नव मानववाद: एक विश्लेषण–सोनी कुमारी 520
नारी-स्वातंत्र्य के परिप्रेक्ष्य में कमलेश्वर की कहानियाँ–सुधा कनकानवर; डॉ. श्रीनिवास मूर्ति 523
गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के सन्दर्भ में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ. सुषमा सिंह; राजपाल सिंह यादव 526
मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास शिल्प : यथार्थवादी बिम्ब का जादुई-अवबोध–डॉ. संजय कुमार लक्की; रमेश चन्द सैनी 531
लोकपाल की भ्रष्टाचार निवारण में सार्थकता–डॉ. योगेन्द्र कुमार धुर्वे 535
दलितों के शैक्षिक उत्थान में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का अवदान–सरिता; प्रो. बी.एल. जैन 538
गाँधीवादी दर्शन में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का स्थान–सोमेश गुंजन 541
आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित औचित्य विमर्ष–डॉ. दीप्ति वाजपेयी; गुंजन 543
आचार्य महाप्रज्ञ का चिंतन-अहिंसा एवं विश्व शांति और लोकतंत्र सुधार–डॉ. इन्दु तिवारी 547
पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में ग्रामीण संस्कृति–अनिरुद्ध कुमार 550
ग्रामीण क्षेत्रों में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना से बदलता परिदृष्य का एक अध्ययन आलीराजपुर जिले के सन्दर्भ में –डॉ. डुंगरसिंह मुजाल्दा 553
जूनियर हाईस्कूल में अध्ययनरत दृष्टिबाधित एवं सामान्य बालकों के समायोजन एवं व्यक्तित्व का उनकी शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्ध का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ. प्रशान्त शुक्ला 563
हिदी कथा साहित्य में अभिव्यंजित दिव्यांग या विकलांग पात्रों की समस्याओं का विश्लेषण–डॉ. प्रेरणा गौड़ 568
हेमचंद्राचार्य कृत योग-शास्त्र में आसन विमर्श–डॉ. धीरज प्रकाश जोशी 571
प्राकृतिक आपदाओं का कृषकों के जीवन पर प्रभाव : मनरेगा एक विकल्प समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ. सौम्या शंकर; सुनील कुमार 573
शैक्षिक उपलब्धि पर संवेगात्मक बुद्धि का प्रभाव: एक समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ. वन्दना चतुर्वेदी; शिव नारायण 584
भारतीय अर्थव्यवस्था में ई-व्यवसाय की भूमिका एवं प्रभावशीलता का अध्ययन–पूजा जैन 588
मालती जोशी की कहानियों में नारी चित्रण–डायमंड साहू; डॉ० रमणी चंद्राकर 591
युवाओं में नए मीडिया की भूमिका का अध्ययन–डॉ. मधुदीप सिंह; हिमांशु छाबडा 594
किशोर अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों में शैक्षिक समस्याओं पर एक अध्ययन–डॉ. रिया तिवारी; श्री डोमार यादव 600

वैश्वीकरण और इलैक्ट्रानिक बैंकिग सेवाओं की उपयोगिता–डॉ. संजय खत्री 606
छत्तीसगढ़ी भाषा : दशा एवं दिशा–डॉ. आंचल श्रीवास्तव; विवेक तिवारी 608
तुलसीदास की समन्वय भावना–डॉ. राजमोहिनी सागर 613
आधुनिक जीवन शैली में योगाष्टाङ्गों का महत्व–डॉ० चन्द्र कान्त पांडा 617
वैयक्तिक अनन्यता की समस्या (Problem of Personal Identity)–ऋषिकेश चौहान 626
वर्तमान परिवेश में ई-गवर्नेस द्वारा प्रशासनिक सुधार एवं सुशासन पर प्रभाव–चन्दना शर्मा 629
वाल्मीकि महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिदृष्य; हरियाणा के नूंह जिले के विशेष सन्दर्भ में–दीपक 632
आज की आलोचना के समक्ष चुनौतियाँ–डॉ० आस्था दीवान 638
जम्मू - कश्मीर के क्षेत्र के लिए विकास की संभावनाएं–डॉ० अभिषेक आनन्द 640
संस्कृत साहित्य में वर्णित मानव चक्र–डॉ० दीप्ति बाजपेयी; कु.० संजू नागर 644
हिन्दी काव्य और उत्तरआधुनिकता–डॉ० तारु एस० पवार 647
शिक्षा के क्षेत्र में न्यू मीडिया का उपयोग: एक अध्ययन (सिरसा के महाविद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों के सन्दर्भ) –डॉ० अमित सांगवान; विनोद कुमार 650
काव्य प्रक्रिया में दिवास्वप्न से गुजरता हुआ कवि नरेंद्र मोहन–डॉ० सुभाष चंद्र डबास 'चौधरी' 655
भारतीय जीवनाधार: कर्मवाद:–डॉ० हिमा गुप्ता 657
आई०एम० क्रौम्बी के अनुसार धार्मिक भाषा का स्वरुप : एक विश्लेषण–डॉ० स्मिता सिंह 660
हिमालय के खस : उत्तराखंड में आर्य जातियों में समाहित होते खस इतिहास के पन्नों में हाशिए पर–डॉ० हरीश चंद्र लखेड़ा 665
स्वच्छ भारत अभियान के प्रचार प्रसार में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका: एक अध्ययन–डॉ० अनिल कुमार 668
आधुनिक भारत में डॉ. अम्बेडकर के धर्मान्तरण का औचित्य–डॉ. युवराज कुमार 672
आरटीआई: प्रभावी शासन का एक औजार–डॉ० ऋचा सिंह 679
"..किसी के जाने के बाद, करे फिर उसकी याद, छोटी-छोटी सी बात" (फिल्मकार बासु चटर्जी से गोकुल क्षीरसागर की बातचीत) –डॉ. गोकुल क्षीरसागर 684
करोना महामारी और प्रसाद के काव्य की मानवतावादी भावना–डॉ० बिजेंद्र कुमार 687
गंगाराम राजी के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक सरोकार–सुनीता; डॉ० रामरती 692
गोंड जनजाति के प्रमुख संस्कार–डॉ० पियुष कुमार सिंह 695
जयश्री रॉय के उपन्यासों में नारी शोषण–भावना देवी 697
पुरुष की संक्रीण मानसिकता के कारण विवाहोपरांत दाम्पत्य-संबंधों में बिखराव को मार्मिक ढ़ंग से चित्रित करता सुनीता जैन का उपन्यास "बिंदु"–नीलम देवी 699
बाल धरोहर एवं समाज कल्याण–डॉ. शिवसिंह बघेल; डॉ. के. बालराजु 703
गीतांजलि श्री के माई उपन्यास में चित्रित समस्याएँ–वीना 707
जिला रीवा के उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के सामाजिक प्रेरकों एवं शैक्षिक आकांक्षा के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन –राजेश कुमार यादव; डॉ० पतंजलि मिश्र 709
नई कविता में सौंदर्य-चेतना–डॉ० संतोष धोत्रे 713
भारत - राष्ट्र राज्य बनाम सभ्यतामूलक राज्य: एक समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० जय प्रकाश खरे 717
मध्य एशिया में चीन-रूस संबंध: सहयोग और अविश्वास–गुरदीप सिंह 720
मानवाधिकार और आदिवासी–प्रा० प्रशांत देशपांडे 724
महाविद्यालय के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक प्रशिक्षकों की सेवा संतुष्टि की भूमिका–अश्वनी कुमार मिश्र; डॉ. सुनील कुमार सेन 729
रीवा जिले में बी०एड० एवं डी०एल०एड० प्रशिक्षुओं की मानवाधिकार जागरूकता का उनकी जीवन शैली से सम्बन्ध का अध्ययन –अरूण कुमार; डॉ० पतंजलि मिश्र 732
भारतीय बैंकिंग में ग्राहक शिकायत निवारण नीति–रमनदीप कौर 736
विद्यार्थियों में पर्यावरणीय चेतना के लिए शिक्षा का महत्त्व–डॉ० श्रवण कुमार; डॉ० गिरीश कुमार द्विवेदी 740
वेदों के विषय में आचार्य सायण एवं महर्षि दयानन्द का दृष्टिकोण–सुनील कुमार 743

जूड़ो में स्थिर संतुलन पर वजन वर्ग का प्रभाव–चन्द्रशेखर बांधें; डॉ. राजीव चौधरी 749
बंगला काव्य और गांधी जी–डॉ. राम बिनोद रे 754
मानव जीवन में वनस्पतियों का महत्व (वैदिक साहित्य के आलोक में)–डॉ० दीप्ति वाजपेयी; कु० मोनिका सिंघानिया 760
वैदिक काल में स्थानीय - प्रशासन का विकास–डॉ० रितु तिवारी 764
साहित्य में थर्ड जेंडर: हाशिये की दुनिया–कृष्णा कुमारी 767
निराश्रित एवं पारिवारिक किशोर विद्यार्थियों में "आत्मविश्वास"–श्रीकृष्ण जांगिड़; डॉ. अखिलेश जोशी 770
सांसद निधि के उपयोग में पारदर्शिता का अध्ययन–यशोदा पटेल; डॉ० आयशा अहमद 774
मन्नू भंडारी की कहानियों में नए जीवन मूल्यों का चित्रण–प्रा. डॉ. दिग्विजय टेंगसे 777
आधुनिक जीवन शैली में योगाष्टाङ्गों का महत्व–डॉ. चंद्रकांत पंडा 780
नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में साम्राज्यवादी विचारधारा का अनुशीलन–अजय कुमार 788
हिन्दी साहित्य में ललित निबंधों की मौलिकता–प्रदीप कुमार तिवारी 792
घनानंद काव्य का भाषा-शिल्प सौन्दर्य–डॉ. तृप्ता 795
भारत में सु-शासन और उसके समक्ष चुनौतियाँ–डॉ. सुरेन्द्र मिश्र 798
आर्थिक विकास बनाम संस्कृति और पर्यावरण : भारत के संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–एन राजेन्द्र सिंह 804
महात्मा गांधी की ग्राम-स्वराज्य की अवधारणा : एक अध्ययन–मोनिका भाटी 808
समकालीन काव्य सृष्टि में पर्यावरण दृष्टि–शाहिद हुसैन; डॉ. श्रद्धा हिरकने 811
योग-शिक्षा की अभिनव विधियाँ: हिंदी-भाषी यौगिक-वर्णमाला-चार्ट की रचना एवं परिवर्धन–मनीश कुमार; पूनम पंवार; परन गौड़ा 818
जगदीश चंद्र माथुर के नाटकों में समाज में नारी का महत्व–स्मिता शर्मा; डॉ. चित्रा 826
बेरोजगारी की राजनीतिक-यथार्थ (अखिलेश के 'अन्वेषण' उपन्यास के संदर्भ में)–बर्नाली नाथ 829
भारतीय उपभोक्ता और उत्पाद एवं सेवा प्रदाता कंपनियों के अंर्तसंबंधों में डिजिटल मीडिया की भूमिका–डॉ. आदित्य कुमार मिश्रा 832
भारतीय लोकतंत्र में दल और दलबदल की राजनीति–डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़; प्रो. अनिल धर 836
उत्तराखण्ड राज्य में पर्यटन शिक्षा, कौशल विकास एवं क्षमता संवर्धन- वर्तमान परिदृष्य, भावी चुनौतियां एवं अवसर
–डॉ. संजय सिंह महर; डॉ. हेमंत बिष्ट 840
छत्रपति शिवाजी महाराज की दृष्टिकोन से स्त्री–डॉ. हेमलता काटे 854
भ्रष्टाचार से लड़ाई और अन्ना हजारे का नेतृत्व–आलोक तिर्की 857
राजनीतिक-जागरुकता की शक्ति एवं महत्त्व–हामिद अली 860
भारतीय लोकतंत्र में मतदान प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक: एक अध्ययन–डॉ. जोनी इम्मानुएल तिरकी 863
बिहार की राजनीति में बदलाव की अपेक्षाएँ: एक अध्ययन–कृष्णदेव राय 866
बिहार में सुशासन और दलित सशक्तिकरण : एक अध्ययन–प्रभात आनन्द 868
केन्द्र - राज्य सम्बंध : बदलते परिदृश्य–चन्द्रभान सिंह 872
विमर्श एवं विद्या केंद्रित आलोचना–श्रीमति मीतू बरसैंया; डॉ. श्रीमती आँचल श्रीवास्वत 878
विकसित और विकासशील राष्ट्रों में बुजुर्गों की देखभाल: एक तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य–डॉ. स्मिता राय; डॉ. भूपेन्द्र बहादुर सिंह 881
भिण्ड अंचल की सामाजिक व्यवस्था का इतिहास : एक अध्ययन–डॉ. शालिनी गुप्ता 886
जनजातीय समुदाय में तीज त्यौहार एवं परिवर्तन का विश्लेषण (छ.ग. राज्य की मुरिया जनजाति के विशेष संर्दभ में)–डॉ. ममता रात्रे 890
स्वामी विवेकानन्द : सामाजिक विचारक के रूप में–प्रेमलता 893
संस्कृत नाट्यशास्त्र पर कालिदास की शैली का प्रभाव–डॉ० अवधेश कुमार यादव 895
पितृसत्तात्मक व्यवस्था और नारी : अप्प दीपो भव–डॉ० जागीर नागर 898
समाज में निरन्तर दोयम दर्जे की अनुभूति–डॉ० प्रदीप कुमार सिंह 903
पंजाब नाटशाला : नाट्य मंचन का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय रंगमंच–डॉ० सुनीता शर्मा 909
विद्यार्थियों में परीक्षा दबाव को कम करने में योग व ध्यान की भूमिका–शैली गुप्ता; डॉ० मंजू शर्मा 914
शोभाकरेण अलङ्कारसर्वस्वखण्डनं जयरथमतमण्डनञ्च–डॉ. प्रीतम रुज 916
हिंदी आलोचना का समकालीन परिदृश्य–अमित डोगरा 921

प्रेमचंद पूर्व कहानियों की परम्परा–डॉ. नारायण 924
स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक पुनर्जागरण में लोकनायक जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति का अवदान–डॉ. आरती कुमारी 929
भूमंडलीकरण के दौर में भारतीय भाषाओं की भूमिका–डॉ. गीता सहाय 932
नई शिक्षा नीति 2020–डॉ० गवित माधव हरि; गोपाले यशवंत काशीनाथ 934
नई शिक्षा नीती और प्रक्रिया उम्मीद : चिकित्सक अध्ययन–डॉ. कविता सालुंके 936
नई शिक्षा नीति 2020–डॉ. बबीता बी. शुक्ला 939
शिक्षा पर डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के बुनियादी विचार–डॉ. नागोराव शालिग्राम डोंगरे 943
नए श्रम कानून का सामाजिक प्रभाव–डॉ. माधव के. वाघमारे 946
नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: एक दृष्टीक्षेप–श्रीमती थोरात अनिता भास्कर 949
भारत की नई शिक्षा नीति - 2020–डॉ० रंजना राजेश सोनावने 952
चिकित्सकों के बीच भावनात्मक बुद्धि में लिंगभेद का अध्ययन–डॉ० साहेबराव यू. अहिरे; डॉ० जी. बी. चौधरी 955
नई शिक्षा नीति - 2020 और नए श्रमिक कानून: नई शिक्षा नीति 2020 का डी. एड्. व बी. एड्. कोर्सेस पर प्रभाव एक अनुशीलन–डॉ० अमोल शिवाजी चव्हाण 959
राष्ट्रीय शिक्षा निती 2020 का शिक्षको को सक्षम बनाने मे योगदान–प्रताप भाऊसाहेब आत्रे 964
चित्रा मुद्गल कृत उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में नारी जीवन (विज्ञापन जगत के सन्दर्भ में)–डॉ. शशी पालीवाल 967
भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ग्रामीण पर्यटन का प्रभाव–अनूप कुमार सिंह 971
श्रीलाल शुक्ल कृत उपन्यास अज्ञातवास में ग्रामीण एवं शहरी जीवन : एक अध्ययन–डॉ० अखिलेश कुमार वर्मा 974
परमार अभिलेखों में संदर्भित स्थलाकृतियों से सम्बन्धित स्थलनाम एवं उनका अभिधान–डॉ० रागिनी राय 977
मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं में स्त्री अस्मिता : एक दृष्टि–डॉ० शिवा श्रीवास्तव 981
वित्तीय समावेशन की ग्रामीण रोजगार में भूमिका : एक दृष्टि–उज्ज्वल चतुर्वेदी 985
न्यू मीडिया की नजर से कोविड-19 से जूझते परिदृश्य में शिक्षा जगत का बदलता परिदृश्य–डॉ० शैलेश शुक्ला 988
चार्वाक दर्शन–डॉ० सरोज राम 993
असगर वजाहत व्यक्तित्व-कृतित्व–रमेश नारायण; डॉ० सविता तिवारी 997
श्रीमद्भगवद्गीता में प्रकृति का स्थाई अस्तित्व–डॉ. मधु दीप सिंह; जितेंद्र सिंह 1002
भारत में अपार्टमेन्ट संस्कृति की यात्रा : समाजशास्त्रीय पाठ–डॉ० विमल कुमार लहरी 1010
आदिवासी विमर्श–डॉ० नसरीन जान 1014
राजस्थान मे बढ़ती किसान आत्महत्या के कारण व निवारण: एक अध्ययन–डॉ० मंजु यादव; राजेन्द्र कुमार मीणा 1016
राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में मानवाधिकार–डॉ० मौहम्मद अबीर उद्दीन 1019
स्ववित्तपोशित सहशिक्षा एवं महिला शिक्षा संस्थानों में कार्यरत महिला अध्यापिकाओं की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन–अखिलेश कुमार मौर्य 1022
निजी और सरकारी स्कूलों के शिक्षकों में नौकरी संतुष्टि और शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य पर कार्य दबाव के प्रभाव –अलका तिवारी; डॉ० कालिंदी लाल चंदानी 1026
ब्रज चौरासी कोस यात्रा : आधुनिक परिपेक्ष में–डॉ० अम्बिका उपाधयाय 1029
आदिवासी देवी अंगारमोती : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में–कु० शोभना देवी सेन; डॉ० बन्सो नुरूटी 1033
हिंदी कहानी में वृद्ध विमर्श–डॉ० भगत गोकुल महादेव 1039
भारत की जनजातियों मे जीवन साथी चुनने की विधियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ. हरिचरण मीना 1041
स्ववित्तपोशित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत प्रशिक्षुओं के सांवेगिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन–कृपा शंकर यादव 1044
उच्चतर माध्यमिक स्तर के कक्षा 11 के विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता का अध्ययन–कुसुम देवी 1050
भारत और नेपाल संबंध–डॉ. वंदना वाजपेयी 1053
महाभोज : परत दर परत टूटता विश्वास–विनोद कुमार; प्रो० डॉ० मिन्तु 1057

अरुण कमल की कविताओं में नव युगबोध–मिथिलेश कुमार मिश्र 1060
अनाथ व सनाथ छात्रों के मनोवैज्ञानिक-सामाजिक समस्याओं और शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन –कुलदीप; डॉ० कालिंदी लाल चंदानी 1063
पं. द्वारिका प्रसाद तिवारी 'विप्र' के साहित्य में सामाजिक चेतना–मुरली सिंह ठाकुर; डॉ० स्नेहलता निर्मलकर 1068
उच्च माध्यमिक स्तर के महिला शिक्षकों में जीवन कौशल के प्रति अभिवृति का तुलनात्मक अध्ययन–प्रो० मंजू शर्मा; मधु देवी 1072
वीर रानी के रूप में रुद्रमा देवी का मूल्यांकन–प्रो. देवेंद्र कुमार गुप्ता; सुमिति सैनी 1078
हिन्दू परिवार में आधुनिक परिवर्तन : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण–डॉ० प्रियंका नीरज रूवाली; वन्दना सिंह 1081
अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किए गये सरकारी प्रयास एवं वर्तमान स्थिति–अच्युत कुमार यादव 1086
असमिया साहित्य में रोमांटिसिज्म के प्रभाव (चंद्रकुमार आगरवाला के कविताओं के विशेष संदर्भ में)–दिगंत बोरा 1090
असाध्य वीणा का सामाजिक पाठ–डॉ. आकाश वर्मा 1094
कोरोना महामारी काल में पुस्तकालयो में डिजिटल तकनीकों का महत्व और उपयोग–डॉ. संजय डी. रायबोले 1098
असम का लोकनाट्य: पुतलाभिनय या पुतला नृत्य–डॉ. परिस्मिता बरदलै 1101
भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री–डॉ. आकाश वर्मा 1104
"स्माल सिनेमा" बनाम "मालेगांव का सिनेमा"–डॉ. मनीष कुमार मिश्रा 1110
विश्वशांति बनाए रखने में विभिन्न धर्मो की भूमिका–डॉ० सुनिता कुमारी 1115
दलित चेतना का प्रतीक झलकारी बाई: एक अनुशीलन–बबली कुमारी 1118
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में जनसंचार की भूमिका–देवेन्दु आलोक 1122
चम्पारण के नील संघर्ष में गांधीजी की भूमिका: एक ऐतिहासिक पुनर्मूल्यांकन–धीरज कुमार 1126
रबीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी: एक शैक्षणिक स्थिति से शिक्षा पर उनके प्रभाव–गुड्डू कुमार सिंह; डॉ. अलका कुमारी 1131
भूगोल में फेनोमेनॉलॉजी : एक चिन्तन फलक–डॉ० श्री कमलजी 1138
बदलते परिवेश में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श के विविध आयाम–प्रोफेसर लता सुमन्त; प्रमोद कुमार सिंह 1140
नासिरा शर्मा का व्यक्तित्व व कृतित्व–प्रोफेसर लता सुमन्त; राजेश कुमार पटेल 1146
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में चित्रित नारी की राजनीतिक चेतना–डॉ. महेन्द्र कुमार त्रिपाठी; नीलम देवी 1151
बुद्ध दर्शन और पश्चिमी मनोविज्ञान–डॉ० मनोज कुमार 1154
गांधीजी का स्वराज एवं सत्याग्रह : रंग-भेद नीति के विरूद्व निर्णायक शस्त्र–निवेदिता कुमारी 1158
मुगल काल में इतिहास लेखन–डॉ० राघवेन्द्र यादव 1162
प्राचीन बिहार के बौद्ध महाविहार ओदन्तपुरी: एक शैक्षणिक अवलोकन–राहुल कुमार झा 1165
बिहार के पुराने गया जिले के क्षेत्र में नक्सलवादी गतिविधि–सचिन कुमार 1169
भारत की नई शिक्षा नीति - 2020 : आवश्यकता, प्रभाव एवं चुनौतियां–संजय हिरवे; आशुतोष पाण्डेय 1173
भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सुभाष चंद्र बोस की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–तौकीर आलम 1177
प्राचीन बिहार में राजतंत्र एवं गणतंत्र की अवस्थाएँ–डॉ० संजीव 1181
''जनहित याचिका'' मानवाधिकारों का संरक्षक : एक अध्ययन–दीपक कुमार कोठरीवाल 1183
प्रगतिशील आंदोलन की जागृति–डॉ. आशा तिवारी ओझा 1186
भारत में बाढ़ की समस्या और समाधान–डॉ० सीमा सहदेव 1189
भारत सहित अन्य देशों पर कोरोना वायरस (कोविद-19) प्रभाव–श्रीमती मीनाक्षी 1195
रत्न आभूषण उद्योग : एक भू-आर्थिक विश्लेषण–अक्षय राज 1201
जीएसटी अवलोकन - भारत में माल और सेवा: जीएसटी आईटीसी–डॉ० अनामिका तिवारी; डॉ० संजय कुमार सिंह 1205
छत्तीसगढ़ कानून, नीतियां और न्यायिक दृष्टिकोण, पर्यावरण सुरक्षा और संरक्षण–आकांक्षा गर्ग अग्रवाल; डॉ. (प्रो.) जे. के. पटेल 1210
अष्ट चामुण्डा - अग्निपुराण के विशेष सन्दर्भ में–प्रो. प्रभात कुमार; कल्पना देवी 1216
पाणिनि अष्टाध्यायी में वर्णित जनपदीय कृषि का विवेचन–डॉ. प्रशान्त कुमार; डॉ. दुर्वेश कुमार 1221
रीती काल के अग्रदूत: महाकवि केशवदास–सोमबीर 1227
कार्यशील महिलाओं में प्रसव सम्बंधी निर्णायक क्षमता का समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० सुशीला; कु० आरती 1230

भारतीय लोकतत्रं के संदर्भ में संसदीय सरकार की उपयोगिता–डॉ. जगबीर सिंह 1238
भारत में राजनीति के अपराधीकरण की समस्या–मुकेश देशवाल 1241
भारत में दो स्तर पर शासन की त्रिस्तरीय लोकतांत्रिक संरचना–सूर्यभान सिंह 1244
अलवर जिले में बदलता सिंचाई स्वरूप एवं उसका कृषि पर प्रभाव (2011 से 2018 तक)–जितेश कुमार घोरेठा; डॉ. राजेन्द्र प्रसाद 1250
भारत में संसदीय गरिमा का अवमूल्यन–महेश कुमार 1256
प्रधानमंत्री मोदी के तहत भारतीय विदेश नीति: निरंतरता और परिवर्तन–डॉ० जय कुमार झा 1259
मानव जीवन में भावनात्मक और संवेगात्मक मनोविज्ञान से जुड़े तथ्यों एवं सिद्धांतो की महत्ता: समीक्षा–डॉ. जया भारती; डॉ. संदीप कुमार वर्मा 1262
भारत में जल संसाधन एवं जल संरक्षण की परम्परागत विधियों का शोधपरक अध्ययन–कविता 1266
मानवाधिकार : साहित्य की समग्र दृष्टि–डॉ. रूपेश कुमार चौहान 1271
निधर्नता उन्मूलन में मनरेगा कार्यक्रम की भूमिका : अनुसूचित जातियों के विशेष सन्दर्भ में–डॉ. प्रियंका एन. रूवाली; उपमा द्विवेदी 1275
''उच्च शिक्षा स्तर पर महाविद्यालयी शिक्षा में ई-लर्निंग की प्रभावशीलता का अध्ययन''–प्रीति शर्मा; डॉ० मंजू शर्मा 1279
युवा एवं पंचायती राज संस्थाओं का शिक्षा और महिलाओं के सामाजिक विकास में भूमिका–श्वेता पांडेय; डॉ० मंजू शर्मा 1283
भारतीय राष्ट्रीय जागरण में स्वामी दयानन्द का योगदान–विकास 1287
आजादी के बाद के भारत में महिलाओं की स्थिति–डॉ. अनिल कुमार तेवतिया 1290
टेलीविजन संस्कृति और सामाजिक प्रतिबद्धता के अंतर्विरोध–डॉक्टर मधु लोमेश 1295
प्रगतिशील समाज में अवरोधित महिला शिक्षा–प्रो. (डॉ.) मंजू शर्मा; रुकमणी हसवाल 1298
विवेकी राय कृत उपन्यास शवेत-पत्र: एक ऐतिहासिक दस्तावेज–विभा रीन 1303
हिन्दी गद्य साहित्य में महिला लेखन का महत्त्व–प्रो० (डॉ०) शिव शंकर मंडल 1306
सुशासन की अवधारणा एवं व्यवहार : भारतीय शासन व्यवस्था के विशेष संदर्भ में–डॉ0 सत्येन्द्र कुमार 1309
ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन एवं विकास में पंचायतराज की भूमिका–डॉ० जयराम बैरवा 1312
प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा का महत्व–डॉ. विनय कुमार मिश्र 1317
अनामिका के उपन्यासों में स्त्री-जीवन की अभिव्यक्ति–स्वर्णिम शिप्रा 1322
पूर्वमध्यकाल में जातीय प्रगुणन–प्रवीण पाण्डेय 1326
पश्चिमी राजस्थान की हस्तशिल्प कला का संग्रहालयों में योगदान–अजीत राम चौधारी; डॉ. महेन्द्र चौधरी 1329
भारत में सामाजिक न्याय के निर्वचनकर्ता के रूप में मानव जीवन के विकासात्मक पहलुओं पर सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका –असीम कुमार शर्मा 1332
भारतीय साहित्य की एकता में बाधक तत्व–डॉ. नवनाथ सर्जेराव शिंदे 1336
पं. दीनदयाल उपाध्याय का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद–डॉ. हरबंस सिंह 1339
क्षेत्रीय विकास, सतत विकास एवं राजनीति - उत्तराखण्ड के लोगो के जनजीवन के विशेष संदर्भ में–सुनील सिंह 1341
किशोर छात्र-छात्राओं की चिंता का उनके कॅरियर के प्रति निर्णय क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन –महेन्द्र कुमार; डॉ. जीतेन्द्र प्रताप 1346
पर्यावरण का सामाजिक पक्ष और केदारनाथ सिंह की कविताएं–डॉ. पूर्णिमा आर 1352
सतनामी संप्रदाय और बाबा जगजीवन दास–डॉ. अनिता सिंह 1356
ऑनलाइन एवं ऑफलाइन खरीददारी में उपभोक्ता संतुष्टि के मध्य तुलनात्मक अध्ययन (बिलासपुर शहर के उपभोक्ताओं के विशेष संदर्भ में) –डॉ. अनामिका तिवारी; अंकिता पाण्डेय 1360
समकालीन विमर्शो के समक्ष चुनौतियाँ–संजय सिंह यादव; डॉ. विनोद कुमार 1374
स्वामी सुन्दरानन्द जी : निम के प्रथम विद्यार्थी–गीता आर्या 1377
दार्शनिक चिन्तन की प्रक्रिया – मूल्यान्वेषण या सत्यान्वेषण–डॉ. रेखा ओझा 1381
इच्छाशक्ति और संघर्ष की दास्तान ('मुर्दहिया' के संदर्भ में)–डॉ. विलास अंबादास सालुंके 1386
हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श–डॉ. दायक राम 1388
भारत में मातृभाषा का महत्व एवं चुनौती : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ. सोनू कुमार 1392
भारत में किसानों का दशा एवं दिशा : एक अध्ययन–डॉ. राकेश रंजन 1396

छत्तीसगढ़, पर्यटन और नक्सलवाद–डॉ. काजल मोइत्रा; डॉ. रत्नेश कुमार खन्ना; रेखा शुक्ला 1401
दलित महिलाओं के शोषण के विभिन्न आयाम : एक ऐतिहासिक अध्ययन–कुमारी संगीता कुशवाहा 1405
भारत में महिलाओं को प्रदत्त संवैधानिक अधिकार (सैद्धांतिक व व्यावहारिक विश्लेषण)–आशा नागर 1408
पूर्वमध्यकालीन समाज का सामाजिक एवं आर्थिक आधार–डॉ. मनोज सिंह यादव 1414
ज्ञान के विकास के नवाचार का महत्त्व–रजनी कुमारी 1417
न्यायवैशेषिकदर्शनाभिमत मोक्षस्वरूपविमर्श (कौण्डभट्ट विरचित पदार्थदीपिका के विशेष सन्दर्भ में)–डॉ. विश्वेश 'वाग्मी' 1419
सिक्ख दार्शनिक : डॉ. वजीर सिंह का जीवन तथा उनका शैक्षणिक कार्य–हरदीप कौर 1423
संजीव की कहानियों में समकालीन परिदृश्य–डॉ. मधुलता बारा; हेमलता पटेल 1425
शिक्षा के बुनियादी सरोकार और गाँधी-दर्शन–डॉ. किरण कुमारी 1428
अमीरी और गरीबी सैद्धान्तिक प्रक्रिया मानने वाले प्रज्ञा श्री के धनी श्री श्रीलाल शुक्ल–डॉ. मुक्ति मिश्रा 1432
वैश्वीकरण से भारत के चुनावी प्रक्रिया पर पड़ने वाला प्रभाव–विकास रंजन 1439
विज्ञान एवं अध्यात्म–डॉ. रमाकान्त पाण्डेय 1443
फनिश्वर नाथ रेणु की 'मैला आंचल' उपन्यास का नया परिदृश्य–डॉ. हरिकिशोर यादव 1447
भारत का कपड़ा उद्योग: एक अवलोकन एवं स्वास्थ्य समस्याये–डॉ. हितैषी सिंह 1453
भारत में शिक्षक शिक्षा का विकास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–विक्रम बहादुर नाग; डॉ. अज़ीज़ुर्रहमान खान 1456
मध्यकालीन कृषि व्यवस्था में उत्पादन तकनीकी विशिष्टता की महत्ता–अश्वनी कुमार; किशोर कुमार 1460
भारत में दलीय लोकतन्त्र की बदलती भूमिका–डॉ. ब्रहम प्रकाश 1465
परसाई के साहित्य में भाषा का सौन्दर्य–अजय कुमार मिश्र 1468
बौद्ध धर्म के प्रमुख केन्द्र के रूप में कौशाम्बी : एक पुनरीक्षण–अनामिका मौर्या 1471
गोदान - कृषक-वेदना का दस्तावेज–डॉ. सुरजीत कौर 1474
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श–डॉ. कविता मीणा 1477
भारतीय युवाओं में बढ़ती आपराधिक वृत्तियाँ- एक बहुआयामी विश्लेषणात्मक अध्ययन–रजनी रंजन सिंह; त्रिलोकी सिंह 1480
ब्रिटिश शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव–विपिन सहरावत 1491
ऊना के लोकगीतों में वैज्ञानिक व विद्युत वाद्य यंत्र उपकरणों की भूमिका–ममल धीमान; डॉ० परमानन्द बंसल 1494
आर्थिक विकास में उच्च शिक्षा का महत्व–डॉ० गुलाब फलाहारी 1497
इंटरनेट पर उपलब्ध हिन्दी ई-संसाधन, सूचना स्रोत एवं उपकरण: एक सूचनात्मक अध्ययन–डॉ० गौतम सोनी 1499
शहीद भगतसिंह–कुसम राय 1504
जीवन कौशल शिक्षा एक: नए दृष्टीकोन–डॉ. कविता सालुंके; प्रा. ज्योती लष्करी 1506
आधुनिक इतिहास में पुतर्गाल का सागरीय नियंत्रण : राजनैतिक व आर्थिक परिणाम–डॉ० नीलम 1509
मानव जीवन में योग–डॉ० पूजा कुमारी 1514
भारत में बेरोजगारी एवं निर्धनता निवारण-एक जटिल प्रक्रिया–डॉ० अशोक कुमार मिश्र 1517
अवसाद व रोग प्रतिरोध का हथियार है योग–डॉ० सीमा सिंह 1519
स्वामी विवेकानंद की दृष्टि में शिक्षा का वास्तविक अर्थ–डॉ. अपराजिता जॉय नंदी 1525
उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के किशोरावस्था के विद्यार्थियों में मूल्य सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन–डॉ० विष्णु कुमार 1527
भगवद्गीता का दर्शन और महात्मा गाँधी–डॉ० स्मिता कुमारी 1532
शिक्षा में कंप्यूटर का महत्व–आलोक तुली 1537
सामाजिक कार्य व्यवसाय में लोक-जीवन एवं उनकी विधियों की प्रासंगिकता –अमित कुमार; आर. के. अर्चना सदा सुमन टुदी; डॉ० रविन्द्रनाथ शर्मा 1541
चौरी चौरा जनक्रांति और ब्रिटिश साम्राज्य की द्वेशपूर्ण न्यायिक प्रक्रिया–डॉ. अजय कुमार सिंह 1545
21वीं शताब्दी भारतीय परिपेक्ष्य में आत्मनिर्भरता अभियान–डॉ. गरिमा सक्सेना 1548

बस्तर संभाग में विद्युत उत्पादन के पारंपरिक श्रोतों की संभावना–जितेन्द्र कुमार बेदी; डॉ. काजल मोईत्रा 1551
भारत में विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति, संरचना एवं दिशा का अध्ययन–डॉ. मनोज कुमार अग्रवाल 1554
प्राचीन भारतीय वेशभूषा (प्रारम्भ से गुप्तकाल तक)–पीयूष पाण्डेय 1558
विचित्र नाटक में छंद योजना–मनिंदर जीत कौर 1562
समकालीन भारतीय समाज में वृद्धों की स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ. हेमलता बोरकर वासनिक 1565
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की नारी पात्रों में निहित लोककल्याण की भावना–प्रतिभा झा 1572
हरियाणा की चुनावी राजनीति में मतदान व्यवहार का निर्धारण–राजीव वर्मा; डॉ० तिलक राज आहुजा 1575
कबीर की विचारधारा और उनकी जन-पक्षधरता–डॉ० धनंजय कुमार दुबे 1580
श्रीमद्भगवद्गीता तथा मनुस्मृति में सदाचार अनुशीलन–प्रवीण कुमार 1586
सगुण कवि तुलसीदास के काव्य - सिद्धान्त–मधु अरोड़ा; अर्चना कुमारी 1590
महावीरचरिते तात्कालिक – समाजसंस्कृती–अनिता कौशिक: 1594
गरुड पुराणे कुष्ठ रोग: एकं विवेचनम्–संजय: कुमार: 1599
सिक्कों की उत्पत्ति, विकास एवं उनका महत्त्व–अंजू मलिक 1602
शक्तिपात विद्या की दार्शनिक रूपरेखा–मनीष कुमार; डॉ. बिमान पॉल 1605
स्मृति विकास में योग दर्शन की भूमिका–प्रमोद कुमार; डॉ. पारन गौड़ा 1609
पं. बस्तीराम के काव्य में मानवतावाद–पूनम 1612
हरियाणवी लोकगीतों में यथार्थ-चित्रण–सुमन 1616
प्रवासी महाकवि हरिशंकर 'आदेश' के महाकाव्यों में सौंदर्य-चित्रण–डॉ. मनोज कुमार; डॉ. विकास कुमार 1619
प्राचीन भारत में 'युद्ध एवम् शांति' नैतिकता या अनैतिकता के संदर्भ में–डॉ. आरती यादव 1622
शारीरिक फिटनेस तथा मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन : कुमाऊं क्षेत्र के जनजातीय तथा शहरी छात्रों के सन्दर्भ में–डॉ. रश्मि पंत 1625
सोशल मीडिया और फेक न्यूज का जम्मू के युवाओं पर प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–अरविंद 1630
कौटिल्य का राजनीतिक दर्शन–संतोष कुमार साह 1634
राजस्थान के लोकजीवन में लोकनृत्य की परंपरा एवं स्वरूप–नारायण सिंह 1637
साठोत्तरी हिन्दी प्रमुख ऐतिहासिक एकांकीयाँ–रमेश चौहान; डॉ. एस.के. पवार 1641
"राष्ट्रीयता एवं भारतीय भाषाएँ"–डॉ. तारु एस. पवार 1645
भारतीय आर्थिक नियोजन में उपेक्षित किंतु प्रासंगिक : एकात्म अर्थचिंतन–धीरज कुमार पारीक 1647
मीरा कांत के नाटक : द्वन्द्व के संदर्भ में–गुरप्रीत कौर 1651
यात्रा साहित्य में हिमाचल : संदर्भ और प्रवृत्ति–डॉ. सुनीता शर्मा; श्वेता शर्मा 1653
कुण्ठा : बद्री सिंह भाटिया के कथा-साहित्य के संदर्भ में–सुषमा देवी 1658
प्रयाग, कुंभ एवं भारतीय समाज–पूजा 1661
तीन एकांत : कहानी और नाट्य रूपांतरण–चन्दन कुमार 1664
मानवीय संघर्ष की महागाथा ...रंगभूमि–डॉ. अमिता तिवारी 1668
राजस्थान मे जनशिकायत निवारण-तंत्र और ई-गवर्नेंस–विनोद कुमार 1671
पूर्वोत्तर का यथार्थ : वह भी कोई देश है महाराज–स्वाति चौधरी 1680
योगोपनिषदों में उद्धत प्रणव: एक विवेचन–नम्रता चौहान; डॉ. शाम गणपत तिखे 1682
मासिक धर्म के पूर्व योगाभ्यास का महत्व: एक अध्ययन–नेहा सैनी; डॉ. शाम गनपत तीखे 1688
स्वप्रबन्धन में चित्तशुद्धि की भूमिका: महर्षि पतंजलि एवं महत्मा बुद्ध के संदर्भ में–अखिलेश कुमार विश्वकर्मा 1693
चित्रा मुद्गल की कहानियों में चित्रित नारी-जीवन : स्वरूप, संघर्ष और अस्मिता की खोज–दीक्षा कोंवर 1697
भाषाविज्ञान का अन्य ज्ञान- विज्ञान से संबंध–डॉ० वंदना शर्मा; डॉ० वीरेंद्र सिंह 1700
कश्मीरी विद्वानों का संस्कृत साहित्य को योगदान–मीना देवी 1703
कृषि-क्षेत्र में तकनीकी परिवर्त्तन हेतु विभिन्न समस्याओं का अध्ययन–अरुण कुमार 1706
राष्ट्र निर्माण में भारतीय संसद की भूमिका: एक अवलोकन–डॉ० सुनीता मंगला; डॉ० निवेदिता गिरि 1709

राहुल का बौद्ध दर्शन और मानवतावादी सन्दर्भ–सत्य प्रकाश पाण्डेय 1715
प्रवासी मजदूरों का अपने घर की और हो रहा पलायन: इससे निर्मित चुनौतीयां एवं अवसरों का अध्ययन–डॉ. लक्ष्मीकांत शिवदास हुरणे 1719
भारत में प्रवासी श्रमिकों का वैश्विक महामारी के दौरान पलायन : चुनौतियाँ एवं रणनीति–डॉ० संजू चलाना बजाज 1723
सार्वभौमिक शिक्षा दर्शन : श्रीमद्भगवद्गीता दर्शन–डॉ० अनिता जोशी; सुनीता जोशी 1727
छत्तीसगढ़ के नवगीतकारों के नवगीतो में राजनीतिक विडम्बनाएँ–डॉ. स्वामीराम बंजारे; शैलेन्द्र कुमार साहू 1732
बौद्ध दर्शन में ध्यान का स्वरूप–धनंजय कुमार जैन; डॉ. संतोष प्रियदर्शी 1736
भविष्य के भारत में प्राचीन भारतीय विज्ञान की भूमिका–डॉ० विजय कुमार 1741
भारत में कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन–चिरन्जी लाल रैगर 1745
भारतीय हिंदी साहित्य में किसानों की त्रासदी–होशियार सिंह 1750
इन्टरनेट और मोबाइल के व्यसन से मुक्ति में योग की उपयोगिता–कृष्णाबेन संजयकुमार ब्रह्मभट्ट; डॉ० बिमान पॉल 1753
1857 की क्रांति के कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन–अमित कुमार; राजेश कुमार 1757
'भोलाराम का जीव' व्यंग्य-रचना में अभिव्यक्त सामाजिक विसंगतियाँ–चुन्नीलाल 1761
चंद्रकांता उपन्यास ''कथा सतीसर'' में कश्मीर समस्या के विविध आयाम–सुखबीर कौर 1764
बिहार का कृषि रोड मैप: किसानों के समग्र विकास का प्रतीक–दीपक कुमार झा 1766
मानसिक स्वास्थ्य के संवर्द्धन में संगीत की भूमिका: शिक्षकों के विशेष सन्दर्भ में विवेचनात्मक अध्ययन–अलका सिंह 1772
किसान अस्मिता का संकट और 'फाँस'–डॉ० बिजेन्द्र कुमार 1777
ध्रुवस्वामिनी: प्रसाद की नयी संकल्पना–डॉ० बिजय रवानी 1781
आर्थिक विकास और पर्यावरण–श्रीमती कविता 1785
नई शिक्षा नीति, 2020 के आधार पर उच्च शिक्षा में परिवर्तन–डॉ० रवींद्र कांबले 1789
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में नयी तालीम के तत्व अनुसार स्कूली छात्रों में व्यवसाय शिक्षा के लिए सेवांतर्गत अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम का उपयोजन–श्रीमती भावना पाटीलबुवा राजनोर; डॉ० संजीवनी राजेश महाले 1792
नई शिक्षा नीती 2020 के साथ पढेगा भारत–डॉ० दयाराम दुधाराम पवार 1798
वंचना से विकास की ओर शैक्षणिक संदर्भ में विविधता का अध्ययन : एक नीतिगत समझ–मांडवी दीक्षित 1801
प्राचीन मूर्तिशिल्प में पार्वती: विश्लेषणात्मक अध्ययन–राजेश कुमार जाट 1805
गरासिया जनजाति की धार्मिक अलौकिक शक्तियाँ: एक विवेचन–गोगराज चौधरी 1810
लोक-नीति और राष्ट्र निर्माण: भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मूल्यांकन–मोहम्मद राशिद खान 1814
वर्तमान परिदृश्य में महिला सशक्तिकरण- बाधाएँ एवं सुझाव–डॉ. उमाशंकर त्रिपाठी 1819
संस्कृत नाट्य शास्त्र में वर्णित नायक-नायिका और महाकवि कालिदास की रचनाओं पर उसका प्रभाव–तरूण कुमार सिंह 1822
भारत में चुनाव, लोकतंत्र और मीडिया–प्रतिभा सिंह 1825
मानवता के सरोकार और अज्ञेय का काव्य–माधुरी शर्मा 1827
भारतीय योग परम्परा एवं नाथपंथ : एक तुलनात्मक अध्ययन–कुँवर रणंजय सिंह 1833
छत्तीसगढ़ के लोक गीत और नारी सशक्तिकरण–डॉ० तृषा शर्मा; डॉ० सुधीर शर्मा 1836
कुलिश की दृष्टि में राजनीति और पत्रकारिता–डॉ० जितेन्द्र द्विवेदी 1839
हिंदी साहित्य में काल क्रमानुसार अभिजात्य एवं लोक का संबंध–सचीन्द्र नाथ 1842
नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत का स्वरूप–अशोक बैरागी; डॉ० दीपिका श्रीवास्तव 1845
मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यासों में नारी जीवन–राधा शर्मा; डॉ. स्नेहलता निर्मलकर 1848
स्त्री विमर्श और अलका सरावगी–निशु सिंहा; प्रो० अजय कुमार 1852
कोविड-19 संक्रमण एवं संतुलित आहार–डॉ० स्नेह लता 1854
महिलाएँ एवं सामाजिक न्याय - एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० दिलीप कुमार सोनी 1858

माध्यमिक स्तर के हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव: एक अध्ययन–विमला कुर्रे; डॉ. सुनील कुमार सेन 1862
इक्कीसवीं सदी की कहानियों में चित्रित वर्त्तमान परिदृश्य–डॉ० पठान रहीम खान 1869
राजस्थान में पशुपालन का महत्व: एक भौगोलिक मूल्यांकन व विश्लेषण–नीलू चतुर्वेदी 1873
हिन्दी लघुकथा में वृद्ध संवेदना का चित्रण–सरिता कुमावत 1878
रीवा सम्भाग में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों में पर्यावरण चेतना: एक भौगोलिक अध्ययन –अरूणेन्द्र बहादुर सिंह; सितेश भारती 1882
मानव जीवन मे आकांक्षा एवं आकांक्षा स्तर की उपदेयता–विनोद कुमार; डॉ० कुमुद त्रिपाठी 1886
प्रवासी जीवन की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में परम्परा और प्रगति का अध्ययन–सोनी यादव 1890
नरेश मेहता द्वारा रचित धूमकेतु और अरण्या का विवेचनात्मक अध्ययन–अशोक कुमार यादव 1893
''वर्तमान सन्दर्भ में श्रीमद्‌भगवद्‌गीता की उपादेयता''–डॉ० बन्दना सिंह 1896
काशीनाथ सिंह की कहानियों में यथार्थवाद का चित्रण–देवव्रत यादव 1899
उच्च शिक्षा तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति–डॉ० ममता मणि त्रिपाठी 1902
नैषधीयचरितम् महाकाव्य में नल के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ० अमृत कौशल 1905
मीनाक्षी स्वामी के उपन्यास 'भूभल' में स्त्री चेतना–विजय कुमार पाल 1909
डॉ० नगेन्द्र द्वारा रस निष्पत्ति के सम्बन्ध में मौलिक विचारों का अध्ययन–विशाल मिश्र 1913
हिंदी साहित्य में स्त्री -विमर्श–डॉ० दिनेश श्रीवास 1916
राजस्थान के बाढ़ सम्भाव्य पूर्वी मैदानी कृषि जलवायु प्रदेश में फसल प्रतिरूप परिवर्तन का भौगोलिक अध्ययन–अमिता बाई यादव 1919
जैन-तीर्थ-स्थलों से जुड़े प्रबन्धन में स्वार्थ-परक राजनीति का प्रवेश–पवन कुमार जैन 1926
कुसुम अंसल साहित्य में पारिवारिक रिश्तों का बदलता स्वरूप–डॉ० विक्रम सिंह; डॉ० सुनीता 1928
"मुरैना जनपद के मन्दिरों में प्रतिबिम्बित प्राचीन भारतीय मन्दिर स्थापत्य का विकासक्रम"–प्रो० प्रभात कुमार; गौरव सिंह 1930
कोरोना संकट का भारतीय अर्थव्यवस्था पर दुष्प्रभाव–डॉ० संतोष कुमार लाल 1934
सूर्यबाला की कहानियों में वृद्ध और आधुनिकता के व्यंग्यात्मक पहलू–नरेंद्र कुमार स्वर्णकार 1937
अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में 'जेण्डर पाठ्यक्रम' की आवश्यकता क्यों–वन्दना शर्मा; प्रो० वन्दना गोस्वामी; डॉ० अजय सुराणा 1940
व्याकरण शास्त्रे प्रमाणम्–डॉ० सुभाषचन्द्र मीणा 1943
एक राष्ट्र एक चुनाव: एक विश्लेषण–गुलशन कुमार; डॉ० मानसी सिन्हा 1947
आधुनिक शिक्षा प्रणाली का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन–डॉ० सुशील कुमार सिंह 1950
तुलसीदास के काव्य में लोकमंगल–डॉ. राम टहल दास 1954
हठयोग: आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता–ज्योति शर्मा; प्रो. गणेश शंकर गिरि 1959
कृष्णा सोबती का अंतिम उपन्यास 'चन्ना': विश्लेष्णात्मक अध्ययन–पूजा मिश्रा 1962
शोध विषय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों में स्त्री जीवन की समस्या–सूर्यकांत एम.बी. 1966
हरियाणा की प्रतिनिधि हिंदी कहानियां–डॉ. ओम प्रकाश सैनी 1969
भारतीय संदर्भ में आतंकवाद के कारण: एक अध्ययन–सुरेन्द्र प्रसाद 1973
योगिता यादव की कहानियों 'अनहोनी' तथा 'भेड़िया' मे नारी अस्मिता का मुद्दा–प्रेम सिंह 1977
आनंदमठ उपन्यास की समीक्षा–डॉ० प्रीति राय 1980
मधुकर अष्ठाना के नवगीतों में यथार्थबोध–डॉ० प्रीति राय; हरकेश कुमार 1983
सामाजिक परिवर्तन के वाहक बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर एक अवलोकन–सुरेन्द्र सिंह 1988
डॉ० भीमराव आम्बेडकर का राष्ट्रवाद–डॉ० चन्द्रशेखर आजाद 1992
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जल संग्रहण की प्रासंगिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन–हरिओम; डॉ० प्रदीप कुमार शर्मा 1995
योगिता यादव के कथा साहित्य में मानवीय मूल्यों की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति–सुमन 1997
हरियाणा पर्यटन:- चुनौतियां एवं सुझाव–राजेश कुमार; डॉ० प्रदीप कुमार शर्मा 2000
नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019–डॉ० अविनाश कुमार लाल; श्रीमती अविंदना जॉन 2005

## दृष्टिकोण

"वैदिक मनोविज्ञान"–अनामिका वर्मा 2010
गोंड जनजातीय महिलाओं की स्थिति का ऐतिहासिक विश्लेषण (कांकेर जिला के विषेष संदर्भ में)–डॉ० बन्सो नुरूटी 2013
देवेन्द्र कुमार बंगाली की कविताओं में जनपक्षधरता–डॉ० राम पाण्डेय 2019
गदल का प्रासंगिक-विमर्श–डॉ० रमेशकुमार टण्डन 2022
भारतीय संविधान के निर्माण में डॉ0 भीमराव राम जी अम्बेडकर का अवदान–डॉ० विजय कुमार 2025
दलित स्त्री-अस्मिता का कोरस : सुशीला टाकभौरे की कविताएं–कार्तिक राय 2029
कविता के आइने में थर्ड जेंडर–डॉ० शबाना हबीब 2032
उत्तर प्रदेश की राजनीति में महिला सहभागिता–डॉ० प्रमिला यादव 2038
दलित-विमर्श और रामचरितमानस–प्रो० प्रदीप श्रीधर 2042
लैंगिक (जेण्डर) परिप्रेक्ष्य में अर्थशास्त्र पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण–जयंती; डॉ. ज्योति कुमारी 2047
आयु वर्ग एवं लैंगिक भेद का इन्सेफ्लाइटिस से सम्बन्ध : उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में–अमरनाथ जायसवाल; डॉ० साधना श्रीवास्तव 2058
भारतीय विदेश नीति में बदलाव व उभरती चुनौतियाँ–चेतन बहोत 2062
विश्व में बढ़ता प्रवासी हिंदी साहित्य का योगदान–डॉ० सुमन फुलारा 2066
अवध की प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप (19वीं शताब्दी)–गणेश कुमार 2068
विभाजन के केंद्र में गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान–निधि वर्मा 2071
पंजाब में विधायी नेतृत्व के राजनीतिक लक्ष्य (1997-2017)–डॉ० सुनीता रानी 2074
वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में भारतीय महिलाओं की दशा एवं दिशा–रक्षा सिंह; प्रो० अमिता सिंह 2079
मनरेगा: गाँवों में रोजगार सृजन का सुलभ साधन–राकेश कुमार वर्मा; डॉ० राम सेवक सिंह यादव 2084
संस्कृति, परंपरा और लोक: समकालीन अर्थगत विश्लेषण–प्रवीण कुमार जोशी 2088
हरियाणा की त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी व शैक्षणिक आधार पर तुलनात्मक अध्ययन –सुरेन्द्र; डॉ० तिलक राज आहुजा 2091
प्रशासन, शहरीकरण और प्रदूषण–रामावतार आर्य 2098
पूर्वी उत्तर प्रदेश तराई में अनुसूचित जनजाति जनसंख्या की आर्थिक संरचना–डॉ० संजीव कुमार सिंह; सीमा सिंह; डॉ० अभिषेक सिंह 2100
इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों का कथात्मक वैविध्य–दीप्ति यादव 2107
बिहार में महिलाओं की प्रशासनिक भागीदारी का समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० अनिल झा 2111
शिक्षकों में हास्यवृत्ति और उनकी शिक्षण प्रभावकता–प्रो. वन्दना गोस्वामी; रेखा बागड़ा 2115
दीनदयाल उपाध्याय और मीडिया माध्यम–राज कुमार भारद्वाज 2117
जे. कृष्णमूर्ति की दृष्टि में शिक्षकों, छात्रों तथा समाज के प्रति विद्यालयों की भूमिका का अध्ययन–डॉ० चन्द्रावती जोशी 2121
भारतीय नारी मुक्ति के संदर्भ में महात्मा गाँधी का योगदान–सुनिता कुमारी 2126
'मोरचे' का समीक्षात्मक अध्ययन (सुषम बेदी के विशेष संदर्भ में)–संगीता यादव 2129
शिक्षक और मूल्य शिक्षा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–रफत फातिमा; डॉ० नलिनी मिश्रा 2132
यशपाल का स्त्री चिंतन–डॉ० अभिषेक मिश्र 2136
समाज के सजग साहित्यकार जयप्रकाश कर्दम–श्रीमती पंकज यादव 2140
शिवपुराण में अरण्यवासी एक विवेचना–डॉ० गोपेश कुमार तिवारी 2142
छतीसगढ के कुष्ठ आश्रम और इसकी पुनर्वास योजना का ऐतिहासिक विश्लेषण (धमतरी जिले की शांतिपुर कुष्ठ आश्रम के विशेष संदर्भ में)–रणजीत कुमार; डॉ० बन्सो नुरूटी 2145
छत्तीसगढ़ में बैंको द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में वितरित ऋणों का विश्लेषण ''कृषि ऋणों'' के विशेष संदर्भ में–श्रीमती भूमिका शर्मा; डॉ० अर्चना सेठी 2150
करोना काल में बालकों के सामाजिक व शैक्षणिक कौशल विकास में ऑनलाइन कक्षाओं के दुष्प्रभावों का मनोसामाजिक अध्ययन (रीवा जिले के शहरी बालक-बालिकाओं के संदर्भ में)–डॉ० सुनीत कुमार तिवारी; श्रीमती निर्मला तिवारी 2155
कुँवर नारायण की कविताओं में जीवन-बोध–कुमार सौरभ 2161

राजा राम मोहन राय के धार्मिक, सामाजिक सुधार एवं वर्तमान में हिन्दुत्व की अवधारणा : एक समीक्षात्मक अध्ययन
–डॉ० श्याम शंकर प्रसाद गुप्ता 2165
मोती लाल साकी का कश्मीर साहित्य को योगदान–परवेजा अखतर 2170
शिक्षक ही समाज का शिल्पकार और मार्गदर्शक–डॉ० कल्पना जैन–डॉ० रत्नेश कुमार जैन 2173
हिमाचल की कहानियों में अवसरवादिता और प्रशासनिक तंत्र में भ्रष्टाचार–डॉ० ममता 2178
रामायण में प्रकृति–डॉ० मौमिता भट्टाचार्य 2182
''जनपद चम्पावत में ग्रामीण व्यावसायिक स्वरूप का अध्ययन''–सन्तोष कुमार सिंह 2185
हिन्दी व्यंग्यालोचन की परंपरा और डॉ. सुरेश माहेश्वरी का योगदान–श्रीमती आँचल श्रीवास्तव; श्रीमती मीतू बरसैंयाँ 2189
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परम्परागत बिरसू का अध्ययन–गोपाल शर्मा 2192
बक्सर से प्राप्त प्राक् मौर्यकालीन मृण्मूर्त्ति कला–मंदीप कुमार चौरसिया 2196
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्राचीन भारतीय शिक्षा की चौसठ कलाओं का समावेश–डॉ० श्री प्रकाश मिश्र 2200
'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में चित्रित जीवन-संघर्ष–डॉ० राम किशोर यादव 2205
हिन्दी सिनेमा के गीतों में सावन और बारिश–डॉ. अनुपमा श्रीवास्तव 2209
पटना महानगर के पूर्वी भाग में आवासीय भूमि उपयोग की गतिशीलता: एक भौगोलिक विष्लेषण–नीता कुमारी झा 2217
कला में अमूर्तन की सीमा: बनारस के सन्दर्भ में विजय सिंह के चित्र का संक्षिप्त अवलोकन–शशि कला सिंह 2223
प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं भारतीय विदेश नीति: एक अवलोकन–डॉ० अलका चतुर्वेदी 2227
अज्ञेय के उपन्यासों में व्यक्तिवादी पात्रों की भाषा शैली–डॉ० रानी बाला गौड़; गरिमा वर्मा 2229
'शिवमूर्ति के कथा साहित्य में बदलते समकालीन ग्राम्य जीवन का परिदृश्य'–डॉ० रानी बाला गौड़; मनीष कुमार 2232
मध्यकालीन भारत में भक्ति का वास्तविक और व्यावहारिक पथ और आधुनिक समाज में इसकी प्रकृति और प्रभाव
–मिथिलेश कुमार मौर्य; डॉ० अजीत कुमार मिश्रा 2234
सुल्तानपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन
–शशि मिश्रा; डॉ. अखिलेष कुमार श्रीवास्तव 2237
फर्रुखाबाद जनपद के ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन
–डॉ० रमाशंकर 2241
समकालीन कथा साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंध–सोवनी मईड़ा 2244
मधु काँकरिया के 'सलाम आखिरी' उपन्यास में अभिव्यक्त वेश्या जीवन–कुमारी पूनम चौहान 2249
अहिंसा एवम् सत्याग्रह का गांधीवादी दर्शन और युवा–डॉ० अरविंद कुमार 2252
रविन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों का एक अध्ययन–डॉ० विजय कुमार 2255
छत्तीसगढ़ी कविता की आलोचना में डॉ. बलदेव का प्रदेय–श्रीमती वंदना जायसवाल 2258
डॉ० स्नेहलता निर्मलकर 2258
हल्बा जनजाति के जन्म संस्कार में गतिशीलता एवं परिवर्तन: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन
(छत्तीसगढ़ के उत्तर बस्तर कांकेर जिला के विशेष संदर्भ में)–डॉ० प्रीति शर्मा; दूजराम टण्डन 2265
स्त्री "मुक्ति" की अवधारणा, "झूला नट"उपन्यास के संदर्भ में–प्रीति 2269
'पिंजरे की मैना' आत्मकथा में चित्रित स्त्री जीवन का यथार्थ–डॉ० निशा मुरलीधरन 2275
वर्तमान भारत मे मानवाधिकारोंका नारी संदर्भ (उत्पीड़न एवं विधिक संरक्षण)–रजनीकांत दीक्षित 2278
हिंदू मंदिर : अंग, संरचना तथा कार्य प्रणाली–आशुतोष पाण्डेय 2282
हिन्दी कविता में अभिव्यक्त गांधी दर्शन के विविध आयाम–डॉ० वीरेन्द्र सिंह 2285
पटना में बाल श्रमिकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का अवलोकन: एक भौगोलिक अध्ययन–रंजीता कुमारी 2292
बलराम अग्रवाल की लघुकथाओं में कथ्य की विविधता एवं शिल्पगत नवीनता–चन्द्रेश साहू; डॉ० प्रभात रंजन 2299
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 सीखने का समग्र वातावरण–डॉ० अर्चना मिश्रा 2302
ग्राम सभा एवं ग्रामीण महिला सशक्तिकरण–डॉ० क्रान्ति प्रकाश 2306
भारतीय परिप्रेक्ष्य में व्यावसायिक शिक्षा की नई नीति 2020–डॉ० प्रिया सोनी खरे; सुनन्दा सिंह 2308

परिवार समाज और राष्ट्र के निर्माण में स्त्री शिक्षा की उपादेयता–डॉ० नम्रता जैन; डॉ० सुगंधा जैन 2312
पर्यावरणीय पर्यटन: सिद्धांत और अभ्यास Ecotourism: Theory and Praxis–ईरा भारद्वाज 2316
गाँधी चिन्तन में सामाजिक रूपान्तरण का नैतिक आधार–महेन्द्र सिंह 2320
भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य रूप–डॉ० राजेश कुमार गर्ग 2325
आदिवासी साहित्य में नारी अस्मिता–गौरव सिंह 2328
बौद्धकालीन शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि–सरोज कुमारी 2333
मोदी काल में भारत के विदेश नीति: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–सरिता कुमारी 2339
नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षक शिक्षा के लिए एक चुनौती–शाजिया सुल्तान; पायल शर्मा 2343
राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी की बुनियादी या बेसिक शिक्षा की वर्तमान समय में प्रासंगिकता–विनय कुमार; धर्मेंद्र सिंह 2347
भरतपुर रियासत की जनजागृति में यातायात साधनों की भूमिका–नीतू जेवरिया 2351
स्त्री विमर्श के संदर्भ में प्रभा खेतान का उपन्यास 'छिन्नमस्ता'–सरिता कुमारी 2355
विन्ध्याचल के पण्डे: व्यावसायिक एवं धार्मिक पक्ष–प्रिया चौरसिया 2359
महात्मा गांधी की ग्राम विकास दृष्टि–डॉ० विकास यादव 2363
ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका - महिलाओं के उत्थान के सन्दर्भ में–डॉ० कृष्णदेव कुमार भारती 2366
छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति में डॉ० रमाकांत सोनी के साहित्यों का अध्ययन–सरोजनी डडसेना; डॉ० रेखा दुबे 2369
माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की व्यवसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन–डॉ० समर बहादुर सिंह 2376
हिंदी समाचार पत्रों के संपादकीय विषय वस्तु का विश्लेषण (दैनिक जागरण एवं नवभारत टाइम्स दिल्ली के विशेष संदर्भ में)–बिमलेश कुमार 2386
पारिजात उपन्यास में सांस्कृतिक मूल्य–डॉ० दीपिका विजयवर्गीय 2391
विवादों को कम करने के लिए तनाव मुक्त कार्य संस्कृति की आवश्यकता –सुश्री कंचन शेखावत 2393
कैदीयों की चिन्ता स्तर परप्रेक्षाध्यान के प्रभाव का अध्ययन–डॉ० निर्मला भास्कर; राजेश भयाना; डॉ० अशोक भास्कर 2395
राष्ट्रीय राजनीति में पर्यावरणीय मुद्दों पर बदलती विश्व सहमति–डॉ० नलिनी लता सचान 2398
अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में मानवाधिकार–डॉ० पुष्कर पाण्डेय 2401
ग्रामीण युवाओं पर वैश्वीकृत जनसंचार माध्यमों का प्रभाव–विमला देवी 2404
भारतीय संस्कृति और योग–डॉ० सितेश कुमार 2408
भारत-इजरायल कृषि सहयोग–मनीष कुमार सिंह; डॉ० रामकृष्ण सिंह 2412
भारतीय समाज में नारी की भूमिका–डॉ० स्मिता जायसवाल; डॉ० आर० के० पाण्डेय 2416
अध्यापक शिक्षा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020–डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय 2418
बाबा रामदेव जी का योग एवं दर्शन–डॉ० प्रियंका शुक्ला 2421
वायुपुराण में दर्शन-तत्त्व–डॉ० गंगेश गुंजन 2424
भारतीय समाज - विकलांगता के परिप्रेक्ष्य में–सुमित्रा महरोल 2427
प्राच्य एवं पाश्चात्य शिक्षण पद्धतियों में समन्वय की आवश्यकता–सुनील कुमार उपाध्याय 2429
मौर्य काल से गुप्तकाल तक परिवर्तित होती न्याय व्यवस्था–डॉ० शरदेन्दु कुमार त्रिपाठी 2431
समग्र ग्रामीण विकास की अवधारणा एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–विवेकानन्द सिंह; प्रोफेसर राम गनेश यादव 2434
सुमित्रानन्दन पंत एवं महादेवी वर्मा के काव्य में प्रकृति के विविध रूप का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० श्रवण राम 2437
डॉ० भीमराव अम्बेडकर का निरीश्वरवाद–डॉ० संजय कुमार मिश्र 2441

# पूर्वमध्यकाल में जातीय प्रगुणन

**प्रवीण पाण्डेय**

***शोधार्थी, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज ( बी.एच.यू. ) वाराणसी***

'जाति' शब्द संस्कृत भाषा की 'जन्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'जन्म', 'भेद' अथवा 'प्रजाति' होता है। जाति व्यवस्था का मूल तत्त्व है-आनुवंशिक वर्गों का एक क्रमिक विकास-विन्यास। इस प्रकार जाति-व्यवस्था का मूल बीज प्राचीन भारतीय धर्म-व्यवस्था में निहित माना जा सकता है, जिसमें अधिक्रम की दृष्टि से ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊपर तथा अनुसूचित जातियों का स्थान सबसे नीचे माना गया। वस्तुत: जाति-व्यवस्था हिन्दू सामाजिक संगठन का ऐसा विशिष्ट रूप है, जो इस समाज को नाना समूहों में विभक्त करता है। इन विभिन्न जातीय समूहों में खान-पान, रहन-सहन, व्यवहार एवं आचरण आदि का बड़ा अन्तर है, तथापि उनमें पारस्परिक प्रेम एवं गतिशीलता विद्यमान है। इस व्यवस्था को विकसित होने में हजारों वर्ष लगे हैं तथा इसके विकास के कई महत्त्वपूर्ण कारण हैं। वर्णसंकर विवाह, विदेशी आक्रमण, विभिन्न व्यावसायिक गतिविधियाँ तथा पारस्परिक अन्तरताएँ आदि अनेक ऐसे कारण हैं, जिनसे भारत में जातिप्रथा क्रमश: प्रवर्द्धमान रही। यह सच है कि गैर हिन्दू समाजों में वर्ण-व्यवस्था जैसी बात नहीं है तथापि रहन-सहन, देश-प्रदेश, आर्थिक हैसियत आदि के आधार पर अन्य वर्गों में भी जातीय अधिक्रम प्रकट एवं विकसित हो जाया करते हैं। 'जाति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग उत्तर वैदिककाल साहित्य में मिलता है। यास्क ने 'निरुक्त' में सर्वप्रथम 'जाति' शब्द का प्रयोग किया है (अग्निं चित्वा न रामामुपेयात्। रामा रमणायोपेयते न धर्माय कृष्णजातीया)।[1] पाणिनि के 'अष्टाध्यायी'[2] में 'जाति' शब्द का कई बार प्रयोग किया है। महाभाष्य[3] में 'जाति' शब्द की व्याख्या करते हुए स्पष्ट रूप से जन्म से संयुक्त प्रतिपादित किया गया है। इसी प्रकार गौतम धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं कात्यायन श्रौतसूत्र में भी जाति शब्द का प्रयोग वर्गविशेष के लिए किया गया है। मनुस्मृति में 'जाति' शब्द वर्ग-वैभिन्य को दर्शाने के अर्थ में मिलता है।[4] मनु ने 'जाति' शब्द का प्रयोग वर्ण के अर्थ में भी किया है। पुराणों में जाति एवं वर्ण का पृथक्-पृथक् प्रयोग मिलता है। परन्तु इनमें ऐसे अनेक स्थान हैं, जिनमें वर्ण के लिए जाति शब्द का प्रयोग किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुस्मृति के समय में वर्ण एवं जाति परस्पर एक ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगे। गौतम धर्मसूत्र, वशिष्ठ धर्मसूत्र तथा आपस्तम्ब आदिसूत्र ग्रन्थों में कतिपय वर्णसंकर जातियों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार चारों वर्णों में वर्णेतर विवाहों के कारण उत्पन्न संतानें वर्णसंकर जाति के रूप में वर्ण-बाह्य अर्थात् जाति-व्यवस्था की जनक मानी जा सकती हैं। ईसा की 7वीं शताब्दी से लेकर 13वीं शताब्दी के मध्य जाति-व्यवस्था के स्वरूप में कतिपय महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते है। याज्ञवल्क्य स्मृति[5] में शूद्रों को कृषि एवं व्यापार कर्म की अनुमति मिलने के फलस्वरूप शूद्रों का रूपान्तरण कृषि-कर्म करने वाली जातियों में होने लगा। फलत: पेशे की दृष्टि से वे वैश्यों के समकक्ष आ गये। अस्तु, उनके सामाजिक स्तर में गुणात्मक सुधार होने लगा। 7वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की यात्रा पर आए चीनी यात्री ह्वेनसांग ने शूद्रों को कृषक कहा है। इसी प्रकार, ग्यारहवीं शताब्दी में भारत की यात्रा पर आए अरब विद्वान अलबरूनी ने वैश्यों एवं शूद्रों की सामाजिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं देखा था।[6] इस काल में कुछ ऐसे भी शूद्र थे, जिन्हें 'भोजयन्ना' कहा जाने लगा था क्योंकि इनके द्वारा पकाया गया भोजन ब्राह्मण लोग भी ग्रहण कर सकते थे। इसी प्रकार मत्स्यजीवी, चर्मकार, धोबी, बढ़ई आदि कर्म करने वाले कई एक ऐसे सिद्ध एवं तांत्रिक शूद्र जाति के लोग थे, जिनसे लोग तंत्र आदि की शिक्षा ग्रहण करते थे। इस काल के ग्रन्थों में यत्र-तत्र 'अनाश्रित शूद्रों' का उल्लेख मिलता है, जो न केवल आत्मनिर्भर हो चुके थे, बल्कि उनकी आर्थिक स्थिति भी बड़ी सुदृढ़ थी। गुप्त काल में बंगाल से मिलने वाले अभिलेखों में भूमि-अनुदानों से सम्बन्धित भूमि-सम्बन्धी लेखों एवं प्रमाणों के रख-रखाव के लिए कायस्थ वर्ग के उदय का परिचय मिलता है। किन्तु गुप्तोत्तर काल में भूमिदानों की बढ़ती हुई लोकप्रियता तथा उनसे सम्बन्धित भू-प्रमाणों एवं अभिलेखों की देख-रेख के लिए कायस्थों के साथ-साथ करणिक, करण, लेखक, पुस्तपाल, धर्मलेखिन, दिविश, अक्षरचांचु एवं अक्षपटलिक प्रभृति शिक्षित वर्गों अथवा पदाधिकारियों का उदय हो चुका था। प्रारम्भ में शिक्षित अधिकारीगण विभिन्न जातियों से चुने जाते थे, लेकिन कालान्तर में इनकी एक पृथक् जाति ही बन गई। ईसा की नौवीं शताब्दी से ही माथुर, गण्डा, कटारिया, वल्लभ, श्रीवास्तव, निगम प्रभृति विभिन्न बड़े-बड़े कायस्थ परिवारों का उल्लेख मिलने लगता है। ग्यारहवीं शताब्दी में इन परिवारों के लिए वंश या कुल तथा 12वीं-13वीं शताब्दी तक जाति शब्द का प्रयोग लोकप्रिय हो गया। इस प्रकार विभिन्न वर्णों से चयनित गुप्त युगीन कायस्थ नामक पदाधिकारी 12वीं-13वीं सदी तक एक अलग एवं स्वतन्त्र जाति के रूप में मान्य हो गया।

## जातियों में प्रगुणन

पूर्व मध्य काल में लगभग चारों प्रमुख जाति वर्गों में मिश्रित अनेक जातियों के उदय की बाढ़ सी आ गई थी। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण[7] में देश भेद शब्द का उल्लेख संभवत: तत्कालीन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में नवोदित मिश्रित जातियों के भेदों का द्योतक प्रतीत होता है। इस काल में कोई भी वर्ण पूर्व शुद्धता के अनुक्रम में एक समान नहीं रह सका था। चारों वर्ण गोत्रों की शुद्धता, क्षेत्रीय संबद्धता तथा विभिन्न व्यवसायों, कार्यों तथा विशिष्ट शिल्प कलाओं के आधार पर भिन्न-भिन्न जातीय संवर्गों में विभाजित हो चुके थे। क्षेत्रीयता तथा विशुद्ध जन्म के आधार पर ब्राह्मणों की अनेक जातियाँ इस काल में उभर कर सामने आईं। ब्राह्मण अब छ: कर्तव्यों तक ही अपने को सीमित नहीं रख पा रहा था इस वर्ग के लोग पुरोहित, मंत्री, न्यायाधिकारी प्रभृति राजकीय पदों को सुशोभित करने के अतिरिक्त सैनिक एवं सेनानायक भी बनने लगे थे। उदाहरण के तौर पर पृथ्वीराज चौहान का मुख्य सेनापति स्कन्द ब्राह्मण जाति का था। इतना ही नहीं,

जैसा कि पेहोआ[8] तथा सियादोनी[9] के अभिलेखों से पता चलता है, कुछ ब्राह्मण पान तथा बीड़ी के थोक व्यापार में संलग्न थे। क्षेमेन्द्र (11वीं सदी) ने भी ऐसे ब्राह्मणों का उल्लेख किया है, जो नमक, शराब, मक्खन, दूध आदि का व्यापार करते थे। पूर्वमध्यकाल में ब्राह्मणों के द्वारा संपादित किए जाने वाले विभिन्न पेशों का स्पष्टीकरण उनकी ठाकुर, अग्निहोत्री, पाठक, महाराज पंडित, श्रोत्रिय पंडित, दीक्षित, उपाध्याय आदि उपाधियों से भी होता है। याज्ञवल्क्य स्मृति की प्रसिद्ध टीका मिताक्षरा में[10] ब्राह्मणों की दस ऐसी प्रमुख जातियों का उल्लेख मिलता है, जिनमें भू-देव से लेकर चण्डाल ब्राह्मण (जो त्रिकाल सन्ध्या नहीं करते थे) तक परिगणित किए गए हैं। इस प्रकार ब्राह्मण वर्ग में अनेक जातीय एवं उपजातीय विभाजन का एक प्रमुख कारण उसकी क्षेत्रीय संबंधता भी मानी जा सकती है। स्कन्द पुराण में 'पंचद्रविड़' तथा 'पंचगौड़' ब्राह्मणों का तथा लक्ष्मीधर कृत 'विरुद्ध-विधि विध्वंस' नामक ग्रन्थ में 'सागर' ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार, उत्तरी भारत में कान्यकुब्ज, सारस्वत, सरयूपारीण, गण्डा, मैथिल, शकद्वीपीय, राढ़ीय, कुलजी, उत्कल आदि ब्राह्मणों का विभाजन भी क्षेत्रीय संबद्धता को इंगित करता है। राजस्थान और गुजरात में ब्राह्मणों की पहचान उनके मूल निवास-स्थान से की जाने लगी। अत: उन्हें उदिवया, नागर, मोधा आदि ब्राह्मण जातियों के रूप में पुकारा जाने लगा। विभाजन का यह क्रम मध्य काल तक बढ़कर लगभग 180 ब्राह्मण जाति-नामों में विकसित हो गया। धीरे-धीरे इनमें पारस्परिक सर्वोच्चता की भावनाओं का भी उदय हुआ।

पूर्वमध्य काल में विशेषकर 8वीं शताब्दी ई. के उपरान्त क्षत्रिय जाति में भी अनेक नई-नई जातियाँ बनती गईं। फलत: उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। इस काल में राजपूत जातियों को भी क्षत्रिय जाति में परिगणित किया जाने लगा। पूर्वमध्य कालीन ग्रन्थों में उत्तर भारत में प्रसरित 36 राजपूत जातियों का उल्लेख मिलता है। ज्ञातव्य है कि इनमें से अधिकांश जातियों की उत्पत्ति क्षत्रिय वर्ण से नहीं हुई थी। उदाहरणार्थ, मण्डोर का प्रतिहार राजपूत कुल मूलत: ब्राह्मण जाति से सम्बन्धित था। कतिपय इतिहासकार यह प्रस्तावित करते हैं कि कुछ राजपूत जातियाँ उन विदेशी जातियों से उत्पन्न हुईं, जो मूल रूप से भारत में आकर बस गई थीं तथा जो भारतीय सामाजिक व्यवस्था में समायोजित हो गई थीं। प्रो. दशरथ शर्मा के अनुसार ईसा की आठवीं शताब्दी में अरबों के आक्रमण को रोकने में पारम्परिक क्षत्रियों की अपेक्षा चौहानों, प्रतिहारों, परमारों तथा सोलंकी राजपूतों ने अधिक सक्रियता प्रस्तुत कर देशरक्षा की थी, जिसके फलस्वरूप समाज में न केवल उन्हें शासक एवं क्षत्रिय के रूप में अधिक महत्व प्राप्त हुआ, अपितु उन्हें पारम्परिक क्षत्रिय जाति में परिगणित कर लिया गया।[11] पूर्वमध्य कालीन क्षत्रिय जातियों की उत्पत्ति में जन्म के सिद्धान्त को गौण स्थान देकर गुण एवं कर्म के सिद्धान्त पर अधिक बल दिया जाने लगा। न केवल भारतीयता में समाहित विदेशी जातियों में से, बल्कि जनजातियों में से भी अनेक शक्तिशाली सेनानायकों तथा शासक वर्गों को, सूर्य, चन्द्र, अग्नि तथा समुद्र आदि से उत्पन्न बतलाकर उन्हें पारस्परिक क्षत्रिय जाति में सम्मिलित करने का सफल प्रयास किया गया। इस काल के ग्रन्थों तथा अरब यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि क्षत्रिय जाति के लोग ब्राह्मणों की भाँति वेद पढ़ते थे, यज्ञ करते थे, परन्तु न तो वे अध्यापन करते थे और न ही याजन करते थे। जो क्षत्रिय शस्त्रजीवी नहीं बन सकते थे, वे वैश्य कर्म अर्थात् वाणिज्य व्यापार अथवा खेती कर सकते थे। ह्वेनसाँग के अनुसार ईसा की सातवीं शताब्दी में उसने ऐसे कई शासकों से भेंट की थी, जो जात्या क्षत्रिय नहीं थे। उदाहरणार्थ, कश्मीर, कामरूप तथा उज्जयिनी के शासक ब्राह्मण तथा सिंध एवं मतिपुर के नरेश शुद्र तथा कन्नौज के शासक वैश्य थे। इस बात की पुष्टि मेधातिथि के इस उल्लेख से भी होती है कि राजशासन को चलाने की योग्यता तथा गुणसम्पन्न किसी भी वर्ण का व्यक्ति शासक हो सकता है। (राजशब्दश्चायं क्षत्रियजातावक्षत्रियोऽपि जनपदेश्वेरेदुष्टप्रयोगा)।[12] इब्नखुर्दाद्ब ने क्षत्रियों के प्रमुख दो वर्गों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार पारम्परिक क्षत्रिय वर्ण के लोग सबूकफुरिया (सत्क्षत्रिय) तथा शेष अन्य क्षत्रिय कतरिया अथवा साधारण क्षत्रिय थे। पारम्परिक भारतीय समाज में सत्क्षत्रियों को बड़ा आदर प्राप्त था।

पूर्वमध्यकालीन भारत में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जातियों की भाँति वैश्य जाति में भी वृद्धि हुई इस काल में पेशे की दृष्टि से वैश्य एवं शूद्रजाति के लोग एक दूसरे के निकट आते जा रहे थे। इस काल के स्मृतिकारों ने वैश्यों का प्रमुख कर्त्तव्य-ख्रषि, वाणिज्य, साहूकारी (कुशीदवृत्ति), व्यापार तथा पशुपालन आदि बताया है।[13] वैश्यों में अधिकांशत: वैष्णव तथा जैन धर्मावलम्बी हो गये थे। फलत: वे ख्रषिकार्य में सहजत: सम्भाव्य हिंसा से बचने के लिए इससे धीरे-धीरे हटते जा रहे थे। युवानच्वांग के विवरण से पता चलता है कि तत्कालीन वैश्यों का प्रमुख कर्त्तव्य वाणिज्य-व्यवसाय होता जा रहा था। लक्ष्मीधर ख्रत 'कृत्यकल्पतरु'[14] (12वीं सदी) से वैश्यों की सामाजिक स्थिति का आदरणीय स्थान का पता चलता है। वे वेद पढ़ एवं श्रवण कर सकते थे तथा विविध प्रकार के व्यापार कर सकते थे। ब्राह्मण जातियों की भाँति वैश्यों की अनेक जातियाँ क्षेत्रीय सम्बद्धता के कारण अस्तित्व में आईं। वैश्यों की नागर, श्रीमाली, दिसावत तथा पालीवाल आदि जातियाँ क्षेत्रीय सम्बद्धता को इंगित करती हैं। वर्ण-सिद्धान्त अर्थात् पेशे के आधार पर जाति के निर्धारण का प्रभाव वैश्यों पर भी पड़ा। राजस्थान की अनेक वैश्य जातियाँ, यथा-माहेश्वरी, जायसवाल, अग्रवाल, खंडेलवाल तथा ओसवाल आदि मूलत: क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्धित बताई जाती हैं। वैश्यों में भी अनेक उप-जातियों की वृद्धि हुई। धूसर, प्रागवाट, धर्कट तथा श्रीमाल आदि इसी तरह की उपजातियाँ थीं।

पूर्वमध्य काल में शूद्रों में अनेक संकर अथवा मिश्रित जातियों की वृद्धि हुई। कृषि-कर्म मोटे तौर पर शूद्रों का मुख्य व्यवसाय बन चुका था। पाराशर एवं व्यास प्रभृति स्मृतिकारों ने इस काल में शूद्रों में 'कुटुम्बी' तथा 'श्रीवास' वर्गों का उल्लेख किया है।[15] 'श्रीवास' 8वीं सदी के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में वैश्य कहे गए हैं, जबकि नारद स्मृति के टीकाकार असहाय ने उन्हें 'शूद्र' कहा है।[16] ये खेती करते थे। ऐसे किसानों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-स्वतंत्र किसान तथा बटाई पर खेती करने वाले 'सीरिन' अथवा 'व्यधसीरन' किसान। स्वतन्त्र किसान वे थे, जो अपनी जोत की भूमि के स्वामी थे तथा राज्य को कर दिया करते थे। 'व्यधसीरन' अथवा 'सीरिन' कृषक वे थे, जो भूमि के स्वामी नहीं होते थे तथा जो दूसरे की भूमि को बटाई पर लेकर खेती करते थे तथा जिन्हें उपज का 1/3 या 1/4 भाग प्राप्त होता था। ख्रषक मजदूरों को भी 1/4 या 1/ 10 भाग दिया जाता था। पूर्व मध्यमकालीन किसान अधिकतर इसी वर्ग के थे। इस काल में बढ़ई प्रभृति शिल्पी-वर्ग के लोग भी खेती करने लगे थे। हर्षचरित में महाकवि बाण ने आदिवासी किसानों का वर्णन किया है।[17] पूर्वमध्यकाल में 'शूद्र' जातीय कृषकों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। इस काल में दासों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में गुणात्मक सुधार हुआ तथा अब वे कृषिदास बन गए थे। शूद्रों में कुछ बन्धुआ मजदूर (विष्टि) भी बनाया जाता था पाराशर स्मृति (600 - 900 ई.) में सर्वप्रथम 'फसल बटाई' करने वाले 'आधींक' जाति का उल्लेख मिलता है।[18] वैवर्त्तपुराण में शूद्रों की शताधिक जातियों का उल्लेख मिलता है। पूर्व-मध्यकाल मे शूद्रों में कृषि मजदूर, छोटे किसान, नौकर आदि वर्गों के अतिरिक्त शिल्पी तथा अनेक कारीगर वर्ग के लोग भी सम्मिलित हो चुके थे। मोदक, नापित, सूत्रकार, मालाकार, सुवर्णकार तथा ताम्बूलिक आदि शूद्र जातियों का उदय शिल्पी वर्ग से हुआ।

## सन्दर्भ संकेत


1. निरुक्त, 12-13
2. अष्टाध्यायी, 5.4.9
3. महाभाष्य, 5.3.55
4. मनुस्मृति, 3.15
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, यतिधर्म प्रकरण, श्लोक 66-69
6. अलबरूनीज इण्डिया, 1, पृष्ठ 101
7. ब्रह्मवैवर्त पुराण, 3.13.19, 18-19
8. भोजदेव का पेहोवा अभिलेख, डी.आर. भण्डारकर, एपि.इ. खण्ड-1, पृष्ठ 186
9. महेन्द्रपालदेव का सियदोणी अभिलेख, एफ.कीलहार्न, एपि.इ. खण्ड-1, पृष्ठ 173 व आगे।
10. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.117, चातुवर्ण चिन्तामणि, प्रायश्चित काण्ड, पृष्ठ 998
11. शर्मा, दशरथ, लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, पृ. 2.12
12. मेधतिथि टीका, मनुस्मृति 4.84
13. पाराशर स्मृति, 1.65
14. कृत्यकल्पतरू, गृहस्थकाण्ड, पृष्ठ 257.
15. पाराशर, 2.14, सोसियोलॉजी ऑफ रिलीजन, पृष्ठ 239-40
16. असहाय (नारद स्मृति), 1.12
17. हर्षचरितम्, भाग-1, 1-4 उच्छास
18. पाराशर, 2.9, शट् कर्माभिरतो विप्रः कृषि कर्म च कारयेत्।

# गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित मंदिर-स्थापत्य

प्रवीण पाण्डेय *

गुर्जर–प्रतिहार कला के अवशेष हरियाणा और मध्य भारत के एक विशाल क्षेत्र में, जिसमें सम्पूर्ण उ0प्र0 तथा हिमाचल प्रदेश और राजस्थान के आंशिक भू–भाग सम्मिलित है, उपलब्ध है। प्रतिहारों द्वारा निर्मित मंदिर स्थापत्य और कला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी अलंकरण शैली है। जिसमें सज्जा और निर्माण शैली का पूर्ण समन्वय प्रदर्शित हुआ है। अनेक मंदिरों और मूर्तियों का पता चलना प्रतिहारों की सांस्कृतिक अभिरूचि को दर्शाता है। मानव शरीर भक्ति का माध्यम है इसलिए हिन्दू मंदिरों की बनावट मानव शरीर के अंगों के समान ही रची गई है जैसे– पैर, जघां, ग्रीवा, नासुका, शिखर इत्यादि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में आत्मा का वास होता है उसी प्रकार मंदिरों के गर्भगृह में भगवान की मूर्ति रखकर मंदिरों को एक जीवित आस्था का केन्द्र माना जाता है।[1] प्रतिहारों के मंदिर भी इस भावना से अलग न थे। अपने पूर्ण विकसित रूप में प्रतिहार मंदिरों में मुखमण्डप, अन्तराल और गर्भगृह के अतिरिक्त अत्यधिक अलंकृत अधिष्ठान, जंघा और शिखर होते है। विभिन्न स्थानों से प्राप्त प्रतिहार कालीन मंदिर इस प्रकार है–

**देवगढ़ (मंदिर संख्या 12)** देवगढ़ उ0प्र0 के ललितपुर जिले में स्थित है। यह स्थान गुप्तकालीन दशावतार मंदिर के उत्कृष्ठ कला और स्थापत्य के लिए विख्यात है। यह इस क्षेत्र में पर्वत अधीलिका पर निर्मित है। निर्माण योजना में यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है। इसमें अर्द्धमण्डप, अन्तराल तथा गर्भगृह है। वेदी वध में खुर, लतापत्र तथा ताड़पत्र से अलंकृत कुंभ तथा चैत्य से अलंकृत कलश बंधनों का समावेश है वर्तमान में यह पंचायतन शैली का अच्छा प्रासाद है।[2] यहां हिन्दू और जैन दोनों प्रकार के मंदिरो का निर्माण किया गया है। यहां पर प्राप्त अभिलेखिक साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि यहां कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों का शासन था और उन्होंने यहीं के मंदिर निर्माण में उत्कृष्ट सहयोग दिया था। भोज के ग्वालियर अभिलेख में इसे लुअच्छगिरि कहा गया है।[3] यहां का शान्तिनाथ मंदिर और कुरैयाबीर का मंदिर प्रतिहार काल में निर्मित हुआ।

**देवगढ़ (मंदिर क्रमांक 15)** मंदिर में उत्कीर्ण अलंकरण के अभिप्रायों से प्रतीत होता है कि यह मंदिर देवगढ़ स्थित मंदिरो में सर्वश्रेष्ठ है। मंडप में 4 स्तम्भ और 12 स्तंभिकाए है। प्रदक्षिणापथ होने के कारण यह सांधार प्रासाद है। गर्भगृह की सज्जा तथा उसमें स्थित मूर्तियां अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। अन्तर्विन्यास में यह दशावतार मंदिर (देवगढ़) से साम्य रखता है।

**रामेश्वर मंदिर (अमरौल)** अमरौल ग्राम ग्वालियर से 30 कि0मी0 दक्षिण में स्थित है। यह स्थान प्रतिहार कालीन मंदिरों और उनके अवशेषों के लिए प्रसिद्ध है। पंचरथ निर्माण योजना में निर्मित इस देवालय में गर्भगृह तथा अतंराल है। शिखर शंक्वाकार है। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार व सादा है। गर्भगृह का वितान पुष्प निर्मित वर्तुल के मध्य कमल पुष्प उत्कीर्ण कर बनाया गया है। कृष्णदेव[4] के मतानुसार यह मंदिर तेली के मंदिर का पूर्ववर्ती है तथा इसके निर्माण की संभावित तिथि 8वीं श0 ई0 हो सकती है।

**मालादेवी मंदिर (ग्यारसपुर)** यह स्थान विदिशा के 85 किमी0 उत्तर पूर्व में स्थित है। यहाँ ग्राम के चारो ओर बिखरें पुरावशेषों से इसकी प्राचीनता का बोध होता है। इस अवशेषों में मालादेवी का मंदिर सबसे बड़ा है जो एक रमणीय पहाड़ी के स्थान पर है। निर्माण योजना में गर्भगृह त्रिरथ तथा शिखर पंचरथयुक्त है यह सांधार प्रासाद है।[5] गर्भगृह में तीन जिन प्रतिमाएं है किन्तु कोई भी प्रतिमा मूलनायक की नही है। इसी प्रकार ललाटबिम्ब में भी किसी प्रतिमा का अभाव है। अतः यह मंदिर किसी तीर्थंकर को समर्पित था, निर्धारित करना कठिन है। माता देवी मंदिर, योजना में पूर्ण विकसित है, इसमें मुखमण्डल, मण्डप, अन्तराल, गर्भगृह और आन्तरिक प्रदक्षिणा पथ है। इसका निर्माण काल 900 ई0 निर्धारित किया गया है।

*** शोध छात्र, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी।**

**ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर** यह एकाश्म चट्टान को काटकर बना हुआ मंदिर ग्वालियर दुर्ग के पूर्वी भाग में स्थित है। इसका निर्माण प्रतिहार राजा भोज के समय ग्वालियर दुर्ग के कोट्टपाल अल्ला द्वारा करवाया गया था।[6] यह विष्णु मंदिर है। सम्पूर्ण मंदिर शैलोत्कीर्ण है। इसमें मंदिर स्थापत्य के प्रायः सभी अंगों का समायोजन है इस प्रकार शैलोत्कीर्ण मंदिर होते हुए भी यह पहाड़ी से बिल्कुल अलग है। इसमें शिखर तथा अलंकरण की पूरी व्यवस्था की गई है। वितान में पूर्ण विकसित कमल का फूल उत्कीर्ण है जिस पर स्थानक विष्णु की प्रतिमा स्थापित है। गर्भगृह की दाहिनी दीवार में प्रतिहार राजा भोज के समय के दो अभिलेख उत्कीर्ण है, अभिलेख में मंदिर के निर्माण की तिथि 850 ई0 उत्कीर्ण है।[7]

**तेली का मंदिर (ग्वालियर)** तेली का मंदिर ग्वालियर दुर्ग में पूर्वाभिमुख स्थित है। प्रतिहार शैली का भव्य मंदिर होने के साथ ही स्वरूप में यह अपवादात्मक है।[8] ऊँची जगती पर स्थित देवालय में आयताकार गर्भगृह, मंडप और अंतराल है। एक सादे किन्तु वृह्द बंधन के ऊपर मंदिर का वेदिबंध आधारित है। जंघा में प्रत्येक दिशा में दीर्घीकृत चैत्य से युक्त तीन–तीन देवकोष्ठ है। शिखर भाग द्वितल है। मंदिर निर्माण नागर शैली का है। इसका निर्माण काल 850 ई0 प्रतीत होता है। आयताकार पंचरथ मंदिर में गर्भगृह अन्तराल और एक विशाल प्रवेशद्वार है। ललाटबिम्ब पर उड़ते हुए गरुड़ का अंकन है किन्तु मंदिर की भित्तियों पर शैव परिवार के देवी देवताओं की प्रमुखता है। मंडप चार स्तम्भों पर आधारित है। मंडप के उपर की धरणी में कृष्ण लीला व नीचे की धरणी में कपिशीर्षक अलंकरण से अलंकृत है।

**शिवदेवालय (तेरही)** यह स्थान शिवपुरी के रनोद नगर से 10 किमी0 दक्षिण–पूर्व में है। पंचरथ निर्माण योजना में निर्मित इस मंदिर में मंडप, अतंराल, गर्भगृह है। खोखई नामक शैवमठ में अंकित अभिलेख में इसका नाम तेरम्बि बताया गया है।[9] इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि तेरही, रनोद (प्राचीन रणिपद) और कदम्बगुहा शैवमत के गढ़ थे जिसके अवशेष आज भी विधमान है। तेरही की शिवमंदिर शैवमठ के निकट है और स्थानीय जनों में गढ़ी के नाम से विख्यात है।

**नरेसर** नरेसर समूह के प्रतिहारकालीन मंदिर म0प्र0 के ग्वालियर जिला मुख्यालय से 25 कि0मी0 उत्तर पूर्व में नरेसर घाटी में स्थित है। अभिलेखों में इसका प्राचीन नाम नलेश्वर था।[10] यहां के सरोवर के निकट एक मंदिर समूह है इन मंदिरों की निम्नांकित विशेषताएं है–

1. सभी मंदिर पंचरथ प्रकार के है। इनमें गर्भगृह और प्रवेशद्वार के मध्य अन्तराल की व्यवस्था की गई है।
2. इनके साधारण अधिष्ठान में खुर, कुंभ, कलश, कपोतिका का निर्माण किया गया है।
3. जंघा के ऊपरी भाग पर चारो ओर घण्टमाला अभिप्राय है।
4. वराण्डिका में दोहरी कपोतिका है।
5. मंदिरो के शिखर स्थूल है, जो तीन या चार भूमिओं में विभक्त है।
6. प्रवेशद्वारा में प्रायः चार शाखाएं है।
7. किसी भी मंदिर में मुखमण्डप नहीं है।

**बटेश्वर महादेव देवालय (मुरैना)** पंचरथ निर्माण योजना में निर्मित इस देवालय में अंतराल और गर्भगृह है। वेदिबंध में खुर, कुंभ तथा कलश बंधनों का समावेश है। जघां अन्य देवालयों की अपेक्षा अधिक ऊँचा है। पंचाण्डक शिखर के मध्य में चैत्य अलंकरण है। चौकोर शिलाखण्ड के ऊपर स्थित आमलसार पर कलश स्थापित है। नंदिनी द्वार में लतापत्र, खल्व, पुष्प, घटपल्लव तथा पुनः लतापत्र युक्त शाखांए है। यही गंगा, यमुना, नाग–नागी सहित प्रदर्शित है। ललाटबिम्ब में आकाशचारी गरूड़ है। चन्द्रशिला में कमलपुष्प सहित दो सिंह उत्कीर्ण है।

**नचना कुठार** यह स्थान पन्ना जिले के 55 कि0मी0 दक्षिण पूर्व में स्थित है। यहां गुप्तकालीन पार्वती का एक प्रसिद्ध मंदिर है। इसी पार्वती मंदिर के समीप एक अन्य देवालय है जिसे चौमुखनाथ का मंदिर कहते है।[11] यह मंदिर प्रतिहारकाल में निर्मित बताया जाता है। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार है जिसमें चतुर्भुज महादेव का एक उत्कृष्ट शिवलिंग प्रतिष्ठित है। गर्भगृह के सामने एक अर्वाचीन बरामदा है। मण्डप और गर्भगृह के बीच में अन्तराल है। मंदिर की वाह्य दीवारों पर अनेक रथिकाएं है। जिसमें गणेश, यम, कुबेर, सूर्य,

महिषासुरमर्दिनी, कामदेव, वृषभारूढ़ तथा नृत्य शिव की प्रतिमाएं थी। अब इन रथिकाओं की प्रतिमाएं लुप्त हो चुकी है। यह मंदिर 9वीं श0ई0 के तृतीय चरण में निर्मित हुआ।

**ओसिया मंदिर**[12] कथात्मक अंकन के अन्तर्गत ओसिया का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ कृष्ण की लीलाओं से संबंधित अनेक दृश्य मिलते है जिनका विस्तृत अंकन हुआ है। ओसिया में मुख्यतः 8–9वीं श0 ई0 के मंदिरों पर इनका उत्कीर्णन हुआ है। जो अन्य समकालीन केन्द्रों की तुलना में निःसंदेह अधिक विस्तृत, सुनियोजित, परम्परानिर्दिष्ट और महत्त्वपूर्ण है। ओसियां में सामान्यतः मूर्तिकला में निर्मित कृष्ण के बाल लीलाओं को ही दर्शाया गया है।

**कृष्ण जन्म एवं गोकुल गमन–** हरिहर मंदिर के उत्तरी कण्ठ पर, प्रथम दृश्य में बन्दीगृह के अधखुले कपाट के दूसरी ओर प्रसूति गृह का दृश्यांकन है। ओसियां में कृष्ण जन्म के कुल 6 उदाहरण है और सभी दृश्यों में एक जैसा अंकन है।

**माखन चोरी –** बालकृष्ण के द्वारा माखन की चोरी या यशोदा के दधिमंथन का दृश्यांकन है। दृश्य में एक आसन पर प्रसन्नचित्त नन्द की आकृति आसीन है। बालरूप श्रीकृष्ण को पात्र से मक्खन निकालते निरूपित किया गया है। कृष्ण की चचंलता दृष्टव्य है।

**योगमाया वध –** इस मंदिर में योगमाया का वध दृश्यांकन है। इसमें कंस को गतिशील मुद्रा में योगमाया का वध करने के उद्देश्य से पैरो से बालिका को पकड़े और शिक्षा पर पटकने की मुद्रा में आकारित किया गया है।

**पूतना वध** – हरिहर मंदिर –1 में योगमाया के पश्चात् पूतना वध का अंकन हुआ है जिसमें भयंकर स्वरूप वाली पूतना एक मंचिका पर अर्धपर्यकासनी प्रदर्शित है।

**गोवर्धन धारण–** सूर्य मंदिर–3 के दक्षिणी कर्ण भाग और अन्य मंदिरों की अनुपंक्ति में कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण का दृश्य उत्कीर्ण है। हरिहर मंदिर–1 में सामान्य रूप से कृष्ण अपने बाएं हाथ पर पर्वत उठाएं दिखाए गये है।

**कालिया दमन –**कृष्ण लीला दृश्यों में कालिया दमन का विस्तार के साथ अंकन हुआ है। कथानक में कदम्ब वृक्ष से कृष्ण कूदकर कालिया नाग का दमन करते और कालिया के विनाश से भयभीत उसकी पत्नियों तथा स्वयं कालिया द्वारा क्षमायाचना का अंकन हुआ है।

इस प्रकार ओसियां में कृष्ण के जन्म से लेकर कंस की रंगशाला तक के दृश्यों का विस्तार से अंकन हुआ है। जबकि अन्य प्रतिहारकालीन कला के केन्द्रों पर कृष्ण लीला का इतना विस्तृत अंकन नहीं मिलता है।

**संदर्भ–सूची :–**


1. देव, कृष्ण, टेम्पल्स ऑफ इण्डिया, आर्यन बुक्स, इटंरनेशनल दिल्ली, सन् 1995, पृ0 1–7।
2. अलैक्जेंडर कनिंघम, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एन्युअल रिपार्ट, कलकत्ता, सन् 1874–75 और 1876–77, जिल्द 10, पृ0 101।
3. ई0 ह्यूल्टेज, मिहिरभोज का ग्वालियर अभिलेख, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 99–114, सन् 1925।
4. कृष्णदेव, टेम्पल्स ऑफ इण्डिया, आर्यन बुक्स इंटरनेशनल, दिल्ली सन् 1995, पृ0 112।
5. वही, पृष्ठ 22।
6. ई0 हयूल्टेज, मिहिर भोज का ग्वालियर मंदिर अभिलेख, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 112, सन् 1925।
7. वहीं, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 105–108, सन् 1935।
8. वही, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 102, सन् 1925।
9. एफ0 कीलहर्न, मधुबन प्लेट ऑफ हर्ष, एपि0 इ0 जिल्द 7, पृ0 155–157, सन् 1902–03।
10. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (दि प्रतिहार) विंग महेन्द्रपाल II ऑफ महोदया, संवत् 1003, इपि0 इ0 खण्ड 14, पृ0 177–179, सन् 1917–18।
11. आर0 डी0 त्रिवेदी, टेम्पल्स ऑफ दि प्रतिहार पीरियड इन सेन्ट्रल एशिया, (इडियां) दिल्ली, सन् 1990, पृ0 125।
12. आर0 सी0 मजूमदार, जोधपुर इन्सक्रीप्शन ऑफ प्रतिहार बाउक, वि0 सं0 894, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 87–95, सन् 1925।


☙★❧

# गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

की

पी-एच०डी० (प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध-प्रबन्ध

विभागाध्यक्ष

प्रो० सुमन जैन

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति

एवं पुरातत्त्व विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

HEAD

विभागाध्यक्ष

A.I.H.C.& Archaeology

प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्व

Banaras Hindu University

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Varanasi-5, वाराणसी-5

शोध निर्देशक

प्रो० प्रशान्त कश्यप

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति

एवं पुरातत्त्व विभाग

डी०ए०वी० पी०जी० कॉलेज

(बी०एच०यू०), वाराणसी

Prof. Prashant Kashyap

Dept. of AIHC & Archaeology

DAV PG College, BHU

Varanasi

शोध छात्र

प्रवीण पाण्डेय

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग

कला संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी-221005

पंजीयन संख्या - 381808

शोध पंजीकरण संख्या - DAV/Res/Reg-AIHC/Sep15/16-15/1

वर्ष - 2023

# उपसंहार

पूर्वमध्यकालीन इतिहास में सातवीं-आठवीं श० ई० में गुर्जर-प्रतिहारो के उदय के साथ ही नये युग का आरम्भ हुआ। इस राजवंश में कई महत्वपूर्ण शासक हुए जिन्होंने अपने कार्यो से अपनी महत्ता स्थापित की है। इस काल में सांस्कृतिक क्षेत्र से अपनी महत्ता स्थापिक की है। इस काल में सांस्कृतिक क्षेत्र के सभी आश्रमों जैसे-समाज, अर्थ, धर्म, शिक्षा-साहित्य व कला का उत्कर्ष हुआ और राजशेखर जैसे विद्वान राज्य द्वारा संरक्षण प्राप्त थे। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक उत्तर भारत की राजनीति में उथल-पुथल विद्यमान था, साथ ही अरब आक्रांताओं के आक्रमण ने भी सामाजिक जीवन को अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया किन्तु गुर्जर-प्रतिहारों के उदय ने समस्त उत्तर-भारत में दो शताब्दी तक स्थिरता प्रदान की और पश्चिम भारत की सीमा पर प्रहरी के रूप में कार्य किये।

गुर्जर-प्रतिहार कालीन समाज में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। बाउक ने जोधपुर अभिलेखों से वंशावली प्राप्त होती है जिसमें प्रथम शासक हरिश्चन्द्र को बताया गया है और इसे विद्वान ब्राह्मण मानते है किन्तु ऐसा कहा जा सकता है कि यह आगे चलकर क्षात्र धर्म का पालन करने हेतु खुद को क्षत्रिय मानने लगे होंगे। फिर भी ब्राह्मणों के प्रति अत्यधिक सम्मान था और इनके प्रति प्रगाढ़ निष्ठा का कारण संभवत: उनके व्यक्तिगत जीवन में प्रदर्शित ज्ञान, पवित्रता, त्याग एवं तपस्या थी। इस काल के अभिलेखों में उन्नत एवं

उत्कृष्ठ चरित्र वाले तथा वेद शास्त्रों में पारंगत ब्राह्मणों का बहुतायत उल्लेख प्राप्त होता है। समाज के सभी वर्ग के लोग अपने सामर्थ्य के अनुसार दान आदि देते थे। इस कथा के अभिलेखों से पता चलता है कि राजा, सामंत, माण्डिलक आदि के द्वारा ब्राह्मणों को दान दिया जाता था। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणों के पश्चात् क्षत्रिय वर्ण का स्थान आता है। मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख से पता चलता है कि यह स्वयं को क्षात्रीय मानते हुए इश्वाकु वंश के राजा राम के छोटे भाई लक्ष्मण का वशंज बताते है। अभिलेखों में 'रघुकुल ग्रामणी, रघुकुल तिलक विरूद्ध भी प्राप्त होता है जिससे यह पुष्ट होता है। क्षत्रिय वर्ण के पश्चात् वैश्यों की तीसरा स्थान था यद्यपि अभिलेखों में वैश्य शब्द का उल्लेख नही मिलता किन्तु अभिलेखों में व्यापार-वाणिज्य व उद्योग-धंधो से जुड़े समूह का पता चलता है जिसे वैश्य वर्ण या वणिक वर्ग से जोड़ा जाता है। वर्ण व्यवस्था में अंतिम स्थान शूद्रों का था जो सेवा से संबधित व निम्न कार्यो में संलग्न थे। इनके विषय में कहा गया है कि ईश्वर की ओर शूद्रों का एक मात्र कर्त्तव्य द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की सेवा और सुश्रुषा करना है। इस काल में वैश्यों द्वारा व्यापार और वणिज्य में अधिक रूचि लेने के कारण इनके द्वारा कृषि कार्य किया जाने लगा। इस काल में कायस्थ नामक एक अन्य जाति जो लेखन विधि से सम्बद्ध थी, के बारे में मालूम होता है। इनका विभाजन भी अनेक उपजातियों में हो गया था जैसे - श्रीवास्तव, माथुर, अस्थाना आदि। संस्कारों के बारें में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु विवाह और उपनयन संस्कार का प्रचलन अवश्य था।

पारिवारिक जीवन में कुल का विशेष महत्व होता था जिसमें पति-पत्नी, सन्तान, माता-पिता, भाई-बहन सभी एक ही संयुक्त परिवार के अंग थे इसके अतिरिक्त समाज में वैश्यावृत्ति, पर्दा प्रथा, बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन भी समाज में था। समाज में विविध प्रकार के पकवान और पेय पदार्थ ग्रहण किये जाते थे । सामान्यत शाकाहारी भोजन ही ग्रहण किया जाता था किन्तु मांसाहार का भी प्रचलन था क्योंकि अभिलेखों में मछली से भरे तालाबों के दान दिये जाने का विवरण मिलता है। पेय पदार्थ में विभिन्न प्रकार के मदिरा के अतिरिक्त दूध, दही, घी, मधु आदि ग्रहण किया जाता था। आभूषण के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अलंकरण प्रचलित थे जिन्हें स्त्री और पुरूष दोनों पहनते थे किन्तु पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियाँ विशेष कलाप्रिय व आभूषण प्रिय थी। मनोरंजन के साधनों में कन्दूक-क्रीड़ा, उद्यान-क्रीड़ा, द्यूतक्रीड़ा, मछली पकड़ना आदि प्रमुख था। आखेट भी मनोरंजन का एक साधन था। इसके अतिरिक्त नाटकों का अभिनय नृत्य गायन आदि भी मनोरंजन के प्रमुख अंग थे।

इस्लाम के कारण भारत के सामाजिक जीवन पर कोई विशेष प्रभाव पड़ा था, यह स्वीकार करना संभव नहीं है। भारत का बहुत बड़ा क्षेत्र मुस्लिम आक्रमणों से अछूता रहा था क्योंकि उत्तर भारत में तुर्क-अफगानों के शासन की नींव तेरहवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षो में ही पड़ी थी किन्तु भारत में इस्लाम के प्रसार का सूत्रपात गुर्जर प्रतिहार काल में ही हो गया था।

गुर्जर-प्रतिहार काल में आय का प्रमुख स्रोत कर था जो राज्य के कर्मचारियों के वेतन तथा आवश्यक विकास के कार्यो में व्यय होता था। वसूल किये जाने वाले करों में भाग, भोग, हिरण्य, प्रवणि, विषयदण्ड, तुरूष्कदण्ड, अक्षपटलप्रस्थ, प्रतिहारप्रस्थ, विशतिअठप्रस्त आदि प्रमुख रूप से थे। इस काल में कृषि ही अधिकांश लोगों की आय का मुख्य साधन था और राज्य की आर्थिक व्यवस्था का यही मूल आधार था। गुर्जर प्रतिहार काल के समाज में विभिन्न शिल्पियों के संगठन तथा विभिन्न श्रेणियों के व्यवसायिक संघो का उल्लेख मिलना भी इस बात की पुष्टि करता है कि ये श्रेणियाँ भी राज्य की आधारशिला थी। देशी व विदेशी व्यापार इन श्रेणियों द्वारा किये जाते थे। व्यापारिक वस्तुओं में विभिन्न प्रकार के अन्न, मसाले, बहुमूल्य धातुओं तथा वस्त्रों आदि का निर्देश मिलता है। उद्योगों तथा व्यापारियों दोनों पर विभिन्न प्रकार के कर भी लगाए जाते थे। हर एक वस्तु का मूल्य निश्चित होता था। वस्तुओं को तौलने के लिए माप-तौल की भी व्यवस्था थी। जिसमें पैमानों व गणितीय आकड़ों-पद्धतियों का प्रयोग किया जाता था। यद्यपि राज्य भूमि पर राजा का स्वामित्व था परन्तु राजाओं द्वारा दान में दी गयी भूमि का स्वामी दान ग्रहिता को ही माना जाता था। यह परम्परा पूर्व काल से ही चली आ रही थी। जिससे राज्य में अनेक सामन्त तथा जागीरदार उभर गये थे। स्थानीय शासन प्रणाली का संचालन प्राय: इन्हीं सामन्तों द्वारा किया जाता था। इस प्रकार से राज्य की आर्थिक दशा में इनका योगदान अभूतपूर्व था।

गुर्जर-प्रतिहार काल अभूतपूर्व धार्मिक जागृति का काल था। इस काल के समाज में कई धार्मिक सम्प्रदाय थे जिनमें वैष्णव, शैव, शाक्त, सूर्य, बौद्ध,

जैन प्रमुख थे। गुर्जर प्रतिहार शासक वैष्णव धर्मानुयायी थे जैसा कि उनके अभिलेखों से इसकी पुष्टि होती है। अभिलखों का प्रारम्भ विष्णु नाम से हुआ है और कई शासकों ने विष्णु से सम्बन्धित विरूद का प्रयोग किया है जैसे - मिहिरभोज को 'आदिवराह' और 'प्रभाश' की उपाधि दी गयी थी। किन्तु वैष्णव धर्म की ओर अधिक झुकाव होने के बाद भी इनके अन्दर धार्मिक सहिष्णुता की भावना विद्यमान थी। ये सभी धर्मो का आदर करते थे। अभिलेखों से विष्णु की लोकप्रियता का पता चलता है। मिहिर भोज के ग्वालियर चतुर्भुज अभिलेख 'ओऽम नमो भगवते वासुदेवाय' से प्रारम्भ हुए है। गणपति पूजा की पुष्टि करने वाले अभिलेखों का प्रारम्भ 'ओम विनायक' से हुआ है। विष्णु के साथ शिव पूजा का भी विशेष महत्व था। गुर्जर प्रतिहार अभिलेखों व प्रशस्तियों में प्रतिहार राजा 'परममाहेश्वर' कहे गये है। सूर्य पूजा के भी साक्ष्य मिलते है जिसकी अभिलेखों से पुष्टि होती है। प्रतिहार शासक रामभद्र सूर्य की उपासना करता था और इसी से प्रेरित होकर अपने पुत्र का नाम मिहिरभोज रखा था। इस समय यद्यपि ब्राह्मण धर्म की प्रधानता थी किन्तु बौद्ध व जैन अनुयायी भी समाज में विद्यमान थे। महेन्द्रपाल प्रथम का इत्खोरी अभिलेख बौद्ध देवी तारा के आधार स्तम्भ पर पाया गया है। तारा देवी का बौद्ध धर्म में वही स्थान है जो ब्राह्मण धर्म में दुर्गा का घटियाला अभिलेख में कक्कुक द्वारा जैन मन्दिर बनवाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

गुर्जर-प्रतिहार काल में देवताओं के साथ कई देवियों की पूजा के संकेत प्राप्त होते है। इस समय देवियों में प्रमुख स्थान लक्ष्मी, पार्वती, दुर्गा का था।

लक्ष्मी धन और सुख समृद्धि की देवी, पार्वती भगवान शंकर की पत्नी और दुर्गा की पूजा शक्ति की देवी के रूप की जाती थी। इसके अतिरिक्त कापालिक और कौल का भी अस्तित्व परिलक्षित होता है जिसका उल्लेख हमें राजशेखर के नाटक कर्पूरमंजरी में मिलता है। भारतीय धर्म में दान का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रतिहारकालीन अभिलेखों में दान सम्बन्धी अनेक विवरण मिलते है। इन अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस काल के राजाओं, सामन्तों और जन साधारण सभी में उदात्त भाव दानशीलता की तथा गहन धर्मनिष्ठा थी। गाय, सुवर्ण, हस्ति, अश्व, भूमि आदि दान में दिया जाता था। ग्राम दान व भूमि दान के अनेकानेक लेख मिलते है। सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण इत्यादि महत्वपूर्ण अवसरों पर दान देने का प्रचलन था। तीर्थो की यात्रा करना, संगम स्नान करके भी पुण्य लाभ हेतु दान दिया जाता था।

गुर्जर-प्रतिहार काल में कला एवं शिक्षा-साहित्य के बारे में भी जानकारी मिलती है। शिक्षा का स्थान गुरूकुल, आश्रम, मठ आदि होते थे। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि वेदों की शिक्षा इस समय प्रमुख रूप से दी जाती थी। वेदों के अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्विद्या, युद्धकला, ज्योतिष, संगीत, नित्य आदि की भी शिक्षाएँ दी जाती थी। शिक्षा के अनेक केन्द्र थे जिनमें वाराणसी, कन्नौज, उज्जैन, भिनमाल आदि प्रमुख थे। विद्यालयों अथवा गुरूकुलों को चलाने के लिए ग्राम दान दिया जाता था जिसे 'अग्रहार' कहते थे। गुर्जर प्रतिहार काल में साहित्य के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। प्रतिहारों की

दानशीलता एवं उदार प्रवृत्ति के कारण लोक भाषाओं की उन्नति के के साथ-साथ संस्कृत में विविध विषयों पर भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। राजशेखर ने काव्यमीमांसा, कर्पूरमंजरी, बालरामायण, बालभारत, भुवनकोष, विद्यशालभंजिका की रचना इसी काल में की। संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत तथा अपभ्रंश का भी प्रचलन था किन्तु दिनों दिन प्राकृत का प्रचलन कम हो रहा था और अपभ्रंश बढ़ती जा रही थी। गुर्जर-प्रतिहार काल में स्थापित मंदिरों, तालाबों, भवनों,दुर्गों इत्यादि के आधार पर हम इस काल की कलात्मक विशेषताओं का अनुमान कर सकते है। वास्तुकला के साथ-साथ् मूर्ति कला में भी उल्लेखनीय प्रसार हुआ। इस काल के मंदिरों व मूर्तियों के स्वरूप, अंग-प्रत्यंग में अलंकरण मिलता है। अत: यह काल राजनीतिक दृष्टि के साथ-साथ सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि का था फिर भी हम कह सकते हैं कि विविध दृष्टिकोणों से यह परिवर्तन का काल था।